शिका भारतीय-प्राच्य-तत्त्व-प्रकाशन समिति, पिंडवाडा.

॥ श्री शंखेश्वरपार्श्वनाथाय नमः ॥

कर्मप्रकृतिसंग्रहणीज्ञातृभिः कर्मप्रकृतिप्राभृतप्रमातृभिरनेकटीप्पनग्रन्थनिर्मातृभिः आचार्यवर्यश्रीमन्मुनिचन्द्रसूरिभिर्विरचितं

विषमपदटिप्पनकम्

तेन विभूषिता चिरंतनाचार्यकृता

चूर्णिः

तया शोभितं पूर्वधरवाचकवरश्रीशिवशर्मसूरीश्वरप्रणितं

बन्धशतकम्

तथा

श्री उदयप्रभसूरिविरचितं

टिप्पनकम्

तेन युतं पूर्वधरवाचकवरश्रीशिवशर्मसूरीश्वरप्रणितं

बन्धशतकम्
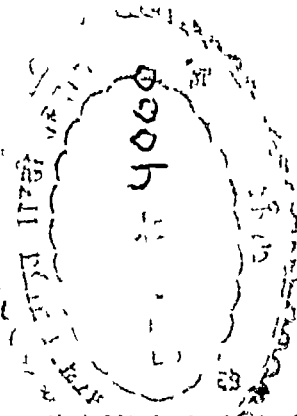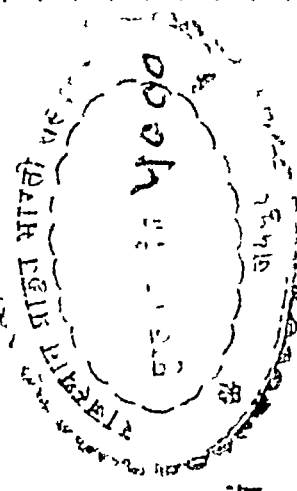
प्रथम-आवृत्ति
पुस्तकाकार-५००
प्रताकार-२५०

मूल्य-पुस्तकाकार १४)रू०
" प्रताकार १६)रू०

वीर संवत् २४९२
विक्रम संवत् २०२६

॥ २ ॥

प्राप्तिस्थान

भारतीय प्राच्यतत्त्व प्रकाशन समिति,
C/o रमणलाल लालचंद
१३५/१३७ झवेरी बाजार, बम्बई २

C/o शा समरथमल रायचंदजी
पिंडवाड़ा, (राज०)
स्टे० सिरोहीरोड (W. R.)

शा. रमणलाल वजेचन्द,
C/o दिलीपकुमार रमणलाल,
मस्कती मार्केट,
अमदावाद २.

Available from
Bharatiya Prachya Tattva Prakashan Samiti
C/o Shah Ramanlal Lalchandji,
135/37 ZAVERI BAZAAR,
BOMBAY-2. INDIA

C/o Shah Samarathmal Raychandji
PINDWARA, (Rajasthan)
St.Sirohi Road (W. R.) INDIA

Shah Ramanlal Vajechand,
C/o Dilipkumar Ramanlal,
Maskati Market,
AHMEDABA-2 INDIA

मुद्रक-ज्ञानोदय प्रिन्टिंग प्रेस, पिंडवाड़ा स्टे सिरोहीरोड़ (W R.)
Printed by : Gyanodaya Printing Press Pindwara St. Sirohi Road, (W.R.) Rajasthan, INDIA

॥ २ ॥

Purvadhara Sri Shivasharma Suri's

BANDHA-SATAKAM

with

Chirantana-acharya's

Churani

and

Gloss,

Clarifying the knotty points thereof,

by

Acharya Sri Munichandra Suri

the author of various other glosses

Including

A separate imprint of Bandha-Satakam

with

Gloss

by

Sri Udayaprabha Suri

प्रकाशकीय-निवेदन

यह सूचित करते हुए हमें अति हर्ष होता है कि प. पू. परमोपकारी स्व. परम गुरुदेव आचार्य भगवन् श्रीमद् विजय प्रेमसूरीश्वर महाराज की कृपा दृष्टि से उन श्री की परम पावनी निश्रा में संकलित और विवेचित लाखो श्लोकों वाले कर्म साहित्य के चल रहे प्रकाशन के मध्य में हमारी समिति इस कर्मसाहित्य विषयक पूर्वाचार्य विरचित अति प्राचीन ग्रन्थ रत्न को आज प्रकाशित कर रही है ।

यह बधशतक ग्रन्थ पूर्वधर आचार्यदेव श्री शिवशर्मसूरि द्वारा विरचित है जिसके अति प्रौढ विवेचन रूप प्राचीन चूर्णि-ग्रन्थ भी उपलब्ध है । चूर्णिसहित यह सम्पूर्ण ग्रन्थ आज से पहिले मुद्रित हो चुकने पर भी पूर्वमुद्रित ग्रन्थ के पृष्ठ जीर्णप्राय. होने से इसका पुन मुद्रण आवश्यक था। तदुपरान्त कुछ समय पूर्व चूर्णिग्रन्थ के गूढार्थ को प्रकाश में लाती सहस्रावधानी प्रकाण्ड तार्किक आचार्यदेव श्री मुनिचन्द्रसूरीश्वर विरचित टिप्पणी की एक हस्तलिखित ताडपत्रीय प्रति पू. आगमप्रभाकर मुनिराज श्री पुण्य-विजय म० संगृहीत ज्ञानभंडार में से उन के द्वारा उपलब्ध हुई । उसकी एक कामचलाउ प्रति बनवाकर उस प्रतिके विशेष शुद्धिकरण हेतु मूल प्रति की एक फोटो कोपी बनवाकर उसे विराटकाय कर्मसहित्य के कार्यों में अत्यन्त सहायक समझकर उस कार्य में नियुक्त महात्माओं के पास रक्खी गई जिस पर से पू. मुनि श्री कीर्तिचन्द्रविजय महाराज ने अपने अमूल्य समय का भोग देकर प्रेस कोपी तैयार की । उसके तैयार होने पर अभ्यासकर्ताओं की अनुकूलता के लिये शतक मूल ग्रन्थ उस पर चूर्णिग्रन्थ और चूर्णिग्रन्थ पर की टिप्पणी क्रमपूर्वक मुद्रित करवाने का निर्णय लिया गया जिसका मुद्रण शुरु हुए आज लगभग एक वर्ष पूरा होने आएगा ।

॥ ४ ॥

संपादन संशोधन

इस ग्रन्थ का संपादन-सशोधन प पूज्य जयघोषविजय महाराज, प. पू धर्मानन्दविजय म०, प. पू. जितेन्द्रविजय म , प. पू जगच्चन्द्र वि. म., प० पू. वीरशेखर वि म. तथा प. पू. कीर्तिचन्द्रविजय म. ने परस्पर मिलकर सुन्दर रीति से किया है ।

मुद्रित हो जाने बाद भी अनाभोग प्रेस दोषादि के कारण रही हुई अशुद्धियों के प्रमार्जन हेतु परमपूज्य स्व गुरुदेव श्री के विद्वान् शिष्यरत्न आगमप्रज्ञ आचार्यदेव श्रीमद् विजय जम्बूसूरीश्वरजी महाराज साहब तथा जैन श्रेयस्कर मण्डल पाठशाला, महेसानाके अध्यापक सुश्रावक श्रीयुत् पुखराजजी भाई तथा श्रीयुत् रतिभाई श्रीयुत् वसतभाई आदि अन्य अध्यापको ने शुद्धि पत्रक तैयार किया जो ग्रन्थ मुद्रण के अन्त मे मुद्रित करवाया है। वाचकों से तदनुसार ग्रन्थ सुधार कर पढने का ध्यान रखने के लिये विनम्र निवेदन है।

संपादन पद्धति–

मूलग्रन्थ चूर्णिग्रन्थ तथा टिप्पणीग्रन्थ और उसमे आते प्रतीक तथा साक्षी ग्रन्थ के अवतरण आदि के लिए विभिन्न विभिन्न छोटे-बडे खुले व गहरे विविध प्रकार के टाईप पसद कर अभ्यासकर्ताओं की अनुकूलता बनाए रखने योग्य प्रयत्न किया गया है, जैसे मूल ग्रन्थ १६ पोइन्ट ब्लेक टाईप मे, चूर्णि ग्रन्थ १६ पोइन्ट सामान्य टाईप मे तथा टिप्पणी ग्रन्थ १२ पोइन्ट मोनो ब्लेक टाईप में मुद्रित करवाया है । चूर्णी मे आते हुए साक्षी ग्रन्थ के अवतरणों के लिये १२ पोइन्ट सामान्य टाईप, टिप्पणी में चूर्णी की साक्षी के प्रतीक हेतु फेन्सी १२ पोइन्ट टाईप तथा अन्य साक्षी ग्रन्थ के लिये १६ पोइन्टसामान्य टाईप रक्खे है। सुगमता हेतु चूर्णी टिप्पणी मे क्रमश सख्याएँ लिखी है।

साथ ही चूर्णी के जो ग्रन्थांशो पर टिप्पणी ग्रन्थ है उन ग्रन्थांशो के प्रारम्भ मे सलग्न क्रमाक देने के साथ उन ग्रन्थाश के टिप्पणी ग्रन्थांश को उन २ क्रमांकों द्वारा अंकित किया गया है। इसी प्रकार शक्य उपलब्ध पाठांतरों का भी टिप्पणी द्वारा संग्रह

॥ ५ ॥

किया गया है, जिससे सर्वतोमुखी अभ्यास हेतु भी संपादन अच्छा हआ है। मात्र सुगमता हेतु भिन्न २ टाईप क्रम में लेने से या मुद्रणदोष से कई स्थलों पर कुछ टाईप बराबर मुद्रित न होने से उन स्थलों को सुधार कर पढने के लिये वाचकवृन्द से विनम्र अनुरोध है।

श्री उदयप्रभसूरि टिप्पणी युक्त बन्धशतक

उपरोक्त ग्रन्थ का मुद्रण चल रहा था उस अवधि मे एक विचार ऐसा हुआ कि आचार्य श्री उदयप्रभसूरीश्वर की जो शतक मूलग्रन्थ पर एक लघु विवेचन रूप टिप्पणी आज भी अमुद्रित है, यदि वह भी साथ ही एक ही पुस्तक में मुद्रित हो जाए तो सोने में सुगंध। अत. फिर कार्य रूप में परिणत करने हेतु खोज करने पर उस ग्रन्थ की एक ही प्राचीन प्रति है ऐसा हमे पता चला। वह प्रति बंबई की **'रोयल एशियाटिक सोसाइटी'** नामक संस्था के ग्रन्थभंडार मे थी। जैन साहित्य विकास मंडल के प्रमुख सेठ श्री **अमृतलाल कालीदास** द्वारा इस प्रति की फोटो कोपी तैयार करवा कर देने हेतु निवेदन किया। निवेदन सेठ श्री ने स्वीकार किया और फोटो कोपी तैयार करवा कर हमें देकर हमारे कार्य के वेग में सहयोग दिया। इस ग्रन्थ की फोटो कोपी की प्रेस कोपी भी विहार में होते हुए भी पूज्यमुनिराज श्री **कीर्तिचन्द्र** विजयजी महाराजने करके अपनी प्राचीन श्रुत के प्रति भक्तिका परिचय दिया। प्रेस कोपी होते ही यह टिप्पणी ग्रन्थ भी प्रस्तुत ग्रन्थ के पृष्ठ भाग में क्रमानुसार मुद्रित करवाया गया।

पूर्ववत् इस ग्रन्थमुद्रण में भी टिप्पणी ग्रन्थ टाईप १२ मोनो ब्लेक और मूल गाथा १६ पोइन्ट ब्लेक रक्खे गए हैं। इस ग्रन्थ के संपादक और संशोधक पूर्वोक्त महात्मागण ही है।

कृतज्ञता दर्शन

॥ ६ ॥

सबसे पहले हम स्वर्गस्थ गुरुदेव श्रीमद् विजय प्रेमसूरीश्वरजी महाराज का जितना आभार माने उतना कम है क्योंकि उनश्री की कृपा और प्रभाव से ही इस समिति का उत्थान और कर्मसाहित्य का विशाल सृजन हो सका है। इन सब के मूल आधार आप श्री ही है।

साथ ही इस ग्रन्थ के संपादन कार्य मे साक्षात् सहायता देने वाले पूज्य मुनिराज श्री **जयघोष** विजयजी महाराज, पू. मु. श्री **धर्मानन्द** विजयजी महाराज, पू. मु. श्री **जितेन्द्र** वि. म. पू. मु. श्री **जगच्चन्द्र** विजयजी महाराज, पू. मु.श्री **वीरशेखर** विजयजी महाराज तथा पू. मु. श्री **कीर्तिचन्द्र** विजयजी महाराज का उपकार मानते हैं।

इस ग्रंथ के शुद्धिकरण कर्ता पूज्य आचार्य देव श्रीमद् विजय **जबूसूरीश्वरजी** महाराज का वडा उपकार मानते हैं जिन्होंने इतनी उम्रमें इनने इनने शासन के कार्य होते हुए भी ज्ञान-भक्ति से प्रेरित होकर इस ग्रंथ के मुद्रित फर्मों को ध्यान पूर्वक पढकर शुद्ध किये हैं। इसी प्रकार महेसाणा के प्राध्यापक और अध्यापकों की ज्ञान भक्ति भी वास्तव में प्रशसनीय है।

इस चूर्णिटिप्पणी की फोटो-कोपी प्राप्त करवाने में सहायक पूज्य आगमप्रभाकर मुनिराज श्री **पुण्यविजयजी** महाराज तथा श्री उदयप्रभसूरी कृत टिप्पणी की मूल कोपी पर से फोटो कोपी निकलवाने की स्वीकृति देने वाले मुंबई की संस्था **'रोयल एशियाटिक सोसाइटी'** के कार्यवाहकों तथा सेठ श्री **अमृतलाल** भाई का उपकार भी हम भूल नहीं सकते।

यह ग्रन्थ पुस्तकाकार रुप में अच्छे लेजर पेपर मे तथा प्रताकाररूप में जुन्नेरी टिकाउ हस्त निर्मित कागज पर छपाया है जिसकी प्रतियाँ अनुक्रम से ५०० व २५० हैं।

ग्रन्थ मुद्रण सहायक

पिण्डवाडा श्राविका संघ के उपाश्रय के ज्ञान खाते की ६०००) रु. की जो रकम इस समिति मे भेट स्वरुप मिली

थी उससे इस ग्रंथ का मुद्रण करवाया गया है। ज्ञान खाते की रकम का सुयोग्य स्थल पर उपयोग करने का जो प्रयत्न श्राविका संघ ने किया है वह भी वास्तव मे प्रशंसनीय है।

विजयादशमी वि० स० २०२६
पिण्डवाड़ा (राजस्थान)
स्टे०–सिरोहीरोड

शा० समरथमल रायचंदजी (मन्त्री)।
शा० शान्तिलाल सोमचंद (भाणाभाई) चोकसी (मन्त्री)
शा० लालचन्द छगनलालजी (मन्त्री)
भारतीय प्राच्यतत्त्व प्रकाशन समिति

– समिति का ट्रस्टी मंडल –

(१) शेठ रमणलाल दलसुखभाई (प्रमुख), खंभात।
(२) शेठ माणेकलाल चुनीलाल, बम्बई।
(३) शेठ जीवतलाल प्रतापशी, बम्बई।
(४) शा. खूबचंद अचलदासजी पिंडवाडा।
(५) शा. समरथमल रायचंदजी(मंत्री), पिंडवाडा।
(६) शेठ शांतिलाल सोमचंद (भाणाभाइ), खंभात।
(७) शा. लालचद छगनलालजी (मंत्री), पिंडवाडा।
(८) शेठ रमणलाल वजेचंद, अमदावाद।
(९) शा. हिम्मतमल रुगनाथजी, बेडा।
(१०) शेठ जेठालाल चुनीलाल बीवाला, बम्बई।
(११) शा. इन्द्रमल हीराचंदजी, पिंडवाडा।
(१२) शा. मन्नालालजी रिखबाजी, लुणावा।

॥ ८ ॥

विषयानुक्रमः

॥ १० ॥

श्री उदयप्रभसूरि टिप्पनयुतं बन्धशतकम्

॥ ११ ॥

卐

॥ १२ ॥

॥ ॐ ह्रीँ अर्हं नमः ॥

॥ णमोत्थुणं समणस्स भगवओ महावीरस्स ॥

॥ श्री-आतम-कमल-दान-प्रेमसूरीश्वरसद्गुरुभ्यो नमो नमः ॥

卐

कर्म्मप्रकृतिसंग्रहणीज्ञातृभिः कर्म्मप्रकृतिप्राभृतमातृभिरनेकटीप्पनग्रन्थनिर्मातृभिराचार्यवर्यश्रीमद्-
मुनिचन्द्रसूरिभिर्विरचितविषमपदटीप्पनकसमलंकृतया चिरतनाचार्यकृतचूर्ण्या
विभूषितं पूर्वधर वाचकवर-श्रीमत्-शिवशर्मसूरीश्वरप्रणीतम्

बन्धशतकम्

[बन्धसयगं]

[तत्रादौ चूर्णिकृन्मङ्गलगाथा]

'सिद्धो [1]णिहयकम्मो सद्धम्मपणायगो तिजगणाहो। सव्वजगुज्जोयकरो अमोहवयणो जयइ वीरो ॥१॥

1 'णिद्धयकम्मो' इति मु.।

॥ शतकचूर्णिविषमपदटिप्पनकम् ॥

卐

प्रणिपत्य विमलकेवल-विलोकिताशेषभावसद्भावम् । श्रीजिनवरममरार्चित-चरणाम्बुजयुगलममलमहम् ॥१॥
वक्ष्यामि विषमकतिपय-पदसमुदयविवरणं समासेन । बन्धशतकस्य चूर्णावुपवर्णितवर्ण्यभावायाम् ॥२॥
पदानि वैषम्यवदर्थभाञ्जि, यद्यप्यनेकान्यपि चात्र सन्ति । तथापि मे दुर्गतराणि किञ्चित्, व्याख्यातुमेषोऽधिकृत प्रयत्नः ॥३॥

(१) 'सिद्धो सिद्धत्थकम्मो' त्यादि । सित चिरकालबद्ध कर्म्म ध्मातं निर्दग्धं शुक्लध्यानानलाद्येन स निरुक्तात् सिद्धः । षिधु गत्यामिति गतो निर्वृतिं, ख्यातो सु(भु)वनाद्भुतविभूतिभाजनतया । षिधू शास्त्रे माङ्गल्ये च इति समस्तवस्तुस्तोमशास्ता, विहितमङ्गलः । षिधु सराध्यो राध-साधससिद्धाविति साधितसकलप्रयोजनो वा सिद्ध इति । उक्तं च--

ध्मातं सित येन पुराणकर्म्म, यो वा गतो निर्वृतिसौधमूर्ध्नि ।
ख्यातोऽनुशास्ता परिनिष्ठितार्थो, यः सोऽस्तु सिद्धः कृतमङ्गलो मे ॥

[श्रीभगवतीसूत्र वृत्तौ. भा. १ पृ. ३]

निरवशेषतया धुतं कम्पितं कर्म ज्ञानावरणादि, काम्यं वा अभिलषणीयं सर्वत्र निस्पृहतया येन स तथा सन् । सु वरस्त्रिकोटिशुद्धतया धर्मः श्रुतचारित्ररूप सद्धर्मः । पणायति व्यवहरति, स्तोति प्रणयति प्ररूपयतीति, वुण् प्रत्यये प्रकृष्टो वा नायको यः स तथा । सद्धर्मस्य पणायकः प्रणायकः प्रनायको वा यः स तथा । त्रिजगेणेन

सव्वेवि गणहरिंदा [2]सव्वजगीसेणलद्धसकारा । सव्वजगमज्झयारे सुयकेवलिणो जयंति सया ॥ २ ॥
जिणवरमुहसंभूया गणहरविरइयसरीरपविभागा । भवियजणहिययदइया सुयमयदेवी सया जयइ ॥ ३ ॥
[3]सम्मद्दंसणणाणचरणतवमएहिं सत्थेहिं अट्ठविहकम्मगंठिं जाइजरामरणरोगअन्नाणदुक्खबीयभूयं छिंदित्ता

सम्यग्दर्शन[ज्ञान]चारित्रप्रभवेन तत् समुदयरूपेणाभाति शोभते यः, त्रिजगतो वा भुवनत्रयस्य नाथो यो योगक्षेमकृत् यः स तथा । सार्वेषु सर्वहितेषु सव्येषु वाऽनुकूलेषु कृत्येष्विति गम्यते, जयोऽभ्यासस्तदुद्योगकरो भव्यानां तदुद्यमकरणशीलो यः । सर्वजगतो वा भुवनत्रयस्य विमलकेवलालोकपूर्वकवचनप्रभाप्राग्भाराविर्भावनेन, उद्योतकरः प्रकाशकरो यः स तथा । अमोह वैचित्यविहीन, अमोघ या अनिष्फल वचन प्रवचनं यस्य स तथा । जयति दुर्जयरागादिरिपुपराजयफलानुभवात् सर्वोत्कर्षेण वा वर्तते । कोऽसावित्याह । वीरः, सू(शू)रवीरविक्रान्ताविति विक्रान्तोऽन्तरङ्गरागादिजयाद्, विशेषेण ईरयति क्षिपति कर्म, गमयति, याति वा शिवमिति वीरः, वर्तमानतीर्थाधिपतिरिति ।

(२) 'सव्वजगीसेणलद्धसक्कार' त्ति जगतामीशा जगदीशाश्चमरेन्द्रशक्रादयः, सर्वे च ते जगदीशास्तेषा नमस्करणीयतया इनात् स्वामिनः जिनाल्लब्धसत्कारस्तदनन्तरपदपूजाप्राप्तिलक्षणो यैस्ते सर्व्वजगदीशेनलब्धसत्काराः । सर्व्वजगदीशेन वा तीर्थपतिना हेतु भूतेन लब्धसत्काराः, भवत्येव तेषां सत्कारलाभे भगवान् हेतु तेषां तच्छिष्यतया पूज्यत्वादिति ।

(३) इह सर्व्वे प्रेक्षावन्तो न क्वचिदपि प्रयोजनमनुद्दिश्य प्रवर्तते(न्ते) । अतः प्रेक्षावतः प्रकरणप्रणेतुः शास्त्रकरणलक्षणप्रवृत्तिफलमादर्शयंश्चूर्णिकारः 'सम्मद्दंसणनाणे' त्यादिना 'तमणुवक्खाइस्सामि' इतिपर्यन्तेन सगोचरा स्वप्रवृत्तिमाह ।

अजरममरमरुजमक्खयमव्वाबाहं परमणिव्वुइसुहं कहं नाम [1]भव्वमत्तापावेज्ज त्ति पायपरहितेसीणं साहूण पवित्ती । अओ अज्जकालियाण साहूणं दुस्समाणुभावेणं आयुबलमेहाकरणाइगुणेहि परिहीयमाणाणं अणुग्गहत्थं आयरिएण कयं सयपरिमाणणिप्फन्नणामगं सयगं ति पगरणं तमणुवक्खाइस्सामि । [४]तत्थ पुव्वं ताव संबंधो भण्णइ । [५]"संज्ञा निमित्त कर्त्तार परिमाणं प्रयोजनम् ।प्रागुक्त्वा सर्व्वतन्त्राणां [2]पश्चाद्व्यक्तानुवर्णयेत् ॥१॥" इति वचनात् , एतस्स पगरणस्स किं णामं ? किंणिमित्त ? केण वा कयं ? किं परिमाणं ? किं प्रयोजनं ? इति । तत्थ णामं दुमप्पगारं ।

तत्रानुग्रहार्थमित्यत्रायमभिप्रायो यथा--इत ऐ(ए)व तावत्प्रकरणाद्दुःखग्राह-कर्म्मप्रकृतिप्राभृतादिग्रन्था-भ्यासाऽसहा अपि निर्वाणाऽवन्ध्यकारणबन्धादिपरिज्ञानादिगुणभाजनभवनेन निर्वाणशरणा भवन्तु भव्या इति ।

(४) 'तत्थ' इत्यादि। इह संबन्ध उपोद्घातः । सबध्यते शास्त्रनामनिमित्तादिजिज्ञासावतः श्रोतुर्दूरवर्तिसत्शास्त्रं तन्निश्चयसंपादनेन व्याख्यासनिहित क्रियतेऽनेनेति व्युत्पात (पत्ती.) ।

(५) 'संज्ञा' मित्यादि श्लोकान्ते "इति वचनादिति" क्वचिन्न दृश्यते । तत्रादावुक्तं चेत्य-ध्याहारतोऽसौ व्याख्येयः, अन्यथा गमकत्वाभावात् ।

---

1 सव्वसत्ता' इति ख ।

2 'पश्चाद्वक्ता त वर्णयेत्' इति मु. ।

"गुण १ णोगुण २ आदाणे ३ पडिवक्ख ४ पहाण ५ णिस्सित ६ चेव।
सयोग ७ माण ८ पच्चय ९ अणादिसिद्धत १० विहियति ॥ १० ॥"[1]

(६) 'गुणणोगुणे' त्यादि, गुणेन अन्वर्थतया युक्त नाम गुणनाम, यथा इन्द्रश्चन्द्र इत्यादि ॥१॥ तद्विपरित नोगुणनाम यथा रथ्यापुरुषस्य कस्यचित् चन्द्रस्वामी सूर्यस्वामी ॥२॥ आत्तद्रव्यनिबन्धन नाम आदाननाम, यथा वधूरन्तर्वर्ती आत्तभर्तृधृतापत्य निबन्धनत्वात् । नैतद् गुणनाम्नोऽन्तर्भवति, तत्रादानादेय विवक्षाभावात् ॥३॥ प्रतिपक्षनाम कुमारी वन्धि(वन्ध्ये)त्यादि, आदाननाम प्रतिपक्षनिबन्धनत्वात् ॥४॥ अथवा आदानमादिः-अध्ययनोद्देशकादेरादिपद, तदेव नाम आदाननाम यथा 'धम्मोमङ्गल' असखयमित्यादि ॥३॥ वाच्यार्थप्रतिपक्षवाचकतया नाम प्रतिपक्षनाम यथा मङ्गलोऽङ्गारक, मधुर विषम् ॥४॥ प्रधाननाम यथाऽऽम्रवण निम्बवनमिति वनान्त सत्वप्यन्येष्वविवक्षितवृक्षेषु विवक्षाकृतप्राधान्यचूतपिचुमन्दनिबन्धनत्वात् ।५॥ निश्रितनाम यत्पितामहादेर्नाम तत्पक्षपातादिभ्यः पौत्रादावन्यत्र निवेश्यते तस्य तन्निश्रायाभावात् निश्रितनामत्वम् । एतच्चान्यत्र नामनामेति रूढम् ।६॥ सयोगनाम द्रव्य-क्षेत्र काल-भावभेदाच्चतुर्धा । तत्र द्रव्यसयोगनाम दण्डी, छत्रीत्यादि, द्रव्यसयोगनिबन्धनत्वादस्य । क्षेत्रसयोगनाम माथुरो वालभ इत्यादि, यदि नामत्वेन विवक्षा भवति । कालसयोगनाम यथा शारदो, वासन्तक इति । भावसयोगनाम क्रोधी मानीत्यादि ।७॥ मानेन मेयस्य नाम माननाम, शत, सहस्र, द्रोण, खारी, पल, तुला, कर्षादीनि, प्रमाणनाम्ना प्रमेयेषूपलम्भात् ॥८॥ प्रत्ययनाम यत्प्रत्ययेनार्थान्निजाभिधेयस्य हेतुना विशेषित नाम, यथा जलज सरसिजमिति ॥९॥ अनादिसिद्धान्तनाम अपौरुषेयभावादनादौ सिद्धान्ते प्रसिद्ध यत् तदनादिसिद्धान्तनाम, यथा धर्मास्तिकायोऽधर्मास्तिकाय इति ॥१०॥

1 अनुयोगद्वारसूत्रे किञ्चित्क्रमभेदेन नाम्न एतेषामेव दशप्रकाराणां तदवान्तरभेदप्रभेदप्रदर्शनपूर्वक विस्तरेण वर्णनं कृतमस्ति।

तत्थ एयं पगरणं पमाणणिप्फन्नणामगं सयगं ति । किं णिमित्तं कयं ? ति णिमित्तं भणियं । केण कयं ? ति [7]शब्दतर्कन्यायप्रकरणकर्म्मप्रकृतिसिद्धन्तविजाणएण [1]दिट्ठिवायत्थनाणएण [2]अणेगवायगमरलद्धविजएणमित्र सम्मायरियणामधेज्जेण कय । किं परिमाणं ? गाहापरिमाणेण [3]सयमेत्त, अक्खरादिपरिमाणेण संखेज्जं, अन्थपरिपाणेण [4]अपरिमियपरिमाणमणेगभेयभिन्नं । किं पयोयणं ? ति जीवाणं उवओगजोगपच्चयबंधोदयोदीरणासंजोग-[8]बंधविहाणादिअगिगमणत्थं, तदेव णाणं दंसणं च, तओ बंभाइनिरोहणममत्थे चरणे उज्जमो, ततो

(७) 'शब्दतर्केत्यादि' प्रकरणा(ण)शब्दस्य प्रत्येक सम्बन्धात्[शब्द]प्रकरण तर्कप्रकरण । न्याय-प्रकरणमिति । तत्र शब्दप्रकरण शब्दशास्त्र व्याकरणमितियावत् । तर्कप्रकरणं जीवाजीवादिद्रव्याणां सदसन्नित्यानित्यादिपर्यायाणा च निरूपणनिपुणं, द्रव्यानुयोग इत्यर्थः ।

न्यायप्रकरणं लौकिकप्रतीतनीतिशास्त्र नैयायिकसमयानुसारी ग्रन्थो वा । कम्मंप्रकृति. कर्म्मप्रकृतिप्राक(भृ)तम् । सिद्धान्तः शेषसमयः । यदत्र सिद्धान्तग्रहणेन कर्मप्रकृतिग्रहणेऽपि अस्याः पार्थक्योपन्यासस्तदस्य प्रणेतुरत्रात्यन्तकौशलख्यापनार्थन् । ततश्च शब्दतर्कन्यायप्रकरणानि च कमप्रकृतिश्चसिद्धान्तश्चेति समासः, तेषां ज्ञायको ज्ञाता, तेन ।

(८) 'बंधविहाणादि' त्ति आदिशब्दः स्वभेदसूचकः ।

1 'दिट्ठिवायत्थजाणएण' इतिविशेषण मुद्रितप्रतौ नास्ति किन्तु जे. खं प्रमुखप्रतीपूपलभ्यते । 2 'अणेगवायसमालद्धविजएण' इति मु. । 3 'सत' इति जे. । 4 'अपरिमिय' इति जे. प्रतौ नास्ति ।

मोक्ख इति एयं पयोयणं । भणिओ संबंधो । एवं 'संबंधागयस्स[1] पगरणस्स इमा आइमा गाहा मंगलाभिधे-याधारसत्थसंबंधत्था–

[अरहते भगवंते अणुत्तरपरक्कमे पणमिऊणं ।
बंधसयगे निबद्धं संगहमिणमो पवक्खामि ॥][2]

सुणह इह जीवगुणसंनिएसु ठाणेसु सारजुत्ताओ ।
वाच्छं कइवइयाओ गाहाओ दिट्ठिवायाओ ॥१॥

व्याख्या–'सुणह' त्ति सोतविसयत्तातो सुयणाणस्स, सुयनाणं संबज्झइ । कहं ? [3]अहिगयत्थाओ-दिट्ठिवायातो गाहाओ सुणह त्ति । तं च सुयणाणं मंगलं । कम्हा ? भन्नइ णंदी भावमंगलं ति काउं

(९) एव 'सबधादि(ग)यस्स' त्ति, । एवमुक्तलक्षणः सम्बन्ध उपोद्घात:, तेन आगत स वा आदि प्रथम यस्य तदेव सम्बन्धागतमेवं सम्बन्धादिक वा तस्य । एव 'सबधावियस्से' त्ति क्वचित्पाठः । तत्र एवमुक्त-क्रमेण सम्वन्धापितस्य प्रापितसम्बन्धस्येति दृश्यन्ते (ते) ।

1 'सबधातिगस्स' इति मु । 2 "अत्र च-'अरहन्ते भगवन्ते' ॥१॥ गाथा आदौ दृश्यते सा च पूर्वचूर्णिकारै अव्याख्यातत्वात् प्रक्षेपगाथेति लक्ष्यते ।" इत्युक्त श्री मलधारीयहेमचन्द्राचार्यैर्बन्धशतकवृत्तौ । तथैव चोक्त श्रीमच्चक्रेश्वर-सूरिभिर्बन्धशतकभाष्ये-एत्थ य अरहते इह, प्राइमगाहा उ अन्नकइरइया । सुणहइह दुइय गाहा इह पत्थुय कविकया ऐया ॥ [शतक भाष्ये गा. ६] 3 'अधिगतच्छायो' इति मु । अधिकतच्छायो' इति जे ।

मंगलपरिग्गहियाणि सत्थाणि णिप्फत्तिं गच्छंति, सिस्सपसिस्सपरंपराए[1] पइट्ठाहिंति चेति अतो सुणहसद्दो मंगलत्थो । 'इह जीवगुणसंनिएसु ठाणेसु सारजुत्ताओ वोच्छं कइवइयाओ गाहाओ' त्ति अभिधेयाधारत्थो । अभिधेया उवओगादयो, 'दिट्ठिवायाओ' त्ति, सत्थसंबंधत्थो, एस पिंडत्थो । इयाणिं अवयवा विवरिज्जंति—'सुणह' त्ति सीसामंतणवयणं । किं कारणमामन्त्रयतीति चेत् ? उच्यते, सीसायरियसंबद्धपरोवयारोवदरिसणत्थं सोतिंदियोवयोगजणणत्थं च आमन्त्रयति । 'इह' त्ति अस्मिन्प्रकरणे । 'जीवगुणसन्निएसु ठाणेसु' त्ति । सन्नियसद्दो ठाणसद्दो य प्रत्येकं [2]परिसंबध्यते-जीवसन्निएसु ठाणेसु गुणसन्निएसु य ठाणेसु त्ति जीवट्ठाणगुणट्ठाणणामधेज्जेसु त्ति भणियं होति । एतेसिं अत्थो णिद्देसे वक्खाणिज्जिहिति । एतेसि विन्यासप्रयोजनं-पूर्वं जीवास्तित्वचिन्तनं तत्सिद्धौ शेषप्रपञ्चसिद्धिरिति जीवट्ठाणाइं प्रथमं न्यस्तानि, विद्यमानानां जीवानां गुणचिन्तनमिति तदनन्तरं गुणट्ठाणाणि, एवं विन्नासे पयोयणं । 'सारजुत्ताओ' त्ति सारो अत्थो अत्थजुत्ताओ । काओ ताओ गाहाओ त्ति संवज्झइ । 'वोच्छं कइवइयाओ' त्ति वोच्छं भणामि कइवइयाओ 'गाहाओ' [3]त्ति भणियं होइ । गीयन्तेऽर्था [4]अस्यामितिगाथा । ताओ गाहाओ एयंमि पगरणे जीवट्ठाणगुणट्ठाणान्याश्रित्य अत्थमंत्ताओ थोवाओ गाहाओ कहेमि[5] ताओ सुणह त्ति संब-

---

1 'परपरया' इति मु. । 2 'परिसमाप्यते' इति मु. । 3 'थोवयाओ' इति जे. । 4 'स्तस्यामिति' मु. । 5 'करेहिमि' इति जे ।

ज्झइ । स्वेच्छाकहणपरिहरणत्थं मत्थगौरवत्थं च सत्थसंबंधं भणामि-**दिट्ठिवायाओ**' त्ति आयरियपायमूले विणएण सिक्खियाओ दिट्ठिवायाओ कहेमि ॥१॥

[10]"किं परिकम्म-सुत्त-पढमाणुओग-पुव्वगय-चूलिगामइयातो सव्वाओ दिट्ठिवायाओ कहेसि ? नेत्युच्यते, पुव्वगयाओ । किं उप्पायपुव्व-अग्गेणियं जाव लोगबिन्दुसाराओ त्ति एयाओ चोद्दसविहाओ सव्वाओ पुव्वगयाओ

– (१०) 'किं परिकम्मे' त्यादि । इह सूत्रादिग्रहणयोग्यतासम्पादनसमर्थानि परिकर्माणि । गणित परिकर्मवता सर्वद्रव्यपर्यायनयापूर्वसूचनार्थं सूत्राणि, ऋजुसूत्रादीनि द्वाविंशतिः[1] प्रथमानुयोगः[2] तीर्थंकरादीनां पूर्वभवाद्यनुयोग., तद्ग्रहणेन कुलकराभिगण्डिकानुयोगोऽपि गृहीतव्य उपलक्षणत्वादस्य, अन्यत्र[3] द्वयोरप्यनयोर्दृष्टिवादैकस्थानत्वेन पठितत्वात्।। सर्वश्रुतपूर्वकरणात् पूर्वाणि । पूर्वगतस्यैव उक्तार्थसंग्रहात्मिकाश्चूडाः ।

1 उक्तं च-नन्दीसूत्रागमे "से किं तं सुत्ताइं ? सुत्ताइं बावीसं पण्णत्ताइं, तं जहा-उज्जुसुत्त १, परिणयापरिणयं २, बहुभंगियं ३, विजयचरियं ४, अणंतरं ५, परंपरं ६, मासाणं ७, संजूहं ८, संभिण्णं ९, आयच्चायं १०, सोवत्थियावत्तं ११, णंदावत्तं १२, बहुलं १३, पुट्ठापुट्ठं १४, वेयावच्चं, १५, एवंभूयं १६, भूयावत्तं १७, वत्तमाणुप्पयं १८, समभिरूढं १९ सव्वओभद्दं २०, पण्णासं २१, दुप्पडिग्गहं २२, इच्चेयाइं बावीसं सुत्ताइं छिण्णच्छेयणइयाइं ससमयसुत्तपरिवाडिए सुत्ताइं" इत्यादि । [प्रा. ग्र. प. प्रकाशिते पृ. ७४]

2 उक्तं च नन्दीसूत्रे-"अणुओगे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा-मूलपढमाणुओगे य गंडियाणुओगे य ।
[प्रा. ग्र. प. प्रकाशिते पृ. ७६]

कहेसि ? नेत्युच्यते, [1]'अग्गेणियातो बीयाओ पुव्वातो । किं अट्ठवत्थुपरिमाणाओ अग्गेणियपुव्वातो सव्वातो कहेसि ? नेत्युच्यते, पुव्वंते अवरंते [2]धुवे अधुवे एत्थ [3]वयणलद्धीणामपंचमं वत्थु ततो पचमातो वत्थुतो कहेमि । किं सव्वातो वीसइपाहुडपमाणमेत्तातो कहेसि ? नेत्युच्यते, तस्स पंचमस्स वत्थुस्स चउत्थं पाहुडं

(११) अग्गेणीयाउ' त्ति सर्वद्रव्याणां पर्यवाणां जीवविशेषाणां चाऽग्रस्य परिमाणस(स्य)वर्णनाद्वि-भक्तिवशादग्रेणीयम् । इहाग्रेणीयस्य यदष्टवस्तुपरिणामा(माणा)भिधान सोऽपपाठ इव लक्ष्यते, [4]नन्दीकर्म्मप्रकृति-प्राभृतयोश्चतुर्दशानां वस्तूनां च तत्राभिधानात् । उक्त च,

---

1 अत्र 'चोद्दस वत्थुपरीमाणाओ' इति पाठः सङ्गच्छते, 'अट्ठवत्थुपरिमाणाओ' इति पाठो न शुद्धः, किन्तु जे. ख. मु. प्रमुखसर्वप्रतिपु स एवोपलभ्यते, टीप्पनकारश्रीमन्मुनिचन्द्रसूरीश्वरैरपि टीप्पनकेऽस्य पाठस्याऽपपाठरूपेणोल्लेख कृते ऽतो ज्ञायते यत्तेषां समक्षेऽप्ययमशुद्ध पाठ एवासीदिति । वस्तुतोऽष्टवस्तुपरिमाणं न तु द्वितीयस्याऽग्रेणीयपूर्वस्य वर्तते किन्तु तृतीयस्य वीर्यपूर्वस्य 'वीरियस्स ण पुवस्स अट्ठवत्थू अट्ठचूलवत्थू पण्णत्ता' इति । नन्दीसूत्रवचनात् । 2 जे. प्रतावत्र 'इत्थ धुवालद्धी अधुवलद्धी अधुवस्स पणिहि नव्य नाम पचम वत्थु' इतिपाठो दृश्यते स तु न सङ्गच्छते । 3 मु. 'खणलद्धीणामपंचम' इत्यपि पाठ ।

4 श्रीनन्दीसूत्रपाठश्चैवम्–'अग्गेणीयस्स णं पुव्वस्स चोद्दस वत्थू दुवालस चुल्लवत्थू पण्णत्ता ।' [उक्त. पृ ७४] तथा च षटखडागमनाम्ना वर्तमानकाले प्रसिद्धग्रन्थस्य धवलाटीकायाम्–"अग्गेणिय णाम पुव्व चोद्दसण्ह वत्थूण ' इत्यादि-पाठ [मु. सस्करण भा. १ पृ. ११५]

कम्मपगडिनामधेज्जं ततो कहेमि । तस्स चउव्वीसं अणुयोगदाराइं भवन्ति । तंजहा–

(१) पूर्वान्तं ह्यपरान्तं,(२)ध्रुवा(३)ऽध्रुव(४)च्यवनलब्धि(५)नामानि ।
अध्रुवसप्रणिधानं, (६) कल्पं (७) भौमावयाद्य (८) च ॥ १ ॥
सर्वार्थकल्पनीयं (९)ज्ञान-(१०)मतीतं (११)ह्यनागतं (१२)चैव ।
सिद्ध(१३)मुपाध्यं (१४)च चतु-र्दशवस्तूनि द्वितीयस्य ॥ २ ॥[5]

[ ]

चूर्णौ चोल्लिङ्गना एवं दृश्या, "पूव्वंते अवरन्ते धुवे [अधुवे] एत्थ वयणलद्धीनाम पचम वत्थु" ।

5 प्रस्तुतगाथायुगलेन सदृशप्राय गाथायुगलं दशभक्तिग्रन्थेऽपि वर्तते, तद्यथा–"पूर्वान्त ह्यपरान्त, ध्रुवमध्रुवच्यवनलब्धि-नामानि । अध्रुवसप्रणिधि चाप्यर्थं भौमावयाद्य च ॥१॥ सर्वार्थकल्पनीय ज्ञानमतीत त्वनागत काल सिद्धिमुपाध्य च तथा, चतुर्द-शवस्तूनि द्वितीयस्य ॥२॥ [प ८-९] । तथा च षट्खण्डागमस्य धवलाटीकायाम-"पुव्वते अवरंते धुवे अद्धुवे चयणलद्धी अद्धुवसपणिधाणे कप्पे अट्ठे भोम्मावयादीए सव्वट्ठे कप्पणिज्जाणे तीदाणागयकाले सिज्झए बुज्झए त्ति" । इति पाठः (मुद्रित संस्करण भा० १ पृ. २२६) दृश्यते । पुनश्च तस्यामेव धवलाटीकायामन्यत्र [मु स. भा १ पृ. १२३] 'पुव्वते अवरते धुवे अधुवे चयणलद्धी अद्धुवम पणिधिकप्पे अट्ठे भोम्मावयादीए सव्वट्ठे कप्पणिज्जाणे तीदे अणागय काले सिज्झए बुज्झए त्ति चोद्दस वत्थूणि 'इति दर्शितम् ।

|| ११ ||

[12]'कइ [13]वेदणा य [14]फासे [15]कम्मं [16]पगडि य [17]बंधण [18]णिवधे ।

(१२) 'कइवयणा य' इत्यादि रूपकत्रयं । 'कइ' त्ति कृतिः करणं तच्च त्रेधा सघातकरणं, परिशाटकरणं, सघातपरिशाटकरणं चेति । एतत् त्रिविधमपि औदारिक-वैक्रिय-आहारक-तैजसकार्मणशरीराणां यथायोगं यत्र सप्रपञ्चमुच्यते तत् कृतिरनुयोगद्वारम् ॥१॥

(१३) 'वेयणा' त्ति कर्मपुद्गलानां, वेद्यन्त इति वेदनासज्ञितानां निक्षेपादिभिरनुयोगद्वारै. प्ररूपणाधिकारात् वेदनानुयोगद्वारम् ।२।

(१४) 'फास' त्ति कर्मपुद्गलानामेव ज्ञानावरणादिविभेदतोऽष्टभेदानां परस्परेणौदारिकादिशरीरैः जीवेन च सह स्पर्शगुणसंबन्धतः प्राप्तस्पर्शाभिधानानां निक्षेपादिभिरनुयोगद्वारैःप्ररूपणा यत्र क्रियते तत् स्पर्श इत्यनुयोगद्वारम् ।३।

(१५) 'कम्मो' त्ति कर्मपुद्गलानामेव ज्ञानदर्शनावरणादिगुणसद्भावतः प्राप्तकर्मसज्ञानां कर्म[नि]क्षेपादिभिरनुयोगद्वारैः प्ररूपणा क्रियते यत्र तत् कर्मेत्यनुयोगद्वारम् ।४।

(१६) 'पगडि' त्ति यत्रानुयोगद्वारे कार्मणवर्गणापुद्गलानां, कृतौ प्ररूपितबन्धलक्षणसंघातभावानां, वेदनाद्वारे निरूपितवस्तुविशेषप्रत्ययविपाकानां, स्पर्शद्वारे निरूपितजीवसबन्धगुणानां, कर्मद्वारे च निरूपितस्वस्वव्यापाराणां प्रकृतिनिक्षेपादिभिरनुयोगद्वारैः स्वभावभेदरूपप्रकृतिप्ररूपणा क्रियते । यथा पञ्चस्वभावा ज्ञानावरणस्य, मतिज्ञानावरणादयः । नव दर्शनावरणस्येत्यादि, तत्प्रकृतिरनुयोगद्वारम् ।५।

(१७) 'बंधणं' ति । बन्धनाभिधायितया बन्धनाभिधानमनुयोगद्वारम् । तत्र चतुर्विधमभिधेयं, (१) बन्धो (२) बन्धका. (३) बन्धनीय (४) बन्धविधानमिति । तत्र बन्धाधिकारे जीवप्रदेशकर्मपुद्गलानां सादिरना-

दिश्च बन्धः प्रबन्धतोऽभिधीयते । बन्धकाधिकारे पुनरष्टविधकर्मसम्बन्धका अपर्याप्तसूक्ष्मैकेन्द्रियादय. पर्याप्तसञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियावसानाश्चतुर्दशापि जीवप्रकाराः सप्रपञ्चमुच्यन्ते । बन्धनीयद्वारे बन्धयोग्यायोग्यद्रव्यविचारोऽधिक्रियते । बन्धविधानाधिकारे च प्रकृति स्थित्यनुभागप्रदेशबन्धा' प्रत्येक सप्रबन्धाः प्रतिपाद्यन्ते ।६।

(१८) 'निबंध' त्ति । निबन्धन निबन्धो विषयनियम इत्यर्थः । तत्र यस्मिंश्चक्षुरादीनामिव रूपादिषु प्रकृतीना निबन्ध उच्यते । यथा सकलरूपिद्रव्यविषयज्ञाननिराकरण एव व्यापारवदवधिज्ञानावरण, गुरुलघुकान [त]प्रदेशिकरूपिद्रव्यगोचरदर्शनावारकं चक्षुर्दर्शनावरणं । यथा वा शरीराङ्गोपाङ्गादिपुद्गलविपाकिप्रकृतयो गृहीतौदारिकादिपुद्गलदलिकविशेषसम्पादन-विषयव्यापारनियतास्तदनुयोगद्वारमिति ।७।

(१९) 'पक्कमो' त्ति । प्रक्रमो बन्धकाल एव क्रमो दलिकप्रमाणपरिपाटिरूप. प्रक्रमः । तत्र यस्मिन्नकर्मस्वरूपेण स्थिताना कार्मणवर्गणास्कन्धाना जीवप्रयोगतो मूलोत्तरप्रकृतिस्वरूपेण परिणमता प्रकृतिस्थित्यनुभागविशेषेण विशिष्टाना प्रमाण-क्रमप्ररूपणा यथाष्टविधबन्धकस्य मूलप्रकृतीनामायुर्भागः स्तोको नामगोत्रयोस्तुल्यस्ततो विशेषाधिक इत्यादि,तदनुयोगद्वार प्रक्रम' । एव विशेषानुयोगद्वाराणामप्यभिधेयानुसारतोऽभिधाननिर्देशो दृश्य इति । यश्च 'पक्कइइ' त्ति आदर्शपुस्तकेषु पाठो न स कर्म्प्रकृतिप्राभृते दृश्यते । तत्र 'पक्कमु [वक्कमु] दये' त्ति पाठस्यानेकश उपलम्भाद् बुध्यते चासाविति ।८।

(२०) 'उवक्कमे' त्ति । उपक्रमण उपक्रमः कर्मणा प्राच्यस्वरूपपरित्यागेन स्वरूपान्तरापादन, स बन्धनोदीरणोपशमनाविपरिणामभेदाच्चतुर्धा[1] । तत्र बन्धनोपक्रमो बद्धाना कर्मणा प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशरूपतया निधत्तिनिकाचनाकरणाभ्यां

1 उक्त च श्रीस्थानागसुत्ते–'चउव्विहे उवक्कमे पण्णत्ते, त जहा बंधणोवक्कमे,उदीरणोवक्कमे, उवसामणोवक्कमे, विपरिणामणोवक्कमे । [श्री स्था. प्रध्य. ४ उद्दे. २]

॥ १३ ॥

[19]पक्क-[20]मुवक्कमु-[21]दए [22]मोक्खो पुण [23]सकमे [24]लेसा ॥ १ ॥

दृढतरबन्धसम्पादनमिति, यश्चाऽकर्मस्वभावपुद्गलानां जीवव्यापारत· कर्मभावभवनेन बन्धनोपक्रमः स इह नाधिकृत·, कृतिद्वारवतारितत्वात् तस्य । अप्राप्तफलकालानां कर्मणा करणविशेषत वेद्यमानकर्मभि· सहोदय-क्षयप्रवेशनमुदीरणोपक्रमः । उपशमनैवोपक्रम उपशमनोपक्रमः स च देशसर्वभेदादुपशमनाया· द्विविधस्तत्र देशोपशमना उद्वर्तनाऽपवर्तनासक्रमव्यतिरिक्तकरणाऽयोग्यतया कर्मणो व्यवस्थापन, सर्वोपशमना तु सर्वसक्रमादिकरणाविषयतयेति । विरुद्धः कर्मणामकर्मरूपताभवनेन परिणामो विपरिणामो निर्जरेत्यर्थः । स च प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशानां देशतः सर्वतश्च भवति, तत्र सर्वतः शैलेश्यादौ स्वस्वसर्वक्षयकालो (ले) शेषकाले च देशत. । स एवोपक्रमो विपरिणामोपक्रमः ।।९।।

(२१) 'उदये' त्ति; उदयो विपाकोऽनुभव इत्यर्थ· स च मूलोत्तराणां प्रकृतीनां प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशभेदादनेकधा अवि(भि)धानीयः । आह–वेदनोदययोः कः प्रतिविशेषः येनोदयः पृथगुच्यतेति ? उच्यते, स्वपरविपाकानपेक्षं पुद्गलदलिकानुभवनं वेदना, उदयस्तु स्वविपाकापेक्ष कर्मानुभवनमिति ।१०।

(२२) 'मोक्खो' त्ति । मोक्षोऽपगमः कर्मणो विनाश इत्यर्थः । सोऽपि प्रकृत्यादिभेदस्य कर्मणो भणनीयः । आह–विपरिणामोपक्रमोऽपि एवलक्षण एवातः किमस्य पृथगुपन्यास इति सत्य, किन्तु विपरिणामोपक्रमो देशसर्वनिर्जराभ्यां कर्ममोक्षलक्षणः । मोक्षः पुनरध स्थितिगलनाऽन्यप्रकृतिसक्रमोद्वर्तनादिभिः विवक्षितकर्मस्वरूपाभावलक्षण इत्यनयोर्विशेषः ।।११।।

(२३) 'पुण संकमे' त्ति । पुनरिति बन्धोत्तरकाले संक्रमण–सक्रमः पुनःसंक्रमः । यत्प्रागबद्धकर्मणो बध्यमानस्वजातीयकर्मणि करणविशेषतस्तत्स्वभावताकरणेन निक्षेपणं स च मूलप्रकृतिषु स्थित्यनुभागयोरुत्तरप्रकृतिषु प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशानामनेकप्रकार इति ।१२।

(२४) 'लेस' त्ति । लिष्यते श्लिष्यते आभिर्जीवः कर्मणेतिलेश्यास्ताश्च द्रव्यभावभेदाद् द्विभेदास्तत्रद्रव्यलेश्या यानि(नि) किल द्रव्याण्याश्रित्य जीवस्य स्फटिकमणेरिव कृष्णादिलेश्यापरिणाम. प्रवर्तते तानि वर्णभेदतो-भिद्यमानानि द्रव्यलेश्या इति । तत्र भ्रमराङ्गारकाककोकिलादिसमानवर्णा कृष्णलेश्या शेषास्तु नीली-कापोती-तैजसी-पद्मा-शुक्लाभिधाना लेश्याः यथाक्रमं कदलीदल कपोतच्छव-जपाकुसुम-कमलकेसर-हससदृशप्रकाशा विज्ञेया इति । यथोक्तम्—

"किण्हा भमरसवण्णा, नीला पुण गवलगुलि(नीलगुणि)यसंकासा ।
काऊ कवोयवन्ना, तेऊ तवणिज्जवन्नाभा ॥
पम्हा पउमसवण्णा, सुक्का पुण कासकुसुमसंकासा" । इति

[ ] [1]

भावलेश्या पुनर्द्रव्यलेश्याजनितो जीवपरिणामो मिथ्यात्वाऽसंयमकषायानुरक्तयोगप्रवृत्तिरूपः कर्मपुद्गलादानहेतुः । एवं च 'योगपरिणामो लेश्या' [2]इत्यपि युक्तमुक्त, योगपरिणामस्य प्राधान्येन लेश्यात्वात् । मिथ्यात्वादीनां विशेषणत्वेनाऽप्रधानत्वादागमादेऽपि क्वचित् केवलस्यैव तस्य लेश्यात्वाभिधानात्, '[3]शुक्ललेश्य. सयोगकेवली' ति वचनप्रामाण्यादिति ।१३।

---

1 षट्खण्डागमस्य धवलाटीकाया लेश्यानुयोगप्ररूपणाया]मुद्रित भा. १६ पृ. ४८५]मपीदमेवावतरण 'वुत्तं च' इत्यादिकथनपूर्वक [illegible] दृश्यते । 2 'योगपरिणामश्च लेश्या' इत्युक्त श्रीप्रज्ञापनासूत्रप्रदेशव्याख्यायां श्रीहरिभद्रसूरीश्वरैः । 3 उक्त च श्रीम[illegible] चतुर्थकर्मग्रन्थे–'छसु सुक्का'.. .. 'षट्सु' अपूर्वकरणानिवृत्तिबादरसूक्ष्मसपरायोपशान्तमोहक्षीणमोहसयोगिकेव[illegible] गुणस्थानकेषु शुक्ललेश्या भवति न शेषा. पञ्च ।

[चतुर्थकर्म्मग्रन्थे गा. ५०]

[25]लेसाकम्मे [26]लेसापरिणामे तह य [27]सायमस्साते ।

(२५) 'लेसाकम्मे' त्ति। लेश्यानां कृष्णादीनां कर्म फल कार्यमित्यर्थः, लेश्याकर्म तद्यथा-

कृष्णलेश्याऽन्वितो जीवः, निर्दयः कलहप्रियः । रौद्रानुबद्धवैरश्च, चौरोऽलीकवचोरतः ॥ १ ॥

मन्दो बुद्धिविहीनश्च, मानी विषयलालसः । निद्रालुरलसो मायी, नीललेश्याऽन्वितो सु(पु)मान् ॥ २ ॥

कापोतीसंगतोऽन्येभ्यः, क्रुध्यत्यात्मप्रशंसकः । न प्रत्येति परं जातु, स्तूयमाने च तुष्यति ॥ ३ ॥

दयादानरतो नित्यं, कृत्याकृत्यं च वेत्त्यसौ । प्रेक्षति च समं सर्वं, तैजसीमाश्रितः पुमान् ॥ ४ ॥

त्यागी चोक्षः क्षमाशीलः, साधुपूजापरायणः । अवक्रकर्मसंयुक्तः, पद्मलेश्यानुभावतः ॥ ५ ॥

अपक्षपाती सर्वत्र, न निदानविधायकः । रागद्वेषविहीनश्च, शुक्ललेश्यो भवेदिति ॥ ६ ॥[ ][1]

(२६) 'लेश्या(सा)परिणामे' त्ति । लेश्यानां गुणगुणिनोरभेदोपचारात् लेश्यावतां जीवानांपरिणामोऽपरापरपर्यायान्तरगमन लेश्यापरिणामः। तत्र कृष्णलेश्यावान् सक्लिश्यमानस्तामेव कृष्णलेश्यां षट्स्थानपतित सक्रामति. विशुध्यमानश्च षट्स्थानहान्या तां वा प्राप्नोति अनन्तगुणशुद्धतया नीललेश्यां चेति।एवं नीलादिलेश्यावतामपि संक्लेशतो विशुद्धितश्च परिणामो ज्ञेयः। परं सक्लिश्यमाना नीललेश्यादयः षट्स्थानानुगतस्वस्थानपरिणामा. स्युरनन्तगुणानन्तरलेश्यास्थानपरिणताविति, विशु-

1 प्रस्तुतश्लोकषट्कप्रतिपादितार्थमदृशभावार्थप्रदर्शिका. नवगाथाः षट्खडागमस्य धवलाटीकायां [मुद्रित भा. १६ पृ. ४९०-४९१-४९२] दृश्यन्ते, जिज्ञासुभिस्तास्ततस्स्वयमवलोकनीयाः ।

[28]दीहे ह्रस्से [29]भवधारणीय तह [30]पोग्गलाअत्ता ॥२॥

द्ध्यन्तश्च षट्स्थानविशुद्धयो वा अनन्तगुणविशुद्धोत्तरलेश्यास्थानविशुद्धयो वा भवेयुरिति। शुक्ललेश्यस्तु विशुद्धयन् स्वस्थान-विशुद्धिरेव ।१५।

(२७) 'सायमसाय' त्ति सदेव स्वार्थिकाण्प्रत्ययात् सातं सद्वेद्य कर्म । तद्विपरितमसातमसद्वेद्य कर्म तदेकैकमेकान्ता-नेकान्तप्रभेदतो द्विरूप तत्रैकान्तत सातमसातं वा यद्यद्रूपतया बद्धं तत् तद्रूपतयैवप्रकृत्यन्तरासक्रा·तम् । अप्रतिसक्रान्त वा वेद्यमान-मेएत (मेत) द्विपरितममे(ने)कान्तत इति ।१६।

(२८) 'दीहे ह्रस्से' त्ति । दीर्घं नाम बहु तद्विपर्ययात् ह्रस्व तदे(दे)कैकं प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशभेदाच्चतुर्विधम् । तत्र बन्ध प्रतीत्य मूलप्रकृतिषु सप्तविधबन्धापेक्षयाऽष्टविधबन्ध प्रकृतिदीर्घम् । षड्विधबन्धात् सप्तविध इति । एवमुदयोदीरणा-सत्तासु । तथोत्तरप्रकृतीना बन्धादिषु स्थित्यादिषु च सर्वत्र दीर्घं विज्ञाय वक्तव्यम् । ह्रस्व तु तद्विपर्ययतो योजनीय तद्यथा–षड्-विधः सप्तविधबन्धाद् ह्रस्व , सोऽप्यष्टविधबन्धादित्यादि ।१७।

(२९) 'भवधारणीय' त्ति । भवन्ति कर्मवशिनो जीवा अनेन परिणामेनेति भव । स च त्रिधा ओघ्य(घ)भव , आदेश-भवो भवग्रहणभवश्च। तत्रौघभा (भ) व कर्माष्टकोदयजनिताजनितजीवपरिणाम [1] ससारित्वमित्यर्थः । आदेशभवो गतिनामकर्मो-दयोत्पादितो नारकादिशब्दाभिधाननिबन्धनजीवपरिणामविशेष । भवग्रहणभव पुन प्राक्शरीरपरित्यागेन शरीरान्तरारम्भ-सम्भवा(व)स्तत्र भवग्रहणलक्षणे भवे धार्यते जीवो येन तत् भवधारणीयं कर्म, तच्चायुरेवेति ।१८।

(३०) 'तह पोग्गला अत्ता' तथेति समुच्चयार्थ. । पुद्गला. रुपिद्रव्याणि, अत्ता गृहीता जीवेनेतिशेष । ते च षोढा,

1 'भग कर्माष्टकोदयजनितो जीवपरिणामः' इतिपाठ उचित ।

[31]णिद्धत्तमणिद्धत्त [32]णिक्काइयमणिकाइय य [33]कम्मट्ठिती ।

तद्यथा—१, ग्रहणत आत्ता हस्तादिगृहीतदण्डादिवत् । [1][२ परिणामत आत्ता मिथ्यात्वादिपरिणामगृहीतपुद्गलादिवत् । ३, उपभोगत आत्ता य उपभोगार्थं गृहीताः पुद्गला गन्धतम्बोलादिवत् । ४, आहारत आत्ता ये आहारार्थं गृहीता, अशनपानादिवत् । ५, ममत्वत आत्ता येऽनुरागतो गृहीताः, वनितादिवत् । ६, परिग्रहत आत्ता][1] परिग्रहतः स्वायत्तीकृतवनादिवत् ।१९।

(३१) 'णिद्धत्तमणिद्धत्त' त्ति । निधत्तं नाम उद्वर्तन(ना)पवर्तनातिरिक्तकरणायोग्यतया कर्म(र्म)णः करणं, तद्विपरितमनिधत्तं ।२०।

(३२) 'णिकाइयमणिकाइयं' ति । निकाचित नाम बन्धोत्तरकाल कषायोदयविशेषात् संक्रमादिकरणकलापागोचरतया कर्मणो विधानम् । एतद्विपरितमनिकाचितमिति ।२१।

(३३) 'कम्मट्ठिइ' त्ति । कर्मणां ज्ञानावरणादीनां बन्धक्षणप्रभृति आनिर्जराक्षणं जीवप्रदेशैः सम्बन्धपरिणामः स्थितिः । सा च मूलोत्तरप्रकृतिभेदतो जघन्यादिभेदतश्चानेकवि[धे]ति ।२२।

(३४) 'पच्छिमखंधे' त्ति । इह त्रिधा प्रागुक्तस्वभाव ओघभवादिर्भवस्तत्र भवग्रहणभवेनात्राधिकार, ततश्च पश्चिमेऽधिकारात् भवग्रहणे स्कन्धः, प्रक्रमात् कर्मपुद्गलसमुदाय पश्चिमस्कन्ध । तत्र बन्धोदयोदीरणासक्रमसत्ताः प्रतीत्य कर्मणां ज्ञानावरणादीनां प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशानां मार्गण मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानेषु विधीयत इति ।२३।

1 [.. ....] कोष्ठकान्तर्गतः पाठ. आदर्शे नास्ति किन्तु पूर्वापरार्थानुसंधानमालोच्यास्माभिर्ग्रन्थान्तर [मुद्रितधवला भा. १५ पृ-५१४/५१५] गतं प्रस्तुतविषयमवलोक्य तदनुसारेणात्र परिपूरित. ।

[३४]पच्छिमखन्धे [य तहा] [३५]अप्पाबहुगं च सव्वत्थ ॥३॥[1]"त्ति

किं सव्वतो चउवीसाणुओगदारमइयातो कहेसि ? नेत्युच्यते, तस्स छट्ठमणुओगदारं बंधणं ति ततो कहेमि । तस्स चत्तारि भेदा । तंजहा–बंधो, बंधगो, बंधणीयं, बंधविहाणं ति । किं सव्वातो चउव्विहाणुओगदारातो कहेसि ? नेत्युच्यते, बंधविहाणं ति चउत्थमणुओगदारं, ततो कहेमि । तस्स चत्तारि विभागा । तंजहा-पगइबंधो, ठिइबंधो, अणुभागबंधो, पदेसबंधो त्ति मूलुत्तरपगइभेयभिन्नो, ततो चउव्विहातोवि किंचि २ समुद्धरिय २ भणामि । सत्थसंबंधो भणितो ।

पुव्वि जीवट्ठाणगुणट्ठाणेसु सारजुत्ताओ गाहाओ भणामि त्ति भणियं, ताओ केरिसत्था[2]हिगाराओ त्ति तासिं अत्थाहिकारणिरूवणत्थं दो दारगाहाओ–

[3]उवयोगाजोगविही जेसु य ठाणेसु जत्तिया अत्थि । जप्पच्चइओ बंधो होइ जहा जेसु ठाणेसु ॥२॥
बंधं उदयमुदीरणविहिं च तिण्हंपि तेसि संजोग। बंधविहाणे य तहा किंचि समासं पवक्खामि ॥३॥

---

(३५) 'अप्पाबहुयं च सव्वत्थे' त्ति । अल्पबहुत्व च सर्वत्र कृतिवेदनाविद्वारेषु यथायोगमुन्नेतव्यमिति ।२४। एषां च कृत्याद्यनुयोगद्वाराणां चतुर्विंशतेरपि विस्तरार्थः 'कर्मप्रकृतिप्राभृतादधिगमनीयः । अत्र चूर्णिकारकृतद्वारोल्लिङ्गनाश्रुतकृत्याविपदाभिधि(धे)यनिर्देशमात्रस्य प्रस्तुतत्वादिति ॥

---

1 णिहत्तमणिहत्तं च णिक्काइयमणिक्काइय कम्म इति। पच्छिमखंधे अप्पाबहुग च सव्वत्थओ ॥३॥ इति पाठो मुद्रितप्रतौ ।
2 मु. प्रतौ 'केरिसि ? सत्याहिगाराओ' इति पाठः । 3 'उवयोगजोगविही' इति मु. ।

॥ ११ ॥

व्याख्या— [1]'उवयोगाजोगविही जेसु य ठाणेसु जत्तिया अत्थि' त्ति, [2]आसन्नो योगो उपयोगो, उवजुञ्जति त्ति वा उवओगो, अविरहियजोगो वा उवयोगो। संसारत्थाणं णिव्वुयाणं च जीवाण सव्वकालं तेण जोगो त्ति काउं उवओगो वुच्चति। किं कारणं? जीवस्वभावत्वात् तव्विरहिओ जीवो ण भवइ त्ति। सो दुविहो—सागारोवओगो अणागारोवओगो य। सागारोवओगो सरूवावहारणं रूवाइविसेसविन्नाणमित्यर्थः। तेसिं चेव सामन्नात्थावबोहो खंधावारोपयोगवत् सो अणागारोवओगो। पंचविहं णाणं अन्नाणतिगं च सागारोवयोगो। चक्खुआइचउव्विहं दंसणं अणागारोवओगो। तत्थ पंचविहं णाणं आभिणिबोहियाइ। तत्थ पंचण्हमिंदियाणं मणो छट्ठाणं उग्गहादयो चत्तारि भेया, [3][......] तेहिं य [36]सुयाणुसारेण घडपडसंखाइविन्नाणं संपयकालीयं तं आभिणिबोहियं। इंदिय मणोणिमित्तं अतीतादिसु अत्थेसु सुयाणुसारेण जं णाणं उपज्जइ तं सुयणाणं, आभिणिबोहियंपि तत्थत्थि जेण तं पालिजइ। इंदियमणोणिरवेक्खं अणावरियजीवपएसखयोवसमणिमित्तं साक्षात् ज्ञेय-

(३६) 'तेहिं य सुयाणुसारेण' त्ति। अभिधानप्लावितार्थग्रहणप्रत्ययो लब्धिविशेषः श्रुतम्। उक्तं च,

जे अक्खराणुसारेण मइविसेसा तयं सुयं सव्वं। जे पुण सुयणिरवेक्खा सुद्धं चिय तं मइन्नाणं ॥१॥

[श्रीविशेषावश्यकभाष्ये गा. १४४]

तच्च शब्दात् गम्यार्थाविनाभूतार्थान्तराद्वा स्यात्। यदुक्तम्—

1 'उवयोगविही' इति मु.। 2 मु प्रतौ 'आसन्नो .... 'इति व्युत्पत्तेः पूर्वं 'उपयुज्यत इति उपयोगः' इत्येव व्युत्पत्तिः, सा च जे. प्रतौ न दृश्यते। 3 जे. प्रतावत्र [........] कोष्ठकस्थाने 'चक्खुमणोवज्जाए तु वजणावग्गहो चउहा' इतिपाठोऽधिकः।

ग्राहि तदवधिज्ञानं, प्रदीपज्वालाकटकान्तरविनिर्गतप्रकाशघटादिप्रकाशवत् । मणत्तेणं गहेऊणं पोग्गले जाणइ जीवो जेहिं ते मणो भणंति, तेसिं पोग्गलाणं पज्जाया मणोपज्जाया तेसु णाणं मणपज्जवनाणं । [37]तहेव सुद्धा जीवपदेसा परिछिंदन्ति त्ति ते पोग्गले णिमित्तं काउणऽतीताणागयवट्टमाणे भावे पलिओवमासखेज्जइभागे पच्छाकडे पुरेकडे खओवसमाओ माणुमखेत्ते वट्टमाणेजाणइ ण परतो तं मणपज्जवणाणं । केवलं सकलं संपूर्णं जीवस्स णिस्सेसावरणखयसंभूयं, [38]अहवा सव्वदव्वपज्जाय-

---

'दुविहं सुयनाण सद्दलिंगय असद्दलिंगय च' त्ति । तस्यानुसारोऽनुगमो निश्रेत्यर्थः । अथ चास्य श्रुतस्य प्राक्श्रुतसंस्कृतमते संप्रति अभ्यासातिशयात् श्रुतव्यापारनिरपेक्षधियोऽनुध्यानं विहीनस्यैव प्रमातुर्ज्ञानप्रवृत्तावियति । यदुक्तम्-

पुव्वं सुयपरिकम्मियमइस्स जं संपयं सुयाईयं । तं निस्सियनियेरं (मियरं) पुण अणिस्सिय मइचउक्कं तं ॥

[श्रीविशेषावश्यकभाष्ये, गा. १६९]

मतिचतुष्कमौत्पत्तिक्यादि । इद च म[ति]ज्ञानं श्रुतनिश्रित बाहुल्यमपेक्ष्योच्यते, अन्यथा तन्निश्रासन्तरेणापि एकेन्द्रियादिषु तस्य सम्भवात् ।

(३७) 'तहेवे' त्यादि । तथैव अवधिज्ञान इव शुद्धाः सजाततदावरणक्षयोपशमाः । द्रव्यद(त)स्तान्मनस्त्वपरिणतान् निमित्तीकृत्य गोचरतया लवे(ऽवलम्ब्ये)त्यर्थः । भावतस्ती(तोऽती)तानागतवर्तमानान् भावान् बाह्यावस्यालोचनान् गुणान् तत्पर्यायान् , कालतस्ती(तोऽती)तानागतयोः पल्योपमासंख्येयभागयोर्यथाक्रमं पश्चात्कृतपुरस्कृतान् क्षयोपशमनियमात् , क्षेत्रतो मनुष्यक्षेत्रगतान् जानातीति ।

(३८) 'अहवे' त्यादि, । अथवेति भेदान्तरोपक्षेपार्थः । सर्वेषां द्रव्याणां तत्पर्यायाणां च सकलक्षेत्रकालाद्यनुवेधानुसर-

सकलावबोहणेण वा केवलं अच्चंतखाइयं केवलणाणं । मूलिल्लेसु तिसु णाणेसु अन्नाणभावो वि होज्जा, मिच्छत्तोदया, पित्तोदयव्याकुलीकृतचित्तस्य शुक्लरूपविपर्ययात् पीताभासिरूपवत् । [39]मतिश्रुतावधयश्च विपर्यासं गच्छन्ति । [40]कथं ? कडुकालाबुगद्रव्ये [1]प्रक्षिप्तक्षीरमकरादिद्रव्यविपर्यासवत् । [41]भाजनविशुद्धितश्च दव्वाणमविणामो दिट्ठो जहा सुपरिसुद्धालाबुद [2]व्वोवक्खित्तखीरादिदव्वाविवत्तिवत् तथा च तत्त्वार्थश्रद्धानम् । अहवा विससम्मीसओसहसंपर्कवत् मइयातोववूहणं च । एते अट्ठ सागारोवओगा । अणागारोवओगो चउव्विहो चक्खुदंसणाइ । चक्खिंदियसामन्नत्थावबोहो चक्खुदंसणं । सेसिंदियमणोसाम-

णात् सपूर्णमवबोधनं परिच्छेदनं सर्वद्रव्यपर्यायसकलावबोधनं तेन वा केवलं, एतेन विषयसाकल्यतो विषयिणो ज्ञानस्यापि साकल्यमभिहितमिति।

(३९) 'मतिश्रुते' त्यादि, । अत्र चकारो भङ्ग्यन्तरभणनार्थम् । एषां हि अज्ञानभावो विपर्यासादभिहितो । विपर्यासश्च मिथ्यात्वानुरक्तत्वेन आत्मनः ।

(४०) कथमित्याह–'कटुकालाबुके' त्यादि दृष्टान्तः । आह किं यथा आश्रयाऽशुद्धेराश्रयिणोऽप्यशुद्धिस्तथा तद्विशुद्धावविनाश इत्याह ।

(४१) 'भाजने' त्यादि, । तथेति दार्ष्टान्तिकोपनयनार्थम । यथा किल विशुद्धाधारवशात् दुग्धादिद्रव्याविपर्यासस्तथा मिथ्यात्वोदयवैकल्यतो मत्याद्यविपर्यासलक्षणं तत्त्वार्थश्रद्धानमाविरस्तीत्यर्थः ।

1-द्रव्योपक्षिप्त-इति मु. । 2 दव्वोपक्षिप्त इति मु. ।

मत्थावबोहो अचक्खुदंसणं । ओहिणाणेणं [1]सामन्नत्थावगाहगं ओहिदंसणं । केवलनाणेण सामन्नग्गहणं केवलदंसणं । एवमेते बारस उवयोगा परूविया । 'जोगो' त्ति,

"जोगो विरियं थामो उच्छाहपरक्कमो तहा चेट्ठा । सत्ती सामत्थं चिय जोगस्स हवंति पज्जाया ॥१॥"

[2]वीरियंतराइखयोवसमजणिएण पज्जाएण जुज्जइ जीवो अणेणेति योगो, अहवा जुंजइ जीवो वीरियंतराइखयोवसमजणियपज्जायमिति जोगो ।

"मणसा वाया काएण यावि जुत्तस्स विरियपरिणामो । जीवस्स अप्पणिज्जो स जोगसन्नो जिणक्खाओ ॥१॥
तेजोजोगेण जहा रत्तत्ताइ घडस्स परिणामो । जीवकरणप्पओगे विरियमवि तहप्पपरिणामो ॥२॥

सो मणजोगाई तिविहो दुब्बलस्स यष्टिकादिद्रव्यवत् उवट्ठंभकरो, अहवा जोगो वावारो सो मणआइणं । मणजोगो चउव्विहो-सच्चमणजोगो जाव असच्चामोसमणजोगो । मणजोगस्स सच्चतं मोसत्तं सच्चमोसत्तं असच्चामोसत्तं वा णत्थि, किंतु [42]णोइंदियावरणखयोवसमेण मणणाणपरिणयस्स जीवस्स [3]बलाधारभूयस्य जोगस्स सहचरियत्तातो सच्चादिववदेसो,

(४२) किन्तु 'नोइन्द्रिये'त्यादि । अत्रायमभिप्रायः सत्यत्वादयो ज्ञानधर्मास्ते च मनोज्ञानप्रवृत्तिनिमित्तभूतमनोद्रव्यसमुत्थजीवप्रयत्नात्मकमनोयोगकार्यगुणोपचारादु(द)दुष्टा इति । दृष्टश्चायमर्थः-यथा बालस्य बलाधानकारणमन्न प्राणहेतुरपि प्राणा इति ।

1 'सामन्नत्थावगाहए' इति मु. । 'सामन्नपयत्थसाहगं' इति ख. । 2 'वीरियतराइयखयखयोवसमजणिएण' इति जे. । 3 'बलाहाणभूयस्स' इति जे ।

जहा वालस्स बलाधाणकारणं अन्नं पाणा इति । अहवा जोगस्सेव पाहन्नविवक्खया सच्चामच्चाइपरिणामो, [43]जहा बाहिरकारण निरवेक्खो नाणपरिणामो तच्चातच्चववएसो भवति [1]तहा जोगस्स वि तच्चातच्च परिणामो भवति । एवं वायाकारणेण जोगो वइजोगो । वइजोगोवि चउव्विहो तहा चेव । सच्चमोसत्तं कहमिति चेत् ? भन्नति, तंजहा—असोगवणं चंपयवणमिति । अन्नेसुवि रुक्खेसु विज्जमाणेसु असोगवणं चंपयवणमेवेति णाणं ववहारो वा तस्स बलाधाणकारणभूतो जोगोवि तव्ववदेसभागी भवति । कायजोगो सत्तविहो, तंजहा—ओरालियकायजोगो, ओरालियमिस्सकायजोगो, वेउव्विय, वेउव्वियमिस्सओ, आहारगो, आहारगमिस्सओ, कम्मइगकायजोग इति । तत्थ ओरालियमिति ओरालं उरलं महत् बृहच्चेति एगट्ठं । उरालमेव ओरालियं; ओराले भवं वा ओरालियं । कहमुदारत्तं ? भन्नइ—[44]पदेसतो असंखेज्जगुणहीणत्तातो ओगाहणातो असंखेज्जगुणब्भहियमिति ।

(४३) 'यथे' त्यादि । यथा च बाह्यकारणनिरपेक्ष उपचारहेतुनिरपेक्षः स्वत एव ज्ञेयानुगुणादितया ज्ञानपरिणामः सत्यादिव्यपदेशभाक् तथा तदुपष्टम्भकः प्रत्यात्मयोगोऽपि साद्गुण्यादित एव तथा व्यपदिश्यते ।

(४४) 'पएसतो' इत्यादि । इह कश्चिदाह—औदारिकशरीरमुत्कर्षतोऽपि योजनसहस्रप्रमाणं वैक्रियं च योजन लक्षप्रमाणमिति वैक्रियमौदारिकात् सख्येयगुणावगाहं । कथमुच्यते 'ओगाहणाउ असंखेज्जगुणब्भहिय' औदारिकं वैक्रियादिति ? उच्यते—प्रदेशापेक्षमेतद् , तथाहि—वैक्रियशरीरप्रदेशादौदारिकशरीरप्रदेशः सर्वोऽपि अवगाहतो असख्येयगुणः । इत्यत्यन्तमल्पे(मल्पा)पि ते योजनसहस्रादिप्रमाणपूरकाः, अन्यथा यदि ते वैक्रियशरीरप्रदेशावगाहा भवेयुस्ततस्तद्वैक्रियादसख्येयगुणहीनमेव भवेदिति ।

1 'तहा जोगस्स वि तच्चातच्चपरिणामोभवति' इति पाठः मु. प्रतौ नास्ति ।

ओरालियकाएण जोगो ओरालियकायजोगो । ओरालियमिस्सकायजोगो त्ति मिस्समिति अप्पडिपुन्नं, जहा गुडमिस्सं अन्नदव्वं गुडमिति ण ववदिस्सति, अन्नमिति च न ववइस्सइ, गुडेतरदव्वेण अप्पडिपुन्नत्ताओ; एवमिहावि ओरालियकम्मइगसरीरद्रव्यमिश्रत्वात् मिश्रव्यपदेशः । अथवा सरीरकज्जपर्योयणाकरणाओ मिस्सं, अपरिनिष्ठितघटवत् । जहा अपरिनिट्ठितो घडो जलधारणादिसु असमत्थो घडोवि घडववदेसं न लभते, एवमिहावि अपडिपुन्नत्तातो अपरिणिट्ठितो त्ति मिस्समिति ववदिस्सते, एवं सव्वत्थ मिस्सविही । विविहइड्ढिगुणजुत्तमिति वेउव्वियं, अहवा विविहा क्रिया विक्रिया, विक्रिया एव वैक्रियं विक्रियायां वा भवं वैक्रियं, वेउव्वियकाएण जोगो वेउव्वियकायजोगो । मिश्रं पूर्ववत् । णिपुणाणं वा णिद्धाणं वा सुहमाणं वा आहारगदव्वाणं सुहुमतरमिति आहारकं, आहारेइ अणेण सुहुमे अत्थे इति वा आहारगं, आहारगकाएण जोगो आहारगकायजोगो । मिश्रं पूर्ववत् । कम्ममेवेति कम्मइगं, कम्मणि भवं वा कम्मइगं । कम्मकम्मइगाणमणाणत्तमितिचेत् ? तन्न, कम्मइगस्स [1]कम्मइयसरीरणामोदयनिष्पन्नत्वात् , किंतु कम्मइगसरीरपोग्गलाणं कम्मपोग्गलाणं च सरिसववगणत्तातो तंमि चेव तस्स ववदेसो । सव्वकम्मप्परोहणुप्पायगं सुहदुक्खाण वीयभूयं कम्मइगसरीरं, तेण जोगो कम्मइगकायजोगो । एवमेते पन्नरसजोगा परूविया ।

'उवओगाजोगविहो' त्ति । विधिसद्दो पत्तेयं पत्तेयं संबज्झइ उवओगविही जोगविही, विही विहाणं भेदो विग-

1 'कम्मसरीर- इति जे. ।

॥ २५ ॥

प्पो। 'जेसु य ठाणेसु' त्ति जीवट्ठाणगुणट्ठाणेसु 'जत्तिया अत्थि' त्ति जावतिया अत्थि अमुगंमि जीवट्ठाणगुणट्ठाणंमि य जत्तिया उवओगा जोगाय संभवंति त्ति एयंमि पगरणे एयं भणति। 'जपच्चइओ बंधो' त्ति, पच्चयो हेउ कारणं णिमित्तं ति एगट्ठं, पच्चयो चउव्विहो मिच्छतं असंजमो कसाया जोगा इति। अमुगंमि गुणट्ठाणे अमुगपच्चइगं कम्मं बज्झइ त्ति एयंपि एत्थ भन्नइ। 'होइ जहा' इति णाणावरणादीणं कम्माणं बंधो जहा होइ त्ति [1]विसेसपच्चओ सूइओ, एयंपि भन्नइ 'जेसु ठाणेसु' त्ति, उवरिल्लपएण समं संबज्झइ। जेसु गुणट्ठाणेसु बंधोदयो जत्तिया अत्थि त्ति एयंपि एत्थ वुच्चइ ॥ २ ॥

'बंध उदयं उदीरणाविधिं च' त्ति, विधिसद्दो पत्तेयं पत्तेयं संबज्झइ। बंधविगप्पो उदयविगप्पो उदीरणाविगप्पो य, ते जेसु ठाणेसु जत्तिया संभवंति तं भन्नति। बंधो त्ति सुहुमबायरेहिं पोग्गलेहिं घटधूमवत् णिरंतरं निचिते लोके कम्मजोग्गे पोग्गले [2]घेत्तुं सामन्नविसेसपच्चएण जीवपएसेसु कम्मत्ताते परिणामणं बंधो वुच्चइ। उक्तं च—

[45]जीवपरिणामहेउ कम्मतया पोग्गला परिणमति। पोग्गलकम्मणिमित्त जीवोवि तहेव परिणमइ ॥१॥"

(४५) 'जीवपरिणामे' त्यादि। जीवस्य परिणामो योगकषायात्मकः, जीवपरिणामः। स एव हेतुर्निमित्त जीवपरिणामहेतुः, तस्मात् कर्मतया पुद्गला -कार्मणवर्गणान्तर्गताः-परिणमन्ति भवन्तीत्यर्थः। 'जोगा पयडिपएसं ठिइअणुभाग कसायतो कुणइ' त्ति (बन्धशतक गा. ९९)वचनात्। पाठान्तरो 'जीवपरिणामहेउं' ति जीवपरिणामो हेतुर्यत्र परिणमते तथेति क्रियाविशेषणत्वेन

1 'विसेसपच्चाओ' इति मु.। 2 'घेत्तु' इति पद जे. प्रतौ न दृश्यते।

तस्सेव बंधावलियातीतस्स विवागपत्तस्स अणुभवणं उदयो । उदयावलियातीताणं अकालपत्ताणं ठीईणं उदीरिय उदीरिय उदयावलियाए पक्खिविय दलियं पयोगेणं उदयपत्तठिइए सह अणुभवणं उदीरणा । **'तिण्हंपि तेसिं संजोगं'** ति बंधोदओदीरणाणमेव संवेहो संजोगो सो अमुगंमि ठाणे अमुको संभवइ त्ति तं भन्नइ । **'बंधविहाणे'** त्ति बंधस्स विहाणं बंधविहाणं बंधभेद इत्यर्थः । बंधो चउव्विहो, पगइबंधो, ठिइबंधो, अणुभागबंधो, पएसबंधो, य । चउण्ह वि बंधाणं मोयगदिट्ठंतो । जहा-कोइ मोयगो समितिगुडघयकडुहूंडादि [1]दव्वसंबद्धो, कोइ वायहरो, कोइ पित्तहरो, कोइ कप्फहरो, [2]कोइ निरोगो, कोइ मारगो, कोइ [3]बलकरो, कोइ बुद्धिकरो, कोइ बामोहकरो, एव कम्माण प्रकृतिः-स्वभावः, कोइ णाणमावरेइ, कोइ दंसणं, कोइ सुखदुक्खाइवेयणमित्यादि । तस्सेव मोयगस्स कालणियमणं अविनाशित्वेन सा ठिई । तस्सेव णिद्धमहुराइणं एगदुगुणदुगुणाइभागचिंतणं अणुभागो । तस्सेव समियाइदव्वाणं परिमाणचिंतणं पएसो । एवं कम्मस्सवि

नेयमिति । अहोऽवबुद्धमेतद्यज्जीवपरिणामत पुद्गलाना कर्मभाव., परं जीवस्यापि किंनिमित्तस्तथा परिणामो यत पुद्गला कर्मतया परिणमन्ति ? निर्हेतुकत्वे मुक्तानामपि तथा परिणतो कर्मबन्धाद्यापत्तेरित्याह-पुद्गलकर्मनिमित्तं जीवो ऽपि तथैव परिणमति । पुद्गला कायादय, कर्माणि कषाया, तन्निमित्त तद्धेतुक यथा भवति तथैव कर्मबन्धानुगुण्येन परिणमति । एतदुक्त भवति-योगकषायपरिणामो बन्धहेतुस्तत्र कायादिपुद्गलनिबन्धनो योग., कषाय. कर्महेतुकश्च कषायपरिणाम इति । सिद्धाना तदभावान्न कर्मबन्धाद्यापत्तिरिति न दोष ।

---

1 'दव्वसंजुओ' इति मु । 2 'कोइ निरोगो' इति जे. प्रतौ नास्ति । 3 'कोइ बलकरो' इति जे. प्रतौ न दृश्यते ।

सभावत्तमत्तचिंतणं पगइबंधो । तस्सेव तब्भावेण कालावट्ठाणचिंतणं ठिइबंधो । तस्सेव सव्वदेसोवघाइअघाइएक्कदुगतिग-चउट्ठाणसुभासुभतिव्वमंदाइचिंतणं अणुभागबंधो । तस्सेव पोग्गलपमाणणिरूवणं पएसबंधो । 'तह' त्ति, जहा [1]कम्मपगडीए भणियं तहा भणामि '**किंचि समासं पवक्खामि**' त्ति एएसिं पगइठिइअणुभागपएसाण किंचि किंचि संखेवेणं भणामित्ति भणियं भवइ ॥३॥

वक्खाणेयव्वा अत्था उवदिट्ठा । इयाणिं तेसिं विन्नासपओयणं भन्नति । उवओगो जीवस्सलक्खणं, तत्सिद्धौ शेषसिद्धिरिति । तेण उवओगो पढमं वुच्चइ । तारिसलक्खणो जीवो मणोवाक्कायजुत्तो चिट्ठइ त्ति तयणंतरं जोगो । जोगादयो जीवस्स कम्मबंधपच्चयत्ति काउं तदनंतरं सामन्नपच्चओ । सामन्नं विसेसे अवचिट्ठइत्ति, तदणंतरं विसेसपच्चओ । तेहिं पच्चएहिं जीवस्स कम्मबंधो हवइ त्ति तदनंतरं बंधो । बद्धस्स कम्मणो अणुभवणं ण अबद्धस्स इति तदनंतरं उदओ । उदए सति उदीरणा भवइ, णो अणुदिए उईरण त्ति, तदनंतरं उदीरणा । एएसिं तिण्हं पुढो सिद्धाणं समवायचिंतणं ति, तदणंतरं संजोगो । सामन्नभणियस्स बंधस्स पुणो भेदर्शनार्थं बहुविसयत्ताओ तदधीनत्वाच्च शेषप्रपञ्चस्येति तदनन्तरं बंधविहाणचिंतणं ति । एवं क्रमविन्यासे [2]प्रयोजनम् । पुव्वं जीवट्ठाणगुणट्ठाणेसु त्ति वुत्तं, उवदिट्ठक्कमेणेव जीवट्ठाणणिद्देसत्थं भन्नइ—

1 'कम्मपगडिसंगहणीए' इति मु. । 2 'एतं क्रमन्यासे' इति मु. ।

एगिंदिएसु चत्तारि हुंति विगलिंदिएसु छच्चेव । पंचिंदिएसु वि तहा चत्तारि हवंति ठाणाणि ॥ ४ ॥

व्याख्या–एगिंदिएसु जीवट्ठाणाति किं भणियं भवइ ? भन्नइ, जीवाण ठाणं जीवट्ठाणं, सव्वे संसारत्था जीवा एएसु चोद्दससु जीवट्ठाणेसु वट्टंति, तव्वाहिरा णत्थि त्ति काउं, जीवट्ठाण 'एगिंदिएसु चत्तारि होंति' त्ति, एगिंदिएसु चत्तारि जीवट्ठाणाइं तंजहा–एगिंदिया[1] दुविहा बायरा सुहुमा य । बायरा दुविहा–पज्जत्तगा अपज्जत्तगा य । सुहुमा दुविहा पज्जत्तगा अपज्जत्तगा य । एगिंदिया णाम फासिंदियावरणक्खयस्स [2]कम्मुणो खओवसमे वट्टमाणा एकेन्द्रियाणमनुना सेसिंदियसव्वावरणोदयसहिया जीवा, सुरमत्तादिमनुष्यवत् । ते दुविहा–बायरा सुहुमा य । बायरणामकम्मोदयाओ बायरा सुहुमणामकम्मोदयाओ सुहुमा । ण चक्खुग्गहणं पडुच्च बायरत्तं सुहुमत्तं वा किंतु णामकम्माभिणिव्वत्त जीवपरिणामं पडुच्च, जहा परमाणुत्तं ण हि परमाणुस्स चक्खुरिंदियगेज्झमिति रूवपरिणामो, किन्तु स्वाभाविको रूवपरिणामो, एवं बायरसुहुमपरिणामो णामकम्मोदयाभिणिव्वत्तो । (४६) अहवा जीवविवाग किंचि कम्मसरीरे वि अभिव्वंजयति बायरसुहुमत्तं, जहा मोहणीयकम्मपगई कोहो जीव-

(४६) 'अहवे' त्यादि, पक्षान्तर, जीवविपाकोऽप्येति जीवविपाक. किञ्चिन्नामान्तर्गत कर्मशरीरेऽपि अभि(भि)व्यञ्जयति बादरसूक्ष्मत्वे । एतदुक्तं भवति–यद्यपि जीव सूक्ष्मबादरनामोदयतोऽत्यन्तात्पेतरावगाहनारूपे बादरसूक्ष्मत्वे(सूक्ष्मबादरत्वे)प्रतिपद्यते । तथापि शरीरे तदभावो द्रष्टव्य, जीवप्रदेशसंकोचाद्यनुरोधित्वात्तस्य ।

1 'एगिंदिया जीवा' इति जे । 2 'कम्मुणो' इतिपदं जे प्रतौ नास्ति ।

विरागिणोवि सति सरीरे अभिवर्ति जणयइ, कोहोदए जीवो तप्पज्जायपरिणओ होइ, सरीरमवि तिवलियणिडालं [1]पसिन्न-मुहं भिउडीमभिवंजयइ। ते एक्केक्का दुविहा, पज्जत्तगा अपज्जत्तगाय। पज्जत्तगअपज्जत्तगत्तं च णामकम्माभिणिव्वत्तं।

४७ 'आहारसरीरिंदिय उस्सासवओ मणोभिणिव्वत्ती। होइ जओ दलियाओ करण पइ सा उ पज्जत्ती ॥१॥"

पज्जत्ती णाम सत्तिविसेसो। सो य दलिओवचयाओ उप्पज्जइ। आहारियस्स दव्वस्स खलरसपरिणामणसत्ती आहारपज्जत्ती। सत्तधातुतया रसस्स परिणामणसत्ती सरीरपज्जत्ती। इन्दिय पज्जत्ती पञ्चण्हमिन्दियाणं जोग्गे पोग्गले विचिणिय तब्भावणयणसत्ती अत्थावबोहसत्ती य इन्दियपज्जत्ती। बाहिरे आणापाणजोग्गे पोग्गले घेत्तूण आणापाणाए[2] परिणामित्ता ऊसा-

(४७) 'आहारे' त्यादि। आहारशरीरेन्द्रियोच्छ्वासवचोमनसां षण्णामर्थानामभिनिवृतिस्तत्तद्वर्गणापुद्गलानामेतद्रूपपरिणतिः। आहारशरीरेन्द्रियोच्छ्वासवचोमनोऽभिनिवृत्तिर्भवति जायते यतो हेतुभूताद्दलिकात् पुद्गलरूपात् करण प्रति करणतः कर्तुः साधकतमतया इत्यर्थः। लब्धिपर्याप्तिव्यवच्छेदार्थमेतत्। सा पर्याप्ति.। तु शब्दो विशेषणार्थो भिन्नक्रमश्च करणत. पुनस्तद्दलिक पर्याप्तिरित्यर्थ। एतदुक्त भवति–पर्याप्ति करण शक्तिविशेष इत्यनर्थान्तरं, स च दलिकोपचयादुत्पद्यते ततस्तद्दलिकमपि कारणे कार्योपचारात् करणपर्याप्तिरित्युच्यते। यथा दात्रेण लुनातीत्यत्र दात्रजन्यशक्तिविशेषस्यलवितु साधकतमत्वेन करणत्वेऽपि कारणे कार्योपचारात् दात्रस्य करणत्वं तथा[त्रा]पीत्यर्थः। अन्ये पुनरेवं व्याचक्षते–आहारशरीरेन्द्रियोच्छ्वासवचोमनसामभिनिष्पत्तिर्भवति यतो दलिकात्तन्नि[ष्प]त्ति योग्यवर्गणारूपात्तस्य दलिकतया गृहीतस्य स्वस्वविषयेषु परिणमन प्रति यत् करणं शक्तिरूपा सापर्याप्तिरुच्यते।

1 'पसिणसुह' इति जे.। 2 'उसासनीसासत्ताए' इति जे.।

मनोसासत्ताए निस्सरणसत्ती आणापाणपज्जत्ती । वइजोगे पोग्गले घेत्तूण भासत्ताए परिणामित्ता वइजोगत्ताए णिस्सरणसत्ती भासापज्जत्ती । मणोजोगे पोग्गले घेत्तूण मणत्ताए परिणामित्ता मणजोगत्ताए णिस्सरणसत्ती मणपज्जत्ती । एयाओ पज्जत्तीओ पज्जत्तगणामकम्मोदएण णिव्वत्तिज्जन्ति । तं जेसिं अत्थि ते पज्जत्तगा । एयाओ चेव पज्जत्तीओ अपज्जत्तगणामकम्मोदएण [1]ण णिव्वत्तिज्जन्ति । तं जेसिं अत्थि ते अपज्जत्तगा । तत्थ मूलिल्लाओ चत्तारि पज्जत्तीओ अपज्जत्तिओ य एगिन्दियाणं भवन्ति । वायासहिया ता चेव विगलिन्दियाणं, असन्निपञ्चिन्दियाणं च पञ्च हवन्ति । ता चेव मणोमहियाओ छ पज्जत्तिओ छ अपज्जत्तिओ य सन्निपञ्चिन्दियाणं भवन्ति । **'विगलिन्दिएसु छच्चेव'** त्ति, विगलाइं असंपुन्नाइं इन्दियाइं जेसि ते विगलिन्दिया, बेइन्दिआइ जाव चउरिन्दिया । फासिन्दियजिब्भिन्दियावरणाणं खओवसमे वट्टमाणा, दुविन्नाणसंजुत्ता, सेसिन्दियावरणसहिया[2] जीवा बेइन्दिया, ते दुविहा पज्जत्तगा अपज्जत्तगा य । फासिन्दियजिब्भिन्दियघाणिन्दियावरणाणं खओवसमे वट्टमाणा, तिविन्नाणसजुत्ता, सेसिन्दियसव्वविन्नाणावरणसहिया[3] जीवा तेइन्दिया, ते दुविहा पज्जत्तगा अपज्जत्तगा य । फासिन्दियजिब्भिन्दियघाणिन्दियचक्खिन्दियावरणाणं खओवसमे वट्टमाणा, चउविन्नाणसंजुत्ता, सेसमसव्वविन्नाणावरणसहिया जीवा चउरिन्दिया ते दुविहा,पज्जत्तगा अपज्जत्तगा य । एवं विगलिन्दिएसु वि छ जीवट्ठाणाणि । **'पञ्चिन्दिएसु वि तहा**

1 मय 'ण' कारो मु. प्रतो नास्ति । जे. प्रतौ विद्यते, स चात्रात्यन्तमावश्यक । 2 'सेसिंदियसव्वावरणसहिया' इति जे । 3 सेसिंदियसव्वावरणसहिया' इति जे ।

चत्तारि हवन्ति ठाणाणि' त्ति, पञ्चिन्दिया णाम पञ्चण्हमिन्दियावरणाणं खओवसमे वट्टन्ता, पञ्चविन्नाणसंजुत्ता, जीवा पञ्चिन्दिया ते दुविहा, असन्नी सन्नी य । तत्थ असन्नी णाम मणोविन्नाणरहिया, ईहापोहमग्गणगवेसणा जेसिं[1] जीवाणं णत्थि, ते दुविहा, पज्जत्तगा अपज्जत्तगा य । सन्निपञ्चिन्दिया णाम मणोविन्नाणसहिया [48]ईहापोहमग्गणगवेसणा य जेसिं जीवाण अत्थि ते सन्निणो,[2] ते दुविहा पज्जत्तगा अपज्जत्तगा य । एवं पञ्चिन्दिएसु वि चत्तारि जीवट्ठाणाणि ॥४॥ जीवट्ठाणाणं भेओ लक्खणं च परूवियं । इयाणि ते चेव गइआइएसु मग्गणट्ठाणेसु के कहिं अत्थि त्ति मग्गिज्जन्ति तण्णिरूवणत्थं भन्नइ—

निरियगईए चोद्दस, हवन्ति सेसासु जाण दो दो उ । मग्गणठाणेसेवं[3], नेयाणि समासठाणाणि ॥५॥

[गइइन्दिए य काए, जोए वेए कसाय नाणे य । सजमदंसणलेसा, भवसम्मे सन्नि आहारे ॥] (प्रक्षेपगाथा)

व्याख्या-'गइ' त्ति । चउव्विहा गई-णिरयगई, तिरियगई, मणुयगई, देवगई य । तत्थ **तिरियगईए चोद्दस** वि जीवट्ठाणाणि भवन्ति । कम्हा ? जेण एगिन्दियादओ जाव पञ्चिन्दिया सव्वेतिरिय त्ति काउं । **'सेसासु जाण दो दो उ'**

---

(४८) 'ईहापोहे' त्यादि । इहा च स्थाणुरयं पुरुषो वेत्येव सदर्थालोचनाभिमुखा मतिश्चेष्टा । अपोहश्च स्थाणुरेवायमित्यादिरूपो निश्चयः । मार्गणं चेह वल्ल्युत्सर्पणादयः स्थाणुधर्मा एव प्रायो घटन्तइत्याद्यन्वयधर्मालोचनरूपम् । गवेषणा चेह शिरःकण्डूयनादयः पुरुषधर्मा. प्रायो न घटन्त इति व्यतिरेकधर्मालोचनरूपा । इहापोहमार्गणगवेषणाः ।

---

1 'तसिं' इति मु. 2 'सन्निया' इति मु । 3 मग्गणठाणे एव' इति मु. ।

[49]णिरयगइमणुयगइदेवगईसु दो दो जीवट्ठाणाणि, सन्निपञ्चिन्दियपज्जत्तगा अपज्जत्तगा य। देवणेरइएसु करणपज्जत्तीए अपज्जत्तगो, न लद्धीए, लद्धीए पज्जत्तगा एव, जो करणपज्जत्तीए अपज्जत्तगो सो अपज्जत्तगगहणेणं गहिओ, लद्धिअपज्जत्तगो तेसु णत्थि। मणुस्सेसु दोन्नि। '**मग्गणठाणेसेव नेयाणि समासठाणाणि**' त्ति, मग्गणट्ठाणेसु एएणेव विहिणा समासट्ठाणाणि–जीवट्ठाणाणि णायव्वाणि। [50]गइ इन्दिय [1]जोग-णाण दंसणाणि अहिगयाणि सुत्ते। सेसेसु भन्नइ–'काये' त्ति, काओ छव्विहो–पुढविकाइयाइ, तत्थ पुढविआइसु वणस्सइपज्जन्तेसु चत्तारि जीवट्ठाणाणि भवन्ति एगिन्दियाणं। तसकाइएसु दस जीवट्ठाणाणि भवन्ति, बेइन्दियाऽपज्जत्तगाइ[2] जाव सन्निपज्जत्तगो त्ति। 'वेए' त्ति वेओ तिविहो–इत्थिवेओ, पुरिसवेओ, णपुंसगवेओ य। णपुंसगवेए चोद्दसवि जीवट्ठाणाणि भवन्ति। इत्थिपुरिसवेएसु चत्तारि जीवट्ठाणाणि भवन्ति, असन्निसन्निपज्जत्तगा अपज्जत्तगा य, करणपज्जत्तीए अपज्जत्तगा गहिया, जओ लद्धिपज्जत्तीए अपज्जत्तगा सव्वे णपुंसगा। अवे-

(४९) 'णिरयगइमणुयगइदेवगईसु दो दो जीवट्ठाणाणि' त्ति। अत्र मनुष्यगतौ सम्मूर्च्छनजाऽपर्याप्तकमनुष्यभावेन जीवस्थानकत्रयभावेऽपि यत्तु द्वयाभिधानं तत्तृतीयजीवस्थानकस्य तिर्यक्कल्पत्वात्तिर्यग्गतावेव विवक्षितमिति।

(५०) 'गइइन्दियजोगनाणदंसणाणि अहिगयाणि सुत्ते' त्ति। गति 'तिरियगईए' इत्यादौ, इन्द्रियाणि 'एगिंदियेसु' इत्यादौ, योगा 'नवसु चउक्के' इत्यादौ, ज्ञानदर्शनानि (दर्शनयो) रुपयोगरूपत्वात् 'एक्कारसेस्वि' त्यादौ, सूत्रेऽधिकृतानीति न स्वयं तन्मार्गणां चकार चूर्णिकार, किन्तु सूत्रव्याख्यानद्वारेणैवेति।

1 'गइइंदिए य काए भवइ। जोगणाणदंसणाणि अहिगयाणि' इति मु.। 2 'बेइंदियपज्जत्तगाइ इति मु.।

॥ ३२ ॥

पगेसु सन्निपज्जत्तगो होज्जा बायरसंपराइ जाव अजोगिकेवलि त्ति । 'कसाय' त्ति, कसाया चउव्विहा, कोहाइचउगु वि कसाएसु चोद्दस जीवट्ठाणाणि भवन्ति । अकसाएसु वि सन्निपज्जत्तगो होज्जा । 'संजमे' त्ति, संजया पञ्चविहा सामाइगाइसंजया, संजयासंजया य असंजया य । पञ्चसु संजएसु संजयासंजएसु य एक्केक्कं जीवट्ठाणं सन्निपञ्चिन्दियपज्जत्तगो लब्भइ, असंजएसु चोद्दस जीवट्ठाणाणि लब्भन्ति । 'लेस' त्ति, लेसा छव्विहा-किण्हाइ । किण्हनीलकाऊलेसासु चोद्दसजीवट्ठाणाणि लब्भन्ति, तेउ[५१]पम्हसुक्कलेसासु सन्निपञ्चिदियपज्जत्तगो अपज्जत्तगो य लब्भइ, करणअपज्जत्तगो गहिओ, लद्धिअपज्जत्तगस्स हेट्ठिल्ला तिन्नि लेसा भवन्ति । 'भव्वं' ति, भव्वाभव्वाण वि दोण्ह वि चोद्दसवि । 'सम्मत्ते' त्ति, सम्मद्दिट्ठी खइग-वेयग-उवसम-सासण-सम्मामिच्छ-मिच्छादिट्ठी य, तत्थ वेयग-उवसम-खइयसम्मद्दिट्ठीसु दो दो जीवट्ठाणाणि सन्निपज्जत्तअपज्जत्तगाणि, अपज्जत्तगो[1] त्ति करणअपज्जत्तगो, सम्मामिच्छादिट्ठी सन्निपज्जत्तगो [2]एव, सासणसम्मद्दिट्ठी बायरएगिन्दियबेइन्दिय-तेइन्दिय-चउरिन्दिय-असन्निपञ्चिन्दियलद्धिएपज्जत्तगेसु करणअपज्जत्तगेसु सन्निपज्जताऽपज्जत्तगेसु[3] य, मिच्छ

(५१) तत्र ['तेउ] पम्हसुक्कलेसासु सन्निपंचिंदियपज्जत्तगो अपज्जत्तगो य लब्भइ' त्ति । अत्र बादरपृथिव्य[प्]प्रत्येकवनस्पतिषु तेजोलेस्यावद्देवोत्पत्त्या तेजोलेश्यामार्गणासम्भवेऽपि यत् सञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियेष्वेव तद्विधिषु तस्याः प्रतिपादनं तत् सञ्ज्ञिभावोपार्जितत्वेन पृथिव्यादिष्वपि गतस्य जन्तोः सञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियसम्बन्धिन्येवेति विवक्षावशादिति ।

1'अपज्जत्तगो' इति पद जे. प्रतौ न दृश्यते । 2 'य' इति जे. । 3 सन्निपज्जत्तपज्जत्तगेसु' इति मु. ।

द्दिट्ठिस्स चोद्दसवि । 'सन्नि' त्ति सन्नी असन्नी य, सन्नीपञ्चिन्दिए मोत्तूण सेसा बारसवि असन्निणो, सन्निपञ्चिन्दिएसु दो जीवट्ठाणाणि। 'आहारगे'त्ति, आहारगा अणाहारगा य, तत्थ आहारगेसु चोद्दसवि, अणाहारगेसु सत्तवि अपज्जत्तगा सन्निपज्जत्तगो य लब्भइ, केवलिसमुग्घाए तिचउत्थपञ्चमसमएसु अणाहारगो लब्भइ ॥ ५ ॥

जीवट्ठाणाणि मग्गट्ठाणेसु मग्गियाणि, इयाणिं तेसु उवओगणिरूवणत्थं भन्नइ—

एक्कारसेसु तिय तिय दोसु चउक्कं च बारसेगम्मि । जीवसमासेसेवं[1] उवओगविही मुणेयव्वा ॥६॥

व्याख्या–'**एक्कारसेसु तिय तिय**' त्ति । एक्कारसेसु जीवट्ठाणेसु, एगिन्दिया चत्तारि, बेइन्दियतेइन्दियपज्जत्तगा-अपज्जत्तगा, चउरिन्दियअसन्निसन्निअपज्जत्तगा य, एए एक्कारस, एएसु एक्कारससु पत्तेय पत्तेयं तिन्नि तिन्नि उवओगा भवन्ति, तं जहा–मइअन्नाणं सुयअन्नाणं अचक्खुदंसणं ति । '**दोसु चउक्क**' ति, दोसु जीवट्ठाणेसु चउरिन्दियपज्जत्तगेसु असन्निपज्जत्तगेसु य पत्तेयं पत्तेयं चत्तारि उवओगा भवन्ति, तंजहा–पुव्वुत्ताणि तिन्नि चक्खुदंसणं च, पेक्खन्ति[2] त्ति काउं । '**बारसेगम्मि**'त्ति, सन्निपज्जत्तगम्मि पुव्वुत्ता बारसवि उवओगा भवन्ति । केवलणाणीण सन्नित्तं कहं ? इति चेत् ? उच्यते दव्वमणसहितत्वात् सन्नि त्ति वुच्चइ । एत्थ अपज्जत्तगगहणेण लद्धिअपज्जत्तगो गहिओ, करणअपज्जत्तो पज्जत्तगगहणेणं गहिओ । '**जीवसमासेसेवं**[3] **उवओगविही मुणेयव्वे**' त्ति कण्ठ्यम् ॥ ६ ॥

1 'जीवसमासे एव' इति मु. । 2 'पिक्खन्ति' इति मु । 3 'जीवसमासे एव' इति मु. ।

उवओगा जीवसमासेसु भणिया, इयाणिं जोगा भन्नंति—

णवसु चउक्के एक्के जोगा एक्को य दोन्नि पन्नरस । तब्भवगएसु एए भवन्तरगएसु काओगो ॥ ७ ॥

व्याख्या—'**णवसु चउक्के एक्के जोगा एक्को य दोन्नि पन्नरस**' त्ति। णवसु चउसु एक्कम्मि जीवट्ठाणेसु जहासंखेण जोगा एक्को दोन्नि पन्नरस त्ति, एगिन्दिया चत्तारि सेसअपज्जत्तगा य पञ्च, एएसु णवसु एक्केक्को जोगो—सामन्नेणं [1]एक्को कायजोगो, विसेसेणं सुहुमबायरपज्जत्तगाणं ओरालियकायजोगो, तेसिं चेव करणअपज्जत्तगाणं ओरालियमिस्सकायजोगो बायरएगिन्दियपज्जत्तगस्स वेउव्विकायजोगो वेउव्वियमिस्सकायजोगो य, वाउं पडुच्च। लद्धिए करणेण य अपज्जत्तगाणं सव्वेसिं ओरालियमिस्सकायजोगो चेव। चउसु जीवट्ठाणेसु बेइन्दिय-तेइन्दिय-चउरिन्दिय-असन्निपज्जत्तगेसु दो दो जोगा पत्तेयं भवन्ति, ओरालियकायजोगो असच्चमोसवइजोगो य, करणपज्जत्तगा गहिया। एक्कम्मि सन्निपज्जत्तगम्मि पन्नरसवि योगा भवन्ति, मणजोग(गा)४वइजोग(गा)४-ओरालियवेउव्वियआहारककायजोगा पसिद्धा, ओरालियमिस्सकायजोगो कम्मइगकायजोगो य सयोगिकेवलिं पडुच्च समुग्घायकाले[2] लब्भन्ति, वेउव्वियमिस्सकायजोगो आहारकमिस्सकायजोगो य [3]वेउव्वियआहारगे विउव्वयन्ते आहारयन्ते य पडुच्च, ते पज्जत्तगा चेव। '**तब्भगएसु एए**' त्ति, तम्मि भवे गया अप्पप्पणो सरीरे वट्टन्ताणं एए भणिया। '**भवन्तरगएसु कायजोगो**' त्ति, भवादन्यो भवो भवान्तरं,

1 'एक्को' इति जे प्रतौ नास्ति। 2 जे- 'प्रतौ समुग्घायकाले लब्भन्ति' इति पाठो न दृश्यते, केवल 'समुग्घाए।' इति पाठः। 3 'वेउव्वियआहारगे' इति पदं जे प्रतौ न दृश्यते।

तम्मि गया भवांतरगया विग्रहगताना मित्यर्थः, सव्वेसिं भवान्तरगताणं कम्मइगकायजोगो चेव ॥ ७ ॥

उवओगाजोगविही जोवसमासेसु वन्निया एवं । एत्तो गुणेहि सह [1]परिगयाणि ठाणाणि मे सुणह ॥८॥

व्याख्या-'**उवयोग**' त्ति, गाहाए पुव्वद्धं कण्ठयम् । जीवट्ठाणेसु उवओगा जोगा य भणिया । '**एत्तो गुणेहि सह [2]परिगयाणि ठाणाणि मे सुणह**'त्ति, एत्तो गुणसंजुत्ताणि ठाणाणि सुणह भणामि त्ति भणियं भवइ ॥ ८ ॥

इयाणि इवदिट्ठकमागयाणं गुणट्ठाणाणं णिद्देसं करेइ—

मिच्छद्दिट्ठीसासणमिस्से अजए य देसविरए य । नव संजएसु एवं चउदस गुणनामठाणाणि ॥९॥

व्याख्या-'**मिच्छद्दिट्ठि**' त्ति, मिच्छादिट्ठी, '**सासण**' त्ति, सासणसम्मद्दिट्ठी, '**मिस्स**' त्ति, सम्मामिच्छद्दिट्ठी, 'अजए' त्ति, असंजयसम्मद्दिट्ठी, '**देसविरए**' त्ति, संजयासंजओ, '**णव संजएसु**' त्ति, संजएसु णवठाणाणि । तं० पमत्तसंजओ, अपमत्तसंजओ, अपुव्वकरणपविट्ठेसु उवसामगा खवगा य, एवं अनियट्टिबायरसम्परायपविट्ठेसु उवसामगा खवगा य, सुहुमसंपराइयपविट्ठेसु उवसामगा खवगा य, उवसन्तकसायवीयरागछउमत्थो, खीणकसायवीयरागछउमत्थो, सजोगिकेवलि, अजोगिकेवलि चेति ॥

तत्थ 'मिच्छदिट्ठि' त्ति, मिच्छा अलियं अतथ्यं दृष्टिर्दर्शनं मिच्छद्दिट्ठी जेसिं जीवाणं ते मिच्छद्दिट्ठी विवरीय-

---

1 'सम्माणि' इति मु. । 2 'परिसगयाणि' इति मु.

दिट्ठी । अण्णहादिट्ठमत्थं अण्णहा विचिन्तेति मिच्छत्तस्स उदएणं । यथा—मद्यपीतहृत्पूरकभक्षितपित्तोदयव्याकुलीकृतपुरुषज्ञानवत्, मिच्छत्तं यथार्थावस्थितरुचिप्रतिघातकारणं । उक्तं च—

"मिच्छत्ततिमिरपच्छाइयदिट्ठी रागदोससंजुत्ता । धम्मं जिणपन्नत्तं भव्वा वि णरा ण रोचेन्ति ॥१॥
मिच्छादिट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं ण सद्दहइ । सद्दहइ असब्भावं उवइट्ठं वा अणुवइट्ठं ॥२॥
पयमक्खरं व एक्कंपि जो ण रोचेइ सुत्तविणिद्दिट्ठं । सेसं रोएन्तो वि हु मिच्छादिट्ठी मुणेयव्वो ॥३॥
सुत्तं गणहरकहियं[1] तहेव पत्तेयबुद्धकहियं[1] च । सुयकेवलिणा रइयं अभिन्नदसपुव्विणा कहियं[1] ॥४॥

अहवा—

तं मिच्छत्तं जमसद्दहणं तच्चाण जाण अत्थाणं । ससइयमभिग्गहियं अणभिग्गहियं च तं तिविहं ॥५॥"

'सासणसम्मद्दिट्ठि' त्ति, आसाइज्जइ अणेण सम्मत्तमिति आसायणं, सम्मा दिट्ठी सम्मदिट्ठी, सह आसायणेण वट्टन्त इति सासायणा, सासायणसम्मदिट्ठी जेसिं ते भवन्ति सासायणसम्मदिट्ठी । उवसमसम्मत्तद्धाए वट्टमाणो जीवो अणंताणुबन्धिउदएण सासणभावं गच्छइ । जहा कोइ पुरिसो दमगो अणेगगुणसपन्नं पायसं भोत्तूण धातुवैषम्यात् तस्सोवरि व्यलिकचित्तो भवइ, ण ताव छड्डेहि, णियमा छड्डेहि त्ति, एवं सम्मत्ते व्यलिकचित्तो ण ताव छड्डेइ, णियमा छड्डेहि त्ति, सो सासाणो उक्तं च—

"[52]उवसामगो उ सव्वो णिव्वाघाएण तह णिरासाणो । उवसन्ते सासाणो णिरसाणो होइ खीणम्मि ॥१॥

---

1 'रइय' इति वा ।

णसो सासणसम्मो सम्मत्ताद्धाए वट्टमाणो उ । आसायणाए सहिओ सासणसम्मो त्ति णायव्वो ॥२॥"

'सम्मामिच्छाद्दिट्ठी' त्ति, सम्मं च मिच्छा च सम्ममिच्छा, सम्ममिच्छाद्दिट्ठी जेसिं जीवाणं ते भवन्ति सम्मामिच्छ-दिट्ठी मिस्सदिट्ठी, विरताविरतवत् । पढमं सम्मत्तं उप्पाएन्तो तिन्नि करणाणि करेत्ता उवसमसम्मत्त पडिवन्नो पढमसमए [1]अंतरकरणस्स मिच्छत्तदलियं तिपुञ्जी करेइ, सुद्धं मिस्सं असुद्ध[2] चेति । जहा मयणकोद्दवा णिव्वलिया मिस्सा अणिव्व

(५२) 'उवसामगे' इत्यादि गाथा । उपशमकः सर्वश्चतुर्गतिकोऽपि, मिथ्यात्वमोहनीयस्येति प्रक्रमाद् गम्यते । अन्यच्च तन्‌पशमाधिकाराऽस्या पाठात् निर्व्याघातेन व्याघाताभावेन भवति । एतदुक्त भवति–प्रथमसम्यक्त्वमुत्पिपादयिषुरशेषोऽपि चतु-र्गतिको यथाप्रवृत्ताऽपूर्वकरणकालोत्तरभाव्यनिवृत्तिकरणबलविहितमिथ्यात्वमोहनीयस्थित्यन्तरकरण, तदनन्तरमेव प्रारब्धद्वितीय-स्थितिगतमिथ्यात्वमोहोपशम , प्रथमस्थितिगत च मिथ्यात्व वेदयन् गुणान्तरभवान्तरप्रतिपत्तिलक्षणव्याघातवर्जितो भवतीति तथा निरासादनश्च विगतसासादनभावश्च भवति, तस्यान्तरकरणप्रवेशसमकालभाव्योपशमिकसम्यक्त्वाद्धोत्तरभागभावित्वात् । अत एव आह–उपशान्ते मिथ्यात्वमोहनीये सासादनो भवति । आह–यथोपशमिकसम्यक्त्वाद्धाया जीव सासादनभाव प्रतिपद्यते । कि तथा क्षायिकावस्थायामपि उभयत्र मिथ्यात्वाऽनुदयाऽविशेषादित्याह–निरासादनो विगतसासादनभावो भवति, क्षीणे प्रलयमुप-गते मिथ्यात्वे इति शेष । एतदुक्त भवति–अनन्तानुबन्ध्युदयात् सासादनो भवति, [. ...][3] मिथ्यात्वक्षयश्चानन्ता-नुबन्धिक्षयनान्तरीयकोऽत कारणाभावान्न मिथ्यात्वक्षये सासादनभाव इति ।

1 'पढमसमए अंतरकरणस्स' इतिपाठो मु. प्रतौ नास्ति, जे. प्रतौ विद्यते । 2 'अविशुद्ध' इति मु । 3 आदर्शेऽत्र [ ] कोष्ठकस्थाने 'आह–यथोपशमिक' इति पाठो दृश्यते, तस्य चाऽप्रस्तुतत्वान्नेह गृहीत. ।

लिया य । निव्वलिय सरिसं सम्मत्तं, अणिव्वलियसरिसं मिच्छत्तं, मिस्ससरिसं सम्मामिच्छत्तं सद्दहणासद्दहणलक्खणं, सुद्धासुद्धमिस्सकोद्दवोदणभोजिपुरिसपरिणामवत् । सुद्धवेई सम्मद्दिट्ठी हवइ, जहा सुद्धकोद्दवोदणभोजिपुरिसो स्वच्छेन्द्रिय-ज्ञानावबोधो भवति । उक्तं च—

"सम्मत्तगुणेण तओ विसोहई कम्ममेस मिच्छत्त । सुज्झन्ति कोद्दवा जइ मदणा ते ओसहेणेव ॥१॥
जं सव्वहा विसुद्ध तं चेव य भवइ कम्म सम्मत्तं । मिस्सं अद्धविसुद्धं भवे असुद्ध च मिच्छत्तं ॥२॥
तिव्वाणुभावजोगो[1] भवइ हु मिच्छत्तवेयणिज्जस्स । सम्मत्ते अइमन्दो मिस्से मिस्साणुभावो य । ३॥
मयण[2]कोद्दवभोजी अणप्पवसयं णरो जहा जाइ । [53]सुद्धाई उ ण मुज्झइ मिस्सगुणा या वि मिस्साइ ॥४॥
सद्दहणासद्दहण जस्स य जीवस्स होइ तच्चेसु । विरयाविरएण समो सम्मामिच्छो त्ति णायव्वो ॥५॥"

'असंजयसम्मद्दिट्ठि' त्ति, ण संजओ असंजओ, सम्मा दिट्ठी जेसिं ते भवन्ति सम्मद्दिट्ठी । असंजओ य सो सम्म-दिट्ठी य सो असंजयसम्मद्दिट्ठी । अपच्चक्खाणावरणाणं उदए वट्टमाणो विरइं ण लहइ ।

"अपच्चक्खाणाणं उदए णियमा चउक्कसायाण । सम्मद्दिट्ठी वि णरा विरयाविरइं ण पावेन्ति ॥१॥"

दंसणमोहणिज्जस्स कम्मस्स खयखओवसमोवसमे वट्टमाणो असंजयसम्मद्दिट्ठी भवइ । उक्तं च—

(५३) 'सुद्धाइ' इति । शुद्धादी शुद्धभोजी ।

1 'तिव्वाणुभागयोगो' इति जे. । 2 मयणवकोद्दवभोजो' इति जे. ।

"सद्दहिऊण य तच्चे इच्छन्तो णेव्वुइ परमसोक्खं । घेत्तूण णवपयाइ अरिहाइसु णिच्च भत्तिजुओ ॥१॥"
बन्ध अविरइहेउं जाणन्तो रागदोसदुक्ख य । विरइसुहं इच्छन्तो विरइ काउं च असमत्थो ॥२॥
एस असंजयसम्मो णिन्दन्तो पावकम्मकरण च । अभिगयजीवाजीवो अचलियदिट्ठी [1]चलियमोहो ॥३॥

'संजयासंजओ' त्ति, संजओ य सो असंजओ य सो संजयासंजओ, अद्धाओ असंजमाओ विरओ अद्धाओ अविरओ त्ति, अपच्चक्खाणावरणाणं उदयक्खए पच्चक्खाणावरणाणं च उदए वट्टमाणे संजयासंजओ भवइ ।

"आवरयन्ति य पच्चक्खाण अप्पमवि जेण जीवस्स[2] । तेणाऽपच्चक्खाणावरणा णणु होइ अप्पत्थे ॥१॥
सव्व पच्चक्खाण जेणावरयन्ति अभिलसन्तस्स । तेण उ पच्चक्खाणावरणा भणिया णिरुत्तीहिं ॥२॥
सम्मद् मणसहिओ गेण्हन्तो विरइमप्पमत्तीए । एगव्वयाइ चरिमो अणुमइमेत्तो त्ति देसजई ॥३॥
परिमियमुवसेवन्तो अपरिमियमणन्तय परिहरन्तो । पावइ परम्मि लोए अपरिमियमणन्तय सोक्ख ॥४॥"

'पमत्तसंजओ' त्ति, पमत्तो य सो संजओ य सो पमत्तसंजओ, [3]पच्चक्खाणावरणोदयरहिओ, संजलणाणं उदए वट्टमाणो, पमायसहिओ पमत्तसंजओ ।

"विकहा कसाय विकडे इन्दियणिद्दापमायपञ्चविहो । एएसामन्नतरे जुत्तो विरओऽवि हु पमत्तो ॥१॥
जह रागेण पमत्तो ण सुणइ दोस गुण च बहुयपि । गुत्तीसमिइपमत्तो पमत्तविरओ त्ति णायव्वो ॥२॥"

'अप्पमत्तसंजओ' त्ति, अप्पमत्तो य सो संजओ य सो अप्पमत्तसंजओ सर्वप्रमादरहित इत्यर्थः ।

---

1 'विनियमाहो इति जे.। 2 'जीवाण' इति जे. । 3 'अपच्चक्खाणावरणोदयरहिओ' इति मु. ।

"विकहादयो पमाया तस्सहियो सो पमत्तविरओ उ। सव्वप्पमायरहिओ विरओ सो अप्पमत्तो उ ॥१॥"

अपुव्वकरणपविट्ठेसु अत्थि उवसमगा खवग त्ति,पुव्वं करणं पुव्वकरणं, ण पुव्वकरणं अपुव्वकरणं, अपुव्वकरणं पविट्ठा अपुव्वकरणपविट्ठा, तेसु अपुव्वकरणपविट्ठेसु अत्थि उवसामगा खवगा य । विइयं नामं नियट्टीणो त्ति, परोप्परं परिणामं णियट्टि त्ति नियट्टिणो जातो तेसिं समए समए असङ्खेज्जलोगागासपएसमेत्ताणि विसोही ठाणाणि भवन्ति, तत्थ पढमसमए यदि वट्टन्ता विसरिसपरिणामा 卐 वि भवन्ति, एवं बिइयासु जाव चरिमसमयो ताव विसरिसपरिणामा वि भवंति, तेण ते नियट्टिणो त्ति 卐 किं अपुव्वकरणं ? कहं वा पवेसो भवइ त्ति, तं भन्नइ—अपुव्वकरणट्ठाणाणि असंखेज्जलोगागासपएसमेत्ताणि विसोहिट्ठाणाणि, तं जहा—अपुव्वकरणस्स पढमसमए विसोहिट्ठाणाणि सव्वथोवाणि । बिइयसमए वि विसोहिठाणाणि विसेसाहिगाणि । तइयसमए विसेसाहिगाणि । एवं विसेसाहिगाणि विसेससाहिगाणि ताव जाव अपुव्वकरणस्स चरिमसमओ त्ति अपुव्वकरणस्स पढमसमए जहन्निया विसोही थोवा, तस्सेवुक्कोसिया विसोहि अणन्तगुणा । बिइयसमए जहन्निया विसोही अणन्तगुणा, तस्सेवुक्कोसिया विसोही अणन्तगुणा । तइयसमए जहन्निया विसोहि अणन्तगुणा, तस्सेवुक्कोसिया विसोहि अणन्तगुणा एवं [1]अणन्तगुणा सेढीए [2]णायव्वं जाव अपुव्वकरणस्स चरिमसमओ त्ति । अपुव्वकरणस्स पढमसमए जाणि विसोहिट्ठाणाणि बिइयसमए ततो अपुव्वाणि त्ति, तम्हा विसोहीपरिणामट्ठाणाणि अपुव्वाणि त्ति वुच्चन्ति । ताणि अपुव्वाणि

卐 ....卐 स्वस्तिकद्वयान्तर्गत. पाठो मु. प्रतौ न दृश्यतेऽत्र तु जे. प्रत्यनुसारेण गृहीत. ।

1 'अणन्तगुणाए सेढीए' इति जे. । 2 'णेयव्व' इति जे. ।

विसोहिपरिणामट्ठाणाणि पविट्ठा अपुव्वकरणपविट्ठा, तेसु अपुव्वकरणपविट्ठेसु अत्थि उवसामगा खवगा य; उवसामइस्सन्ति त्ति उवसामगा। खवइस्सन्ति त्ति खवगा। ण इयाणि उवसामयन्ति त्ति, खवयन्तित्ति वा, किंतु अभिमुहभावेणं यमभिहियं, निल्लेवणयाए पयडि न खवयन्ति, ठिइघायं पुण करिंति [1]त्ति। उक्तं च–

'सो [५४] अणुभागठिईण घायमपुव्वं करेइ ठिइबंधं। अणुभागं च विसोहिं उदीरणाउदयगुणसेढी ॥१॥
तम्हा अपुव्वकरणो भिओ [५५]सज्झम्ममाणमयरागो[2]। सो उवसामगखवगो दुविहो उवसमणखवणरिहो ॥२॥

(५४) 'सो अणुभागे' त्यादि। सोऽपूर्वकरणस्थो जीव. अनुभागस्थित्यो. प्राग्बद्धाया. घात' विनाश 'अपुव्व' ति, अपूर्वं प्राग्गुणस्थानकेषु (केभ्य:) अनन्त (अत्यन्त) बहुतरमित्यर्थ,। 'स्थितिबन्धन' च प्रत्यन्तर्मुहूर्तं पल्योपमसख्येयका(भा)गहीन। अनुभाग' च शुभाशुभरूप प्रतिसमयमनन्तगुणवृद्धिहानिभ्याम्। 'विशोधि' कर्ममलापगमलक्षणाम्। 'उदीरणा' अपक्व(क्व)पाचनम्। 'उदयो'ऽनुभव। 'गुणश्रेणि' अनन्त(अन्त)र्मुहूर्तादुदयलक्षणप्रभृति असख्यगुणदलिकनिक्षेपो। यत उक्तम्–

उपरिष्टादसंख्येयगुणश्रेण्योदयक्षणात्। चलत्यासंमुहूर्न्तातः (र्तान्तः) गुणश्रेणिः प्रचक्षते ॥१॥

[ ]

ततश्च पदत्रयस्य द्वन्द्वे समासे उदीरणोदयगुणश्रेणयन्ता करोतीय च क्रिया। अपूर्वपदं च सर्व[त्र] सम्बन्धनीयम्।

(५५) 'सज्झम्मगाणमयरागो' त्ति। सम्यग् ध्यायमानो ध्यानानलाद्दह्यमानो मदरागो यस्य स तथा। मद आत्मोत्कर्षाध्यवसाय·। रागोऽभिष्वङ्गलक्षण।

1 'करेति' इति मु। 2 'सज्झम्ममाणमयरागो' इति मु। 'उवसन्तमाणमयरागो' इति मु पाठान्तरम्।

॥ ४३ ॥

जहा रायारिहो कुमारो राया इति ।

"५४ अत्थ [1]जहावदंसी विणियट्टियइन्दियत्थविसयगणो । सुविसुद्धभावलेसो सुक्कज्झाणो णिरुद्धतणू ॥१॥

ण य उवसमेइ कम्म खवेइ तम्मि य अपुव्वकरणम्मि। करिहिइ उवसमखवणं जह घयकुम्भो तहा सोवि ॥२॥"

अणियट्टिबायरसंपराइगपविट्ठेसु अत्थि उवसामगा खवग त्ति, ण णियट्टेति त्ति अणियट्टिपरिणामो, ※ अओ तेसिं पढमसमए सव्वेसिं सरिससुद्धी, एवं बीयाइसमएसु वि जाव चरिमसमओ त्ति । उक्तं च—

"इयरेयरपरिणामं, ण य अइवट्टन्ति बायरकसाया । सव्वेवि एगसमए तम्हा अणियट्टिनामा ते ॥१॥"

अहवा ण अस्स णियट्टणमत्थि त्ति अणियट्टी, अबद्धाउयस्स, बद्धाउ पुण दियलोए कालं करेइ । अथवा प्रकृष्टापकृष्टपरिणामाभावओ वा अणियट्टी, ※ उक्तं च—

---

(५६) 'अत्था जहा वे (वदंसी)' त्यादि। अर्थो जीवाविकस्त यथावदवैपरीत्येन 'दशी' (दंसी) अवश्यं पश्यन्नित्यर्थः । 'विनिवर्तितः' स्वकार्याऽक्षमीकृतेन्द्रियार्थः सामान्येनेन्द्रियप्रयोजनो विषयगणः इन्द्रियग्रामो येन सः तथा । 'सुविसुद्ध' त्यादि पश्चार्द्धं कण्ठ्यम् ।

---

1 'जहा वयसी' इति मु. । ※.......... ※ पुष्पद्वयान्तर्गत. पाठो जे. प्रतौ विद्यते । मु. प्रतौ च स पाठ. किञ्चिद्भिन्नरूपेण मुद्रितो दृश्यते तद्यथा–'अहवा ण अस्स णियट्टणमत्थि त्ति अणियट्टी, अओ तेसिं पढमसमए सव्वेसिं सरिससुद्धी, एवं बीयाइसमएसु वि जाव चरिमसमओ त्ति । उक्तं च–"इतरेतरपरिणाम ण य अइवट्टन्ति बायरकसाया । सव्वेवि एग समए तम्हा अणियट्टिनामा ते ॥१॥" अथवा प्रकृष्टा उत्कृष्टपरिणामा भावओ वा अणियट्टी ।' मुद्रितप्रतिगतपाठापेक्षया जे. प्रतिगतः पाठोऽधिकसङ्गत. शुद्धश्च प्रतिभात्यतः स एव गृहीत. ।

"एक्केक्को परिणामो, उक्कोस जहन्नओ जओ णत्थि ।तम्हा णत्थि णियट्टणमओवि अणियट्टिणामा ते ॥ १ ॥"

वायरो संपराओ जस्स सो वायरसंपरायगो, संपरायसद्दो सव्वकम्मेसु वट्टमाणो अहिकारवसाओ कसायवाई परिग्गहिओ। वायरकसाए वेएमाणो वायरसंपरायगो त्ति वुच्चइ, अणियट्टी य सो वायरसंपरायगो य सो अणियट्टिवायरसंपरायगो, अणियट्टिवायरसंपरायं पविट्ठा अणियट्टिवायरसंपरायपविट्ठा, तेसु अणियट्टिवायरसम्परायपविट्ठेसु अत्थि उवसमगा खवगा य।

"भावं न णियट्टेई विसुद्धलेसो णिरुद्धमयरागो । किट्टीकरणपरिणओ बायररागो मुणेयव्वो ॥१॥

सो [५७]पुव्वफड्डगाण हेट्ठा अवणाणि फड्डगाइ तु। पकरेइ अपुव्वइ अणन्तगुणहीयमाणाइ [1] ॥२॥

(५७) 'सो पुव्वफड्डगाए' मित्यादि गाथात्रय सुगमाक्षरार्थं पर 'पुव्वाउ' (ओ)त्ति वचनव्यत्ययाच्चकारस्य च भिन्नक्रमत्वात् पूर्वेभ्योऽपूर्वेभ्यश्च प्रक्रमात् स(ग्प)र्द्धकेभ्योऽपकृष्य दलिक किट्टी. करोतीति सम्बन्ध.। भावार्थ पुनरय-इह जीवः समुल्लसितविशुद्धाध्यवसायोऽविरतसम्यग्दृष्ट्यादिगुणस्थानकाक्रमेण क्रमेण यथासभवं क्षपितानन्तानुबन्ध्यादि-पुरुषवेदावसानमोहनाल', अनिवृत्तिनादरसपरायगुणस्थानकस्थ, सज्वलनकषायांश्चतुरोऽपि क्रमेण क्षपयितुमारभमाणः, प्रथमतस्तेषां पूर्वस्पर्द्धकानामधस्तार्वानतये (वानयेवि) त्यर्थ । अपूर्वस्पर्द्धकानि करोति, सामान्येन स्पर्द्धकलक्षणं चेदं-इह जीवो मिथ्यात्वादिभिर्बन्धहेतुभिर्बद्धाना कर्मपुद्गलाना सर्वजीवानन्तगुणान् प्रतिपरमाणुरसाविभागान् जनयति। यथोक्तम्-

"गहणसमयम्मि जीवो, उप्पाएई गुणे सपच्चयओ । सव्वजिआणंतगुणे, कम्मपएसेसु सव्वेसु ॥१॥"

(कर्मप्रकृतिः, बन्धनक गा २९)

1 'हायमाणाइ' इति जे.।

पूर्वापूर्वस्पर्धकानां कीट्टिनां च स्वरूपम्

तत्र सर्वजघन्यरसकर्माणुसमूहलक्षणादिवर्गणात् तत्प्रभृति-ए ,रसाविभागोत्तरा यथोत्तर विशेषहीनानन्तकर्मपरमाणुप्रचयरूपा. गणनया सिद्धराशेरनन्तभागप्रमाणा वर्गणा स्पर्द्धकमुच्यते । उक्त च—

''सव्वप्पगुणा ते पढमवग्गणा सेसिया विसेसूणा । अविभागुत्तरिया[1] ता सिद्धाणमणंतभागसमा ॥

(कर्म्मप्रकृतिः, बन्धनक. गा. ३०)

फड्डगत्ति । इदं च प्रथम, एतस्मादूर्ध्वं षट्स्थानवृद्धानि एव रूपाणि प्रतिकर्म सर्वजीवानामनन्तानन्तानि, अनुभागबन्धाध्यवसायेभ्यो भूतानि, असंख्यकालसकलितान्यन्यानि सन्ति । एतेषु पुन प्रतिप्रकृति उद्वर्तनापवर्तनकरणवशादेकैकमनेकरूपता प्रतिपद्यते । पूर्वाणि चैतान्यनेकशो कृतपूर्वत्वात् । अपूर्वाणि पुनस्तान्येवाक्षपकजन्तुसर्वजघन्यदेशघातिस्पर्द्धकादिवर्गणातोऽप्यनन्तगुणहीनतया विशुद्धिगुणात् । तदानेनैव कृतानि भवन्ति, तत्कालमन्तरेणान्यदाऽभूतपूर्वत्वात् । ततोऽसावन्तर्मुहूर्तमनुसमयविहितापूर्वापूर्वस्पर्धकसमूहः प्रतिसज्वलनकषायं सग्रहनयाभिप्रायतस्तिस्रस्तिस्र इति द्वादशकिट्टीः करोति । तुल्यान्तराणामनन्तानामप्येकतया गणनाद् व्यक्तित. पुनरेकैकाऽनन्तश इति । किट्टयो नाम एकैकरसविभागोत्तरपरमाणुप्रचयरूपवर्गणासमूहस्वभावानां कषायरसस्पर्धकानां दलिकस्यापवर्तनया त्याजितस्पर्धकरूपस्य परस्परमनन्तगुणरसान्तरतया विभागास्तथाहि–लोभस्य पूर्वस्पर्धकानां प्राग्विहिताऽपूर्वस्पर्धकानां च दलिकमादाय सर्वजघन्यापूर्वस्पर्धकादिवर्गणातोऽनन्तगुणहीनां तुल्यरसदलिकसचयात्मिकां प्रथमकिट्टीं करोति । एवमतोऽपि अनन्तगुणरसान्तरां द्वितीयां ततोऽपि तृतीयामेव यावत् प्रथमत्रिभागान्त्यकिट्टीमिति । एताश्च कथचित् तुल्यान्तरगुणकारतयाऽनन्ता अप्येकैवेति । यथा लोभस्य तिस्रः, एवं प्रथमविभागान्त्यकिट्टीतोऽनन्तगुणवृद्धरसाविभागां यथोत्तरमनन्तगुणाभ्यधिकानन्तान्तरालकिट्टीसमूहस्वभावां द्वितीयामेवं तृतीयां च करोति । यथा लोभस्य तिस्रोऽनन्ता वा, तथा प्रत्येकं पश्चा-

1 'अविभागुत्तरियाओ' इति पाठान्तरम् ।

तत्तो मपुव्वफड्डगहेट्ठा बहुगा करेइ किट्टीओ । पुव्वाओ य अपुव्वेहिंतो ओकड्ढिय पएसे ॥३॥
तो बायरकिट्टीओ वेएमाणो करेइ सुहुमाओ । बायरकिट्टीहेट्ठा किट्टीओ सुद्धलेमाओ ॥४॥

नुपूर्व्या मायादीनामपि । पर द्वादशाऽपि सग्रहकिट्टयः स्वस्थानसदृशावान्तरकिट्टीगुणकारा उत्तरोत्तरतश्च स्वस्थानावनन्तगुणवृद्धान्तरालास्तथाहि–द्वादशाना सग्रहकिट्टीनामेका-शान्तराणि । एकादश चान्तरगुणकारास्तत्र लोभस्य प्रथमसग्रहकिट्टयाश्चरमकिट्टीयदनन्तराशिगुणिता तस्यैव द्वितीयसग्रहकिट्टया प्रथमकिट्टी भवति स प्रथम । अय च सर्वासामपि सग्रहकिट्टीना स्वस्थानकिट्टीगुणकारेभ्योऽनन्तगुण । एवमस्या एव सग्रहकिट्टयायदनन्तराशिगुणिता चरमकिट्टी एतत्तृतीयकिट्टयादिकिट्टी भवति स द्वितीय । एष च प्राग्गुणकारादनन्तगुण , एव तृतीयादयोऽपि यथोत्तरमनन्तगुणास्तावन्नेया यावदेकादश्या सग्रहकिट्टया क्रोधद्वितीयायाश्चरमकिट्टीगुणकार एकादश इति । ये तु सर्वास्वपि सग्रहकिट्टीषु स्वस्थानेऽवान्तरकिट्टीनां यथोत्तरमनन्तगुणा अपि गुणकारास्ते सर्वेऽपि प्रथमद्वितीयकिट्टयन्तरगुणकारादप्यनन्तगुणहीना अत एव सामान्यत प्रथमात् सग्रहकिट्टयन्तरगुणकारादनन्तगुणहीनेन एकेन गुणकारेण गुणिततया वृद्धिभावात् सदृशान्तरतायामनन्तानामपि सग्रहाभिप्रायतोऽवान्तरकिट्टीनामेकत्वम् । यश्च सग्रहकिट्टीना परस्पर विशेष (स) सोऽन्यस्मादनन्तरगुणकारादेकादशभेदादिति । पुनरपि स्फुटतरावबोधाय असद्भावकल्पनया किञ्चिदुच्यते । किल द्वादशस्वपि सग्रहकिट्टीष्वनन्ता अपि अवान्तरकिट्टयस्तित्तास्तित्र इति षट्त्रिंशत् । अत्र च प्रथमकिट्टी अनन्तरसा अपि किल दशरसाविभागा, एतद्द्विगुणाविभागा द्वितीया, तच्चतुर्गुणाविभागा तृतीया, एव यथोत्तरमनन्तगुणा अपि अवान्तरकिट्टयः पूर्वपूर्वद्विगुणगुणकारगुणिततया द्वितीयादीना सग्रहकिट्टीना प्रथमकिट्टेरेकादशापि परिहृत्य तावन्नेया यावच्चरमावान्तरकिट्टीति । एता पुनरेकादशापि सग्रहकिट्टयन्तरगुणकारैरनन्तानन्तरूपैरपि कोटिदशकादिकैर्यथोत्तरमनन्तगुणैरपि दशगुणै. कोटीकोटिसहस्रदशकपर्यन्तैरेकादशभिरादितोऽपि चरमाऽ(व)वान्तरकिट्टीगुणकारावनन्तगुणैरपि साधिकपञ्चगुणै. प्राच्यचरमकिट्टीनां गुणनेन भवन्ति । अत्र च गुणकारसदृष्टि:–

"एइ बायरो बायराओ किट्टीओ तेण बायरो णाम । कम्माणि उवसमन्तो उवसमगो खवणओ खवगो ॥५॥
नासेइ तओ खवओ लोभ मोत्तूण मोहवीसमवि । अह थीणगिद्धितिगमवि [४८]तेरस णामावि एत्थेव॥६॥"

१०/२०	८० कोटयः १०	कोटि ८०० ८	कोटि ६४०० १६

एवं द्विगुणद्विगुणगुणकारगुणिततयाऽनन्तरानन्तरा च सग्रहकिट्टयन्तरगुणकारानुगता यावत्—

सोलस दोतिसयाइं, सत्तरी हुंति तह सहस्साइं । सत्तहिलक्खेहिं, समग्गला एगकोडी य ॥
[ ]

इत्यन्तिमः पञ्चतृ(त्रि)शत्तमो द्विचरमावान्तरकिट्टीगुणकारस्तावत् स्वयमभ्यूह्य गुणितफलानुगता सुधिया वाच्येति ।

एताश्च द्वादश कोपसंज्वलनोदयेन क्षपकश्रेणिमारोहतो भवन्ति । मानसंज्वलनोदयेन क्षपितसंज्वलनकोपस्य शेषमानादित्रयस्य नव । मायोदयेन क्षीणाद्यद्वयस्य षट् । लोभोदयेन चाद्यत्रयक्षये केवललोभस्य तिस्रः । तदुक्तम्—

"बारस-नव-छ-तिन्नि य, किट्टीओ होंति अहवणंताओ । एकेक्कम्मि कसाये, तिगतिगमहवा अणंताओ ॥"

[कषायप्राभृत. गा. १६३]

तदनन्तरं बादरसंज्वलनलोभक्षयकाले उदिततदीयबादरकिट्टीकृतदलिकः स एवाऽनुदिततच्छेषदलिकस्य ताभ्य एव बादराभ्योऽनन्तगुणहीनरसाः सूक्ष्मसंपरायाद्धावेदनयोग्याः सूक्ष्मा किट्टीः करोतीति । अयं च सूक्ष्मकिट्टीकरणरूपोऽर्थ. 'सम्मं मावपरायणे' इत्यादिनाऽनन्तरगुणस्थानके सप्रसङ्गो वक्ष्यत इति गाथात्रयार्थः ।

उवसामगस्स अत्थो इमो–

⁵¹सो¹ऽपुव्वफड्डगाण तु मुहुमा ओकड्डिऊण किट्टीओ। पकरेइ य उवसमओ ⁵²उवसमयति²मोहणीसमवि ॥७॥

(५८) 'तेरसणामा वि' त्ति। अयोत्रशनामा[नि] नरकद्विक-तिर्यग्द्विक-एकेन्द्रियद्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियजाति-आतपोद्योत-स्थावर-साधारण-सूक्ष्मलक्षणानि(णानी)ति।

(५९) 'सोऽपुव्वफड्डगाण' मित्यादि। स इत्युपशमकः, अपूर्वस्पर्द्धकानि उक्तरूपाणि, एतानि चेह लोच(भ)संज्वलनस्यैव तेषा दलिक रसतोऽपकृष्य किट्टीस्तद्विभागरूपा सूक्ष्माः अतितन्वी प्रकरोति-कर्तुमारभते। एतदुक्त भवति–उपशमकोऽनिवृत्तिगुणस्थानकस्थो यौगपद्येन विहितनपु सकवेदाद्येकविंशतिमोहप्रकृत्यन्तरकरणस्तत उपशमश्रेणिक्रमेण नपु सकवेदाद्या सज्वलनमायापर्यवसाना अन्तरकरणोपरितनस्थितिगता अष्टादशप्रकृतीरुपशमय्य द्वितीयतृतीयलोभौ बादरसज्वलनलोभ चोपशमयितुकाम उदयप्राप्तबादरसज्वलनलोभान्तरकरणाधस्तनस्थितिक्षयेऽन्तरकरणोपरिस्थितसाज्वलनलोभस्थितिदलिकमपवर्तनाकरणेनाधः किञ्चिदवतार्य इत प्रभृति लोभवेदनकालस्याद्यत्रिभागद्वयमानामेकाकारधारिणीमन्तरकरणान्तर्गुणश्रेणिमारचयति। लोमवेदनकालस्य चाद्यत्रिभागोऽश्वकरणाद्धा यथाह्यश्वकर्णो मूले बहुशु(बहुविस्तृ)त क्रमेणापकर्षतो यावदन्तेऽतीवतनुरूपस्तथाधःस्थितस्योपशमकस्योपरितनस्थितेः पूर्वस्पर्द्धकानामपूर्वतया विधानेन तदाकृतिभावादनुभागोऽश्वकरण इवाश्वकरणस्तस्य करणाद्धेति। द्वितीय किट्टीकरणाद्धा तेषामेव तथाविहितानामत्र सूक्ष्मकिट्टीकरणात्। अत्र हि ताः प्रतिक्षणं विशुद्धिवशाद् बहुबहुतरबहुतमारतदत्यसमय यावत् करोति। तृतीय पुनस्त्रिभाग सूक्ष्मकिट्टीवेदनारूप, स च सूक्ष्मसंपरायकाल इति। अत्र च द्वितीयतृ(त्रि)भागे किट्टीकरणाद्धारूपे द्वितीयतृतीयलोभौ बादरसज्वलनलोभ च सर्वथोपशमयति।

1 'सो पुव्वफड्डगाण' इति मु। 2 'उवसमिय' इति जे.।

"उवसन्तं जं कम्मं णय ओवट्टइ[1] ण देइ उदयंपि । ण य गमयइ परपगइं ण चेव ओकड्ढते तं तु ॥८॥"

सुहुमसंपरायगपविट्ठेसु अत्थि उवसामगा खवगाइ त्ति, सुहुमो संपराओ जस्स सो सुहुमसम्परामो, सुहुमसम्परायं पविट्ठा सुहुमसम्परायपविट्ठा, तेसु सुहुमसम्परायपविट्ठेसु अत्थि उवसामगा खवगा य, बायररागेण कयाओ किट्टीओ सुहुमो वेएइ जतो । आह एत्थ गाहाओ—

(६०) एवं चासावुपशान्तमोहविंशतिरत एवाह-'उवसमङ्गय(यङ्ग)मोहवीसम वि' । दर्शनसप्तकस्य प्रागुपशमात्, क्षयाद्वा लोभस्य चोपर्युपशमयिष्यमाणत्वाच्छेषा मोहविंशतिमत्र गुणस्थानक उपशमयतीति ।

(६१) 'उवसं[त]' मित्यादि । इह प्रक्रमात् सर्वोपशान्तमधिक्रियते तच्च मोहकर्मैव, 'सव्वोवसमो मोहस्सेवत्ति' वचनात् । ततश्च यत्कर्म मिथ्यात्वाद्युपशान्तं न तदपकर्षति, न स्थितिरसाभ्यां हीनं करोति । अपिशब्दस्य भिन्नक्रमत्वान्नाप्युदये सविपाकाविपाकलक्षणे 'उदओ सविवाग अविवागो' इति वचनाद्ददाति नियुज्यते, कृतान्तरकरणस्यैवोपशमनात् । तदभावात्तदविनाभाविन्यामुदीरणायामपि । नैव गमयति सङ्क्रमयति परप्रकृतिं बध्यमानसजातीयरूपां न चोत्कर्षति वृद्धिं नयति स्थितिरसाभ्यां तत्कर्म । निधत्तिनिकाच[न]योस्तु प्रागपूर्वकरणकाल एवानुपशान्तस्यापि निवृत्तत्वान्नेह तल्लक्षणया तन्निषेधः इह च दर्शनत्रिकस्योपशान्तस्यापि सङ्क्रमकरणं प्रवर्तते यदुक्तं—

'करणाय नोवसंतं मोत्तूण सकमं च दिट्ठितिगे' त्ति [2]।

सङ्क्रमश्चोद्वर्तनापवर्तनापरप्रकृतिनयनानीति।

1 'ओवट्टइ' इति जे । 2 'करणाय नोवसंत, सकमोवट्टण तु दिट्ठितिग । मोत्तुण . ।' इत्यादिरूपा गाथा पञ्चसंग्रहे, उपशमनाकरणे (गा. नं. ८५) दृश्यते ।

"६२सम्म भावपरायणगुणेण किट्टीपकिट्टिकरणेण । [1]मोहस्सेकारसमी बारसमी वावि जा किट्टी ॥१॥
६३बारसमी जा किट्टी सुद्धा किट्टी करेइ सुहुमाओ । एक्कारसमीअ ठिओ कड्ढिय सुहुमाउ किट्टीओ ॥२॥
बायररागेण कया सुहुमो वेएइ सुहुमकिट्टीओ । तम्हा सुहुमकसाओ सुहुमो सुद्धप्पओगत्था ॥३॥
उवसमगो उवसमगइ खवगो णासेइ सुहुमकिट्टीओ । ते पुण विसुद्धभावा जन्ति दुवे दुन्निसेढीओ॥४॥

'उवसन्तकसायवीयरायछउमत्थे' त्ति, उवसन्ता कसाया जेसिं ते भवन्ति उवसन्तकसाया, वीओ रागो जेसिं ते भव-

(६२) 'सम्म भावपरायण' इत्यादि । सम्यगशुद्धिविपर्ययतो यथारूपो भावो मन परिणाम सम्यग्भाव , तत्परायणस्तत्परवृत्तिस्तस्य भाव सम्यग्भावपरायणता भावप्रत्ययलि(लु)प्तनिर्देशात् । सैव गुणो धर्मस्तेन करणभूतेन किमित्याह 'किट्टीपकिट्टिकरणेण' किट्टयो बादरा , प्रकिट्टयस्ता एव मनाक् सूक्ष्मास्तत्त्वतो बादरकिट्टीरूपा एव, तासा करण विधान तेन लक्षणात्तृतीयेय, तद्विशिष्टा इत्यर्थ । मोहस्य सज्वलनलक्षणस्य एकादशी द्वादशी च किट्टीं यावत् सज्वलनयो(लो)भस्य द्वितीयतृतीयेऽवशिष्टे यावदित्यर्थ , तावन्त काल स्थित्वेति शेष । तत किमित्याह–

(६३) 'बारसमी' इत्यादि । द्वादशी च या किट्टी लोभस्य तृतीयायास्तस्या 'कड्ढिय' त्ति आकृष्यतद्विलक्षणतामानीय सूक्ष्मा किट्टीपकिट्टीरित्यर्थ । किमित्याह–शुद्धा निवृत्तप्रायरसा किट्टी करोति । किं विशिष्टा ? सूक्ष्माः अतिप्रतन्वी । किं विशिष्ट इत्याह–एकादश्या स्थितस्तामनुभवन्नित्यर्थ । एतदुक्त भवति–क्षपकोऽनिवृत्तिबादरसपरायगुणानकस्थो निर्मूल एव क्रोधमानमायासु किट्टीष्वपि द्विकरणव्यतिकरेणानुभवसक्रमाभ्या क्षपितासु लोभप्रथमकिट्टयाच तस्यैव द्वितीयामनुभवंस्तृतीयाया प्रागेव मनाक् सूक्ष्मरसत्वमानीत दलिकमपवर्त्य पुनरतीव तनुकिट्टीरूप सूक्ष्मसपरायाद्धावेदनयोग्य करोतीति ।

[1] 'लोहस्सेक्कारसमी' इति जे. ।

न्ति वीयरागा, उवसन्तकसाया य ते वीयरागा य ते उवसन्तकसायवीयरागा, उवसन्तकसाया इति सिद्धे वीयरायवयणं अनर्थकमिति चेत् ? न, हेतुहेतुमद्वचनात् , को हेतुः ? किं वा हेतुमत् ? उवसन्तकसायत्तं हेऊ, वीयरागत्तं हेतुमं, तम्हा उवसन्तकसायवीयरागा इति, [६४]छउमं आवरणं छउमत्थणाणसहचरियत्ताओ छउमत्थववएसो, तम्मि वा चिट्ठइ त्ति छउमत्थो, उवसन्तकसायवीयरागा य ते छउमत्था य उवसन्तकसायवीयरायछउमत्था ।

"[६५]खीणकसायवीयरायछउमत्थ' त्ति, खीणा कसाया जेसिं ते भवन्ति खीणकसाया, वीओ रागो जेसिं ते भवन्ति वीयरागा, खीणकसाय इति सिद्धे वीयरागग्गहणमनर्थकमिति चेत् ? न अनर्थकं, कुतः ? खीणकसायवयणं कारणदव्वविणासोवदंसणत्थं, वीयरागवयणं कज्जोवदंसणत्थमिति उभयग्गहणं, अहवा णिमित्तनैमित्तिकववएसत्थं, णिमित्तविणासे नैमित्तिकविणासो भवतीति, छउमत्थणाणसहचरियत्ताओ छउमत्थ इति, जहा कुन्तसहचरिओ कुन्तो, लट्ठिसहचरिओ लट्ठि त्ति, तम्मि वा छउमे चिट्ठइ त्ति छउमत्थो, खीणकसायवीयरागो य सो छउमत्थो य सो खीणकसायवीयरायछउमत्थो, दोण्हवि लक्खणगाहाओ ।

---

(६४) 'छउमे' त्यादि। छद्मनावरणे तिष्ठति क्षयोपशमिकत्वात्तदविनाभावेन वर्तत इति छद्मस्थज्ञानमित्यादि । वसुष्टयं छद्मस्थं च तत् ज्ञानं च छद्मस्थज्ञानं, तत्सहचारित्वाज्जीवस्य छद्मस्थव्यपदेश । 'तम्मि व' त्ति क्वचिद्वा शब्दो न दृश्यते तत्र समुच्चयगमनात् । स च तस्मिन्नावरणे तिष्ठतीति छद्मस्थः ।

(६५) 'खीणकसाये' त्यादि। इह रागोऽभिष्वङ्गरूप उपलक्षणं चैष द्वेषस्य, कषाया क्रोधादिकर्माणिवस्तत्कारणरूपास्ततः क्षीणकषायवचनेन कारणनिवृत्तौ वीतराग इति रागाभावारूपः कार्यनिर्देश इति ।

तम्मि उ कसायभावाभावे सुद्धं भवे अहक्खाय । चारित्त दोण्हवि य उवसतखीणमोहाणं ॥१॥
जलमिव पसन्तकलुस पसन्तमोहो भवे उ उवसन्तो । गयकलुस जइ तोय गयमोहो खीणमोहोत्ति ॥२॥
ण य रागदोसहेऊ भावा य भवन्ति केइ इह लोगे । ण य खोभयन्ति केई उवसन्ते खीणमोहे य ॥३॥
रागप्पदोसरहिओ झायन्तो झाणमुत्तम खीणो । पावइ पर पमोय घाइतिग णासिऊण ततो ॥४॥

'सजोगि केवलि' त्ति, सह जोगेण वट्टइ त्ति सजोगी; केवलं [1]अमिस्सं संपुन्नं वा, किं तं केवलं ? णाणं, तं जस्स अत्थि सो केवली, सजोगी य सो केवली य सजोगिकेवली 'अजोगिकेवलि' त्ति ण अस्स जोगो अत्थि त्ति अजोगी, एत्थ गाहाओ–

"च्चित्त चित्तपडणिभ तिकालविसय तओ स लोगमिम । पिक्खइ जुगव सव्व सो लोगं सव्वभावन्नू ॥१॥
विरिय णिरन्तराय भवइ अणत तया य तस्स सया । मणवयणकायसहिओ केवलणाणी सजोगिजिणो ॥२॥
तो सो जोगणिरोहं करेइ लेसाणिरोहमिच्छन्तो । दुसमयठिइग बन्ध जोगणिमित्त स णिरुणद्धि ॥३॥
[६६]समए समए कम्मादाणे सइ सन्तयम्मि ण य मोक्खो । वेइज्जइ कम्म पुण ठिईखयाओ उ अज्जियय ॥४॥

(६६) 'समये' त्यादि । आह–प्राग् योगनिरोध उक्त, तन्निरोधद्वारेण किमित्यसौ तन्निमित्तं द्विसमयस्थितिकं बन्धं निरुणद्धि इत्याह । समये समये क्षणे क्षणे कर्मण सद्वेद्यस्यादान ग्रहणं कर्मादान तस्मिस्सति सततेऽविच्छिन्ने यतो न व (ण य)नैव मोक्ष', सकलबन्धाभावरूपत्वात्तस्य । यद्येव यथा कर्मणोऽबन्धेन मोक्षस्तथा तत् सत्तायामपि विद्यते चास्य बन्धाभावेऽपि प्राग्-बद्ध विचित्तं(त्र) कर्म अत. कथमस्य मोक्ष इत्याह-'वेइज्जइ' इत्यादि । पुन.शब्दो विशेषणार्थो भिन्नक्रमश्च । ततश्चाऽजित प्रागुपात्तं

1 'केवलमनिस्स' इति मु. प्रत्युल्लिखित पाठान्तरम् ।

णो ⁶⁷कम्मेहिं चिरिय जोगदव्वेहिं भवइ जीवस्स । तस्स अवत्थाणेण णु सिद्धो दुसमयठिईबंधो ॥५॥
बायरतणुए पुव्व ¹मणोवईबायरे स णिरुणद्धि । ⁶⁸आलम्बणाय करणं दिट्ठमिणं² तत्थ विरियवग्गो ॥६॥

पुनर्वेद्यते, अनुनयते निर्जरायोग्य क्रियत इत्यर्थ । कर्मसद्वेद्यादिस्थितिक्षयाज्जीवेन सह सम्बन्धस्वभावापगमाविति । इवमुक्तं भवति-नवस्य कर्मणोऽनुपादाने चिरन्तनस्य स्थितिक्षयं वेदनेन-निर्जरणे, उपपद्यत एव कृत्स्नकर्मक्षयलक्षणो मोक्ष इति । आह्-योगकषाय-परिणामप्रत्ययो बन्ध , यदुक्तं--

'जोगा पयडिपएसं ठिइ-अणुभागं कसायओ कुणइ' त्ति [बन्धशतक. गा.९९]

तत्र कषायः कर्मप्रत्यय. कषायपरिणाम इति प्रतीतम् । नास्ति तत्कर्म यन्निमित्तो योगः, इत्यहेतोर्योगस्याऽभावान्न स्याद्द्वि-सामयि(यि)को बन्ध इत्याह्-

(६७) 'णोकम्म' इत्यादि । अत्र नोशब्दः सहायवचनः यथेन्द्रियसाहचर्यान्नोइन्द्रिय मन इति । ततोऽत्र नोकर्मभिरौदारि-कादिकर्मकार्यतया तत्कार्यसहचरैः, निषेधवचनो वा ततो नोकर्मभिः कर्मविलक्षणैः-अकर्मभिरपीति भाव. । वीर्यं परिस्पन्दप्रयत्न रूपं । युज्यन्त इति योगा मनोवाक्कायव्यापारास्तेषां द्रव्याणि, तद्धेतुत्वात् कायादिलक्षणान, तैर्भवति प्रवर्तत इति । अयमत्र भावो-यद्यपि कर्मबन्धहेतुर्जीवपरिणामो मिथ्यात्वादिस्तत्कर्मनिबन्धनस्तथाऽपि तत्स्वाभाव्यादकर्मभ्योऽप्येतेभ्य स्यो(या)दयमिति । एव च तस्य योगस्याऽवस्थाने सत्तायां ननु निश्चितं सिद्ध प्रमाणोपलब्धो द्विसमयस्थितिबन्धोऽविकलकारणस्य स्वकार्यकारित्वात् ।

(६८) 'आलम्बणायकरणं दिट्ठं [तत्थ] विरियवग्गो' त्ति । आलम्बनायोपष्टम्भनाय करणं साधकतम तदबा-दरतनुलक्षण दृष्टमुपलब्धम् । तत्र निरोधे वीर्यवतः सपरिस्पन्दप्रयत्नवतो निःकरणतायां तस्याभावात् ।

1 'वइयमणोबायरे' इति जे. । 2 'त दिट्ठ तत्थ' इति मु. प्रत्युल्लिखितं पाठान्तरम् ।

बायरतणुमवि णिरुणद्धि तओ सुहुमेण कायजोगेण । ण णिरुज्झए उ सुहुमो जोगो सइ बायरे जोगे ॥७॥
सुहुमेण कायजोगेण ततो निरुणद्धि सुहुमवायमणे । भवइ य सुहुमकिरिओ जिणो तया किट्टिकयजोगो ॥८॥

[६९]णासेइ कायजोगं थूलं सोऽपुव्वफड्डगीकिच्चा । सेसस्स कायजोगस्स तया किट्टी य स करेति ॥९॥

(६९) 'नासे' त्यादि । नाशयति-अपनयति काययोगं स्थूलं बादरं स सयोगकेवली । योगनिरोधप्रवृत्त, अपूर्वस्पर्द्धकीकृत्य-अपूर्वस्पर्द्धकतया सम्पाद्य शेषस्याऽपूर्वस्पर्द्धकीकृतस्य काययोगस्य, तदा सूक्ष्मकायनिरोधकाले किट्टीश्च स सयोगकेवली करोतीत्यक्षरार्थ । पूर्वाऽपूर्वस्पर्द्धककिट्टीनां च स्वरूप पुनरित्थमवसेयम्-यः खलु मनोवाक्कायकरणवतो जीवस्य स्वप्रदेशचलनलक्षणो वीर्यान्तरायकर्मक्षयक्षयोपशमाभ्या शरीरादिपुद्गलादानादिनिबन्धन स्वको वीर्यपरिणामः, यथोक्तमिहैव—

"मणसा वाया काएण, वा वि जुत्तस्स विरियपरिणामो । जीवस्स अप्पणिज्जो, स जोगसन्नो[1] जिणक्खाओ ॥"

स च साधारणवनस्पते सूक्ष्मनामकर्मोदयवतो लब्ध्यपर्याप्तकस्य तद्भवप्रथमसमयवृत्ते स्वभावत एव सर्वस्तोकवीर्यपरिणते सर्वजघन्य, अयञ्च प्रज्ञया द्विधा-त्रिधादिविभागतस्तावद्विभज्यते यावदसख्येयलोकप्रदेशप्रमाणो विभागभागो जात इति, परतो विभागदानाभावात् । एते च योगाऽविभागा असख्यलोकप्रदेशप्रमाणप्रचयास्तस्य प्रति जीवप्रदेश जघन्योऽपि भवति । तत्र येषा प्रदेशाना समाना अन्यप्रदेशास्तेभ्यश्चाल्पतमा वीर्याऽविभागास्ते श्रेण्यसंख्यभागवर्तिलोकप्रतरप्रदेशप्रमाणा प्रथमजघन्या वर्गणा, ये चातोऽन्ये(या) एतत्प्रमाणाऽविभागा एव, परमेकाऽविभागाधिकास्ते द्वितीया वर्गणा, ये चातोऽप्येकाधिकास्ते तृतीया[2] । एवमेकैकाविभागाऽभ्यधिका जीवप्रदेशैश्च यथोत्तर हीनहीनतरादिरूपाः श्रेण्यसख्यभागसख्या वर्गणा प्रथमस्पर्धकं भवति । इत ऊर्ध्वमेकोत्तरवर्गणाया अभावात् प्राप्तैकोत्तराविभागवृद्धीना च वर्गणाना समुदायस्य स्पर्द्धकत्वात्ततश्चैतच्चरमवर्गणाया उपर्य-

1 अत्रादर्शे 'म जोगसत्तो त्तिणकाओ' इति पाठः स चाऽशुद्ध । 2 आदर्शे 'वे तृतीया' इतिपाठो द्विवारं दृश्यते ।

तमवि स जोगं सुहुमं रुद्धन्तो सव्वपज्जयाणुगयं । झाण सुहुमकिरियं अप्पडिवायं च उवयाइ ॥१०॥
झाणे दढप्पिए पुण अक्किरियाऊ तणू भवइ दिट्ठा । आणापाणु णिमीलुम्मीलविउत्ता अचित्तमिव[1] ॥११॥
जोगाभावाओ पुण दुसमयठिइगो[2] ण कम्मबन्धो त्ति । झाणप्पसहारा तिभागसकुचियनियदेसो ॥१२॥

संख्यलोकप्रदेशसंख्यामविभागवृद्धिमतिक्रम्य संजातवीर्याविभागप्रमाणजीवप्रदेशा· प्रागवर्गणाप्रदेशेभ्यश्च किञ्चिदूना वर्गणात्व प्रतिपद्यन्ते । एवमतोऽप्येकैकाविभागाधिकाः पूर्वक्रमेणैव श्रेण्यसंख्यांशप्रमाणवर्गणा द्वितीयं स्पद्‌र्धकम् । एवमेतानि परस्परमसंख्यलोकप्रदेशप्रमाणाविभागापचयरूपसंपन्नचरमाद्यवर्गणान्तरालान्युत्तरोत्तरक्रमेण पूर्वस्पद्‌र्धकन्यायोपचितानि श्रेण्यसंख्यांशपरिमाणानि जघन्ययोगस्थानक तस्य भवति ।

यथा चैतत्तथान्यान्यपि प्रत्येकं श्रेण्यसख्यैः परस्परमसंख्यलोकप्रमाणचरमाद्यवर्गणान्तरालैः प्राक्प्रमाणवर्गणासमूहमयैरसंख्यभागवृद्धचा परस्पर स्पर्द्धन्त इति लब्धयथार्थाभिधानैः स्पर्द्धकैर्यथोत्तरं प्रतियोगस्थानकमङ्गुलासंख्यभागाधिकगणनाप्रमाणैराहितस्वरूपाणि श्रेण्यसख्यभागप्रमाणानि卐 योगस्थानकाविआउ उत्कृष्टयोगसंज्ञिपर्याप्तक संभवरीनि भवन्ति 卐 यथोक्तम्

पन्नाछेयणछिन्ना, लोगासंखेज्जगप्पएससमा । अविभागा एक्केक्के, हुन्ति पएसे जहन्नेणं ॥१॥
जेसिं पएसा ण समा, अविभागा सव्वतो य थोवतमा । ते वग्गणा जहन्ना, अविभागहिआ परंपरओ ॥२॥

1 अचित्तव्व' इति जे. । 2 'दुसमयठीतो' इति मु. । 卐...... 卐 स्वस्तिकद्वयान्तर्गतो पाठोऽक्षरशो यथाऽऽदर्शे विद्यते तथैवात्र सपादित, किन्तु सोऽशुद्ध. प्रतिभाति, न सम्यग्ज्ञायते तस्य भावार्थ इति ।

[70] लेसाकरणणिरोहो जोगणिरोहो य तणुणिरोहेण । अह भणिओ विन्नेओ बन्धणिरोहो वि य तहेव ॥१३॥

सेढिअसंखियमेत्ता, फड्डगमेत्तो अणंतरा णत्थि । जाव असंखा लोगा, ते बीआईअ पूव्वसमा ॥३॥
सेढिअसंखियमेत्ताइं फड्डगाइ जहन्नयं ठाणं । फड्डगपरिवुड्ढिर(अ)ओ, अगुलभागो असंखतमो ॥४॥

तथा— [कर्मप्रकृति , बन्धनक. गा. ६-७-८-९]

सेढि असखेज्जइमे, जोगट्ठाणाणि हुति सव्वाणि ।

एतेपु च स्थानकेषु सर्वाण्यपि स्पर्द्धकानि पूर्वाणीत्युच्यन्ते, प्रत्येक सर्वजीवैरनन्तश प्राप्तपूर्वकत्वादेतद्योगस्थानकानामिति । अपूर्वाणि पुनरेष एव सयोगकेवली पूर्वस्पर्द्धकेभ्य एव जीवप्रदेशान् योगाविभागाँश्च समाकृष्य तदसंख्यगुणहीनान्येव रूपाण्यन्तर्मुहूर्तं करोति । तदनंतरमन्तर्मुहूर्तमात्रमसख्यजीवप्रदेशप्रचयात्मिका अपूर्वस्पर्द्धकादिवर्गणातोऽप्यसख्यगुणहीनयोगाविभागा यथोत्तरमसख्यगुणान्तराला अपूर्वस्पर्द्धकजीवप्रदेशानां निरोधप्रयत्नवशात् परित्यक्तस्पर्द्धकरूपाणा स्वारम्भकप्रदेशेषु संपन्नसमानयोगाविभागा असंख्याता. किट्टी करोति । ततस्तास्वन्तर्मुहूर्तेन निरुद्धास्वयोगिकेवली भवतीति ।

(७०) 'लेसाकरणनिरोहो' इत्यादि । लेश्या च कर्मपुद्गलोपादानशक्ति', योगस्यैव कश्चिद्विशिष्टः परिणामो 'योगपरिणामो लेश्ये' ति वचनात् । करण च सलेश्यजीवकर्तृकः प्रयत्नविशेषोबन्धनकरणादि । यदुक्तम्—

बंधणसंकमणुव्वट्टणा य अववट्टणा उदीरणया । उवसामणा निहत्ती निकायणा च त्ति करणाइं ॥१॥

[कर्मप्रकृतिः, बन्धनक.गा.२]

लेश्याकरणे तयोर्निरोधो विनाश इति विग्रहः । अत्र चोदीरणापवर्तनाकरणे एवाधिक्रियेते । शेषसक्रमादिकरणपञ्चकस्य प्रागेव निवृत्तत्वात् । बन्धनिरोधेन च बन्धनकरणनिरोधस्य वक्ष्यमाणत्वात् , तदन्यथानुपपन्नत्वात्तन्निरोधस्य । जीवप्रदेशचलना

|| ५७ ||

एसो अजोगिभावो जोगणिरोहेण पत्तगुणणामो । अप्पडिवायज्झाणी[1] सव्वण्णू सव्वदंमी य ॥१४॥
तम्माण ऊणमेत्तो सुहदुक्खाणं जिअ सिवं सात । पावइ अलद्धपुव्व णिव्वाणमलेस्सणिप्कन्द ॥१५॥"

चोद्दसण्हं गुणट्ठाणाणं अत्थणिरूवणा कया, इयाणिं ते चेव गइयाइमग्गणट्ठाणेसु मग्गिज्जन्ति—

सुरनारएसु चत्तारि हुंति तिरिएसु जाण पंचेव । मणुयगईए वि तहा चोद्दस गुणनामठाणाणि[2] ॥१०॥

व्याख्या—'**सुरनारएसु**' त्ति गई चउव्विहा णिरयाइ '**सुरणारएसु चत्तारि होंति**' त्ति देवणेरइगेसु चत्तारि गुणट्ठाणाणि मूलिल्लाणि भवन्ति, तेसु विरई णत्थि त्ति काउं उवरिल्लाणि ण संभवन्ति । '**तिरिएसु जाण पंचेव**' त्ति तिरियगईए पंचगुणट्ठाणाणि मूलिल्लाणि, तेसु सव्वविरई णत्थि त्ति काउं उवरिल्लाणि ण संभवन्ति । '**मणुयगईए वि तहा चोद्दसगुण[3] नामठाणाणि**' त्ति मणुस्सगईए चोद्दसवि गुणट्ठाणाणि, कहं ? सव्वे भावा मणुएसु संभवन्ति॥१०॥

एवं मग्गणठ्ठाणेसु णेयव्वं अइसंखित्तंत्ति काउं भन्नइ—

'इंदिए' त्ति, एगिंदियाईणि पुव्ववण्णियाणि चोद्दसवि जीवट्ठाणाणि (तेसु) सव्वेसु वि मिच्छदिट्ठी लब्भइ । वाय-

वलम्बनः प्रयत्नविशेषो योगः । तन्निरोधश्च तनुनिरोधेन देहनिर्व्यापारभावसंपादनेनाऽतिभणितपूर्वो विज्ञेयो द्रष्टव्यो । बन्धो जीवकर्म्मणोरविभागेन सम्बन्धपरिणामस्तन्निरोधोऽपि च तथैवातिभणितो ज्ञेयो । देहबलालम्बनत्वेन लेश्यादीनां देहनिरोधिकारणाभावात्तेऽपि निरूध्यन्त इति । एवं चायोगिकेवली निरूद्धलेश्यो निरूद्धकरण इत्यादि विशेषणो भवतीति ।

1 'अप्पडिवायणाणी' इति मु. प्रत्युल्लिखित पाठान्तरम् । 2 गुणनामधिज्जाणि' इति मु. । 3 गुणनामधेज्जाणि' इति मु. ।

रेगिंदिय-बि-ति-चउ-असन्निपंचिंदिएसु लद्धीपज्जत्तगेसु करणेण अपज्जत्तगेसु, सन्निपंचिन्दिएसु करणपज्जत्तीए पज्जत्तगापज्जत्तगेसु सासायणसम्माद्दिट्ठी लब्भइ, लद्धिअपज्जत्तगेसु सव्वत्थ णत्थि। सेसा सव्वेवि सन्निपज्जत्तगम्मि करणपज्जत्तिए पज्जत्तगम्मि लब्भन्ति, णवरि असंजयसम्मद्दिट्ठी करणपज्जत्तापज्जत्तगेसु वि लब्भन्ति ।

'काए' त्ति, पुढविआइ जाव तसकाइओत्ति, मिच्छद्दिट्ठी सव्वेसु वि, बायरपुढवि आउ पत्तेयवणस्सइकाइगेसु लद्धिपज्जत्तगेसु करणअपज्जत्तगकाले चेव सासणो लब्भइ, तेसु उववज्जति त्ति काउं, तसेसु वि लद्धिए पज्जत्तगेसु करणपज्जत्तगापज्जत्तगेसु लब्भंति, तसेसु एवं चेव असंजयसम्मद्दिट्ठी वि। सेसा सव्वे तसकायपज्जत्तगेसु करणपज्जत्तीए पज्जत्तगेसु चेव लब्भन्ति ।

जोगो अधिकृतः ।

'वेए' त्ति, मिच्छद्दिट्ठीप्पभिइ जाव अणियट्टिअद्धाए संखेज्जतिभागमेत्तं सेमत्ति ताव तिसुवि वेएसु लब्भन्ति, हेट्ठील्ला सव्वे सवेयगा, उवरिल्ला अवेयगा ।

'कसाय' त्ति, मिच्छद्दिट्ठीप्पभिइ जाव अनियट्टिअद्धाए संखेज्जइभागमेत्तं[1] सेसत्ति, हेट्ठिल्ला सव्वेवि कोहमाणमायासु लब्भंति, उवरिल्ला [2]अकसाइणो सव्वे। लोभंमि जाव सुहुमरागस्स चरिमसमओ त्ति ताव हेट्ठिल्ला सव्वेवि लब्भंति, सेसा अकसाइणो ।

1 सखेज्जइभागमेव, इति मु.। 2 'अप्पकसाइणो' इति मु. ।

णाणाणि अधिकृतानि ।

'संजम' त्ति, मिच्छद्दिट्ठीप्पभिइ जाव असंजयसम्मद्दिट्ठी ताव सव्वे असंजया, संजयासंजयो एक्कंमि चेव संजयासंजयट्ठाणे, सामाइयछेओवट्ठावणसंजमेसु पमत्तसंजमप्पभिई जाव अणियट्टि त्ति सव्वेवि । परिहारविसुद्धिसंजमे पमत्तापमत्तसंजया, सुहुमसंपराइओ एक्कंमि चेव सुहुमसंपराइय संजमट्ठाणे, उवसंताइ जाव अजोगि त्ति सव्वे अहक्खायसंजमट्ठाणे ।

दंसणमधिकृतं ।

'लेसे' त्ति, मिच्छद्दिट्ठीप्पभिई जाव असंजओ त्ति सव्वेवि छसु लेसासु, संजयासंजयपमत्तापमत्ता य तेउआइ उवरिल्लतिगलेसासु, केइ भणन्ति संजयासंजयपमत्तविरया य छसु लेसासु वट्टन्ति, अन्ने भणन्ति अच्चंतसंकिलिट्ठस्स वयभावो[3] णत्थि, अन्ने भणन्ति ववहारओ भवइ, अपुव्वकरणाइ जाव सजोगि त्ति सव्वेवि सुक्कलेसाए वट्टन्ति, अलेसिओ अजोगी पुद्गलव्यापाराभावात् ।

'भव्व' त्ति मिच्छाइ जाव अजोगि त्ति सव्वे भवसिद्धिकेसु वट्टन्ति, अभविकेसु मिच्छद्दिट्ठी वट्टइ, सम्मत्ताइभावा अभविएसु ण संभवन्ति त्ति उवरिल्ला ण वट्टन्ति त्ति ।

'सम्मे' त्ति, सम्मद्दिट्ठी खाइगसम्मद्दिट्ठीसु अविरयादि जाव अजोगी, वेदगसम्मत्तं अविरयाई जाव अप्पमत्ते, उवसमसम्मत्ते अविरयाई जाव उवसंतकसाओ, सेसा अप्पप्पणो ठाणे ।

3 'वयपरिणामो' मु इति, प्रत्युल्लिखितं पाठान्तरम् ।

'सन्नि'त्ति, मिच्छादिट्ठियादि जाव खीणकसाओ सव्वेवि सन्निम्मि, मिच्छादिट्ठी सासायणा य असन्निम्मि वि वट्टन्ति, सजोगी अजोगी य णो सन्नि णो असन्नि, जओ केवलणाणिणो।

आहारे त्ति-मिच्छाइ जाव सजोगिकेवलि ताव सव्वे आहारगेसु लब्भन्ति, मिच्छादिट्ठि सासण असंजओ सजोगिकेवली य *विग्गहे समुग्घाए य अणाहारगेसु वि लब्भंति*। अजोगी अणाहारगो चेव, कह? वाक्कायमणोजोगपुग्गलव्यापाररहितत्वात्। गुणट्ठाणाणि मग्गणट्ठाणेसु मग्गियाणि। इयाणिं उवओगा गुणट्ठाणेसु भणन्ति-

दोण्हं पंच उ छच्चेव दोसु एक्कंमि होंति वा मिस्सा। सत्तुवओगा सत्तसु दो चेव य दोसु ठाणेसु॥११॥

व्याख्या-'**दोण्हं**' त्ति दोण्हं गुणट्ठाणाणं मिच्छादिट्ठिसासणाणं पंच पंच उवओगा भवन्ति, तं जहा-मइअन्नाणं, सुयअन्नाणं, विभङ्गणाणं, चक्खुदंसणं, अचक्खुदंसणं ति। अन्ने भणन्ति-ओहिदंसणसहिया छ उवओगा। अन्नाणकारणं पुव्वं वक्खाणियं। ओहिदंसणं चिंत्यं। '**छच्चेव दोसु**' त्ति असंजयसंजयासंजएसु एएसु दोसु छ उवओगा, तं जहा-आभिणिबोहिय-सुय-ओहि-अचक्खु-चक्खु-ओहिदंसणमिति '**एक्कंमि होंति वा मिस्स**' त्ति सम्मामिच्छदिट्ठिम्मि वा मिस्सा इति, कहं? भन्नइ, मइअन्नाणं आभिणिबोहियणाणेण मिस्सियं, सुयअन्नाणं सुयणाणेण मिस्सियं, विभंगणाणं ओहिणाणेण मिस्सियं, चक्खुअचक्खुओहिदंसणं ति। मिस्ससद्दो अद्धविसुद्धत्थे, जहा अद्धविसुद्धा कोद्दवा ते भुंजमाणस्स [1]जारिसी सरीरचेट्ठा

* ...... * 'अणाहारगेसु वि लब्भन्ति, विग्गहे समुग्घाए य' इति मु०। 1 'जेरिसी' इति मु०।

॥ ६१ ॥

तारिसं णाणंति नासुद्धं नात्यर्थं सुद्धं वा 'सत्तुवओगा सत्तसु'त्ति पमत्तसंजयाइ जाव खीणकसाओ ताव सव्वेसुवि सत्त सत्त उवओगा भवन्ति, असंजयसम्माद्दिट्ठिस्स पुव्वुत्ता छ, ते चेव मणपज्जवणाणसहिया सत्त । 'दो चेव य दोसुट्ठाणेसु' त्ति दो चेव उवओगा दोसु-सजोगिअजोगिट्ठाणेसु केवलणाणं केवलदंसणमिति ॥११॥

गुणट्ठाणेसु उवओगा भणिया । इयाणिं जोगा ७१ A वुच्चंति—

[1]तिसु तेरस एगे दस नवसत्तसिगम्मि हुन्ति एगारा । एगम्मि सत्त जोगा, अजोगिठाणं हवइ एक्कं ॥१२॥

पाठान्तर तेरस चउसु दसेगे पंचसु नव दोसु होन्ति एगारा ।एगम्मि सत्त जोगा अजोगि ठाणं हवइ एगं॥१३॥

व्याख्या-'तिसु तेरस' त्ति तिसु गुणट्ठाणेसु मिच्छद्दिट्ठीसासणअसंजयसम्मद्दिट्ठीसु तेरम तेरस जोगा भवंति, तं जहा—चत्तारि मणजोगा, चत्तारि वइजोगा, ओरालियकायजोगो ओरालियमिस्स कायजोगो, वेउव्वियकायजोगो वेउव्वियमिस्स-कायजोगो, कम्मइगकायजोगो त्ति । कम्मइगजोगो अन्तरगइए वट्टमाणाणं, ओरालियमिस्स वेउव्वियमिस्स य अपज्जत्तगद्धाए,

(७१ A) गुणस्थानकेषु योगसख्यामार्गणागाथायाश्चूर्ण्यनुसारी प्रथमपाठ एवं द्रष्टव्य —

तिसु तेरस एगे दस, नवसत्तसिगंमि हुंति एगारा । एगंमि सत्तजोगा, अजोगिठाणं हवइ एक्कं ॥

द्वितीयः सुप्रतीत एव ।

1 तिसु तेरस एगे दस नवजोगा होंति सत्तसु गुणेसु । एक्कारस य पमत्ते (एकम्मि हुन्ति एक्कारम) सत्त सजोगे अजोगेक्कं ॥१२॥ इति मु० ।

सेसा सभावत्थस्स चउगइके पडुच्च । 'एगे दस' त्ति सम्मामिच्छादिट्ठिम्मि दस जोगा, मीसदुग-कम्मइगवज्जिया ते चेव, मरणभावो तब्भावेण णत्थि त्ति तओ एए तिन्निवि न संभवन्ति । 'णव सत्तसु'त्ति, संजयासंजयअप्पमत्त-अपुव्वकरणाइ जाव खीणकसाओ एएसु सत्तसु णव-णव जोगा भवन्ति, सम्मामिच्छादिट्ठिस्स जे दस ते चेव वेउव्विकायजोग रहिया णव भवन्ति, वेउव्वियं एए ण करेन्ति त्ति वेउव्वियकाओगो णत्थि। 'एक्कंमि हुंति एक्कारस' त्ति एक्कमि पमत्तसंजयम्मि एक्कारस जोगा, पुवुत्ता णव आहारककायजोगआहारकमिस्सकायजोगसहिया एक्कारस भवन्ति, आहारगका ओगो आहारगमिस्सकायजोगो य आहारगलद्धिसहियस्स संजयस्स आहारगसरीरं उप्पाएन्तस्स पमत्तो उप्पाएइ, न अप्पमत्तो त्ति, तम्हा एक्कारस । एत्थ देसविरयप्पमत्ताणं केसिंचि वेउव्वियकायजोगो अत्थि त्ति ते पुण एवं पढन्ति 'तेरस चउसु दसेगे पंचसु णव दोसु होन्ति एक्कारस' त्ति । 'तेरस चउसु' त्ति, पुव्वं तिण्हं तेरस तेरस जोगा भणिया, चउत्थो पमत्तसंजओ, एक्कारस ते चेव वेउव्विय[1]दुगसहिया तेरस पमत्तसंजयस्स भवन्ति, । 'दसेगे'त्ति, भणियं, 'पंचसु णव' त्ति, देसविरयअप्पमत्ते मोत्तूण सेसा पंच तेसु पुवुत्ता णव । 'दोसु होन्ति एक्कारस'त्ति, देसविरयअप्पमत्ताणं एक्कारस, पुवुत्ता णव वेउव्वियदुगसहिया एक्कारस देसविरयस्स, ते चेव वेउव्वियआहारगकायसहिया एक्कारस अपमत्तस्स, कहं ? वेउव्विआहारगअन्तकाले पमत्तो अप्पमत्तभावं लभति त्ति काउं । 'एक्कम्मि सत्त जोग' त्ति, एक्कम्मि सजोगिकेवलिम्मि

1 'वेउव्विय (आहारग)दुगसहिया' इति मु० ।

सत्तजोगा, सच्चमणजोगो, असच्चमोसमणजोगो, एवं वायावि, ओरालियकायजोगो, ओरालियमिस्सकाओगो कम्मइग-काओग इति । मणवाया मोसजुत्ता ण संभवन्ति 'अजोगिट्ठाणं हवइ एक्कं' ति, जोगविरहियं ठाणं एक्कं अजोगिट्ठाणमेव, मनोवाक्कायव्यापाररहितत्वात्[1] ॥१२-१३॥

उवओगा जोगविही य जीवट्ठाणगुणट्ठाणेसु भणिया, इयाणि जप्पच्चइओ बन्धो जेसु ठाणेसु तं भन्नइ—

चउपच्चइओ बन्धो पढमे उवरिमतिगे तिपच्चइओ । मीसग बीओ उवरिम दुगं च देसिक्कदेसम्मि ॥१४॥

व्याख्या—'चउपच्चइओ' त्ति, चत्तारि पच्चया, तंजहा—मिच्छत्तपच्चओ, असंजमपच्चओ कसायपच्चओ, जोगपच्चओ इति । मिच्छत्तं सामन्नेणं एगप्पगारं, विभागओ अणेगविहं [71 B]एगंतमिच्छत्तं, वेणइतमिच्छत्तं संसइयमिच्छत्तं, मूढ-

---

(७१ B) 'एगंत मिच्छत्त' मित्यादि । एकान्तोऽनेकधर्मणो वस्तुम एकनयाध्यवसायावधारणं, यथा—अस्त्ये [व] नास्त्येव वा जीवादिरर्थ इति, स एव मिथ्यात्वम्, समग्रनयग्रामस्यैव सम्यक्त्वात् । ऐहिकामुष्मिकसुखानि विनयवानेवाप्नोति न ज्ञानदर्शनोपवासप्रभृतिक्लेशवानित्यभिनिवेशो वैनयिकमिथ्यात्वम् । समिति सर्वात्मना, अनेकस्मिन् विषयेऽनिश्चायकतया शेत इव बोधविशेषः संशयः उक्तं च—

जे(ज)मणेगत्थालंबण-मपज्जुदासपरिकुंठियं चित्तं ।सेय इव सव्वपयओ, तं संसयरूवमन्नाणं ॥

[विशेषावश्यकभाष्ये, गा. १८३]

---

1 'मनोवाक्कायरहितत्वात्' इति मु० ।

मिच्छत्तं, विवरीयमिच्छत्तमिति । अहवा [७२]किरियावाओ, अकिरियावाओ, वेणइयवाओ, अन्नाणवाओ य ।

स एव मिथ्यात्वम् । यथा किममी मन्मनोविभ्रमं बिभ्राणाः प्रवचनप्रणिता' प्राणिप्रभृतयः पदार्थास्तथाऽन्यथा वा भवेयुरिति संशयमिथ्यात्वम् । मूढानामतिगहननयमतानुसारिनित्यानित्यादिपर्याया-ऽऽलोचनासु व्याकुलितमतीनां सर्वमज्ञानम् , ज्ञानं नास्तीत्यभिनिवेशो मिथ्यात्वं मूढमिथ्यात्वम् । विपरीतोविपर्यस्तवस्तुस्वभावाध्यवसायी मिथ्यात्वाऽज्ञानहिंसाऽनृतस्तेयाऽब्रह्मपरिग्रहादीनां स्वभावत एव भवभ्रमणकारणत्वेऽप्येतेभ्य एव निवृत्तिरित्यभिनिवेशवान् बोधो विपरीतमिथ्यात्वमिति । यदाहुरेभे(ते)—

"प्रियादर्शनमेवास्तु, किमन्यैर्दर्शनान्तरैः । प्राप्यते यत्र निर्वाणं, सरागेणापि चेतसा ॥१॥"

[ ]

(७२) 'किरियावाओ' इत्यादि । (१) सन्ति आत्मादयः पदार्था , न न सन्तीत्येवरूपक्रियाया वदनं क्रियावाद । (२) एतद्विपरितः पुनरक्रियावाद (३) विनय एव वैनयिकं, वैनयिकादेव सकलैहिकामुष्मिकफललाभो न तप प्रभृतितोऽनुष्ठानादिति वैनयिकस्य वादो वैनयिकवादः । (४) अज्ञानमेवश्रेयः क' किं यथावदवबोद्धुं क्षमो, न वा किञ्चिद् ज्ञातेन प्रयोजनमित्यज्ञानस्य वादोऽज्ञानवादः । भेदसंख्यास्वरूपं चैतेषामेतदार्याचतुष्टयानुसारेण समधिगम्यमिति ।

"आस्तिकमतमात्माद्या, नित्यानित्यात्मका नवपदार्थाः । कालस्वभावनियती-श्वरात्मकृतकाः स्वपरसंस्थाः ॥१॥

※ काल-यदृच्छा-नियति-स्वभावे-श्वरात्मभिश्चतुरशीतिः । नास्तिकवादिगणमते, न सन्ति भावा स्वपरसंस्थाः ॥२॥ ※

※ . ... ※ अत्रादर्शेऽस्या आर्याया यत्पाठो विद्यते स च निम्नलिखित.—तत्र 'वियच्छा' शब्दोऽधिक' प्रतिभाति ।

"कालयदृच्छा [वियच्छा] वि(नि)यतीश्वरस्वभावात्मभिश्चतुरशीति. । नास्तिकवादिगणमत, न सन्ति सत्त स्वपरसस्था. ॥ २ ॥"

"असियसयं किरियाणं अकिरियवाईण जाण चुलसीई । अन्नाणि य सत्तट्ठी वेणइयाणं च बत्तीसं ॥१॥

अहवा-"जावइया णयवाया तावइया चेव होंति परसमया । जावइयापरसमया तावइया चेय मिच्छत्ता" ॥२॥

एगंतवाओ मिच्छत्तं ति एए कम्मबंधस्स कारणभूआ । [73]अस्संजमो अणेगप्पगारो हिंसाउ, अहवा चक्खुइंदियविसया-ऽभिलासाइ । कसाया पणुवीसइविहा तंजहा–सोलसकसाया, नव नोकसाया इति । जोगा पंचदसप्पगारा पुव्वं वक्खाणिया । एत्थ आहारगदुगवज्जिएहिं चउहिंवि सविगप्पेहिं मिच्छदिट्ठिम्मि बंधो । 'उवरिमतिगे तिपच्चइगो' त्ति, उवरिम-

---

वैनयिकमतं विनयश्चेते(तो)वाक्कायदानतः कार्यः । सुरनृपतियतिज्ञाति-स्थविराऽधममातृपितृषु सदा ॥३॥

अज्ञानिकवादिमतं, नवजीवादीन् सदादिसप्तविधान् । भावोत्पत्तिं सदसद्विता(द्वेधा)ऽनाच्यां च को वेत्ति ॥४॥"

[श्रीसूत्रकृताङ्गसूत्रवृत्तौ श्रुत.१, अध्य. १२]

सदादयश्च सप्त,-सत्वम् १, असत्वम् २, सदसत्वम् ३, अवाच्यत्वम् ४, सदवाच्यत्वम् ५, असदवाच्यत्वम् ६, सदसदवा-च्यत्वमिति ७ ।

(७३) 'असंयम' इत्यादि । पञ्चाश्रवविरमणादे संयमस्य विपरीतो हिंसानृतस्तेयादिरनेकधा । हिंसादीनां कतिपयत्वेऽपि प्रभेदानामनेकत्वात् । अथवा द्वादशविधः, चक्षुरादीनामिन्द्रियाणां मनः-षष्ठानां स्वविषयाभिलाष, तथा पृथिव्यादीनां त्रसा-न्तानां षण्णां कायानां वधादविरमण । यदुक्तं–'छक्कायवहो मणइंदियाण अजमो असंजमो भणिओ' त्ति [पंचसंग्रह-द्वार४-गा-३] अयमेव चोत्तरगाथासङ्ग्रहे उपयोक्ष्या (क्ष्य)त इति ।

तिगं सासाणो सम्मामिच्छो अस्संजयसम्मदिट्ठी त्ति एएसु तिसु मिच्छत्तपच्चयवज्जिएहिं सेसतिगेहिं सविगप्पेहिं आहारगदुगवज्जिएहिं बन्धो भवइ, सव्वेवि तेसु अत्थि त्ति काउ, णवरि [दु] मिस्स-कम्मइगजोगो य सम्मामिच्छे णत्थि, अणन्ताणुबन्धिणो उवरिमदुगे णत्थि । **'मीसग बिइओ उवरिमदुग च देसेक्कदेसम्मि'** त्ति, बिइओ पच्चओ असंजमो सो देसविरइम्मि मिस्सो-अपडिपुन्नो, देसओ विरमणभावाओ, उवरिमदुगं णाम कसायजोगा एए दोन्निवि सविगप्पा देसविरयस्स बन्धकारणाणि, णवरि अप्पच्चक्खाणावरण ओरालियमिस्स [1]कम्मइगआहारगदुगवज्जियाणि, देसविरए एसिं उदओ णत्थि त्ति काउं, ॥१४॥

उवरिल्लपच्चके पुण दु पच्चओ जोगपच्चओ तिण्हं । सामन्नपच्चया खलु अट्ठण्हं होन्ति कम्माणं ॥१५॥

व्याख्या–**'उवरिल्लपंचके पुण दु पच्चओ'** त्ति, पमत्ताई जाव सुहुमरागो त्ति एएसु पंचसु कसायजोगपच्चइगो बंधो, विसेसोऽत्थ भण्णइ, पमत्तस्स कसाया संजलणा नोकसाया नव एए तेरस, जोगा पुव्वुत्ता तेरस, एएहिं बन्धो । अप्पमत्तस्सवि ते चेव, णवरि वेउव्वियमिस्सआहारयमिस्सवज्जिया एक्कारस जोगा, तेहि बन्धो । अपुव्वाण वि एए चेव, णवरि वेउव्वाहारगदुगवज्जिया जोगा णव, कसाया (सजलणा नोकसाया नव एए) तेरस, तेहिं बन्धो । अणियट्टिस्स जोगा णव, कसाया चत्तारि संजलणा, तिन्नि य वेया, एतेहिं बन्धो । सुहुमरागस्स जोगा णव, लोभसंजलणो य, एएहि बन्धो ।

1 '(वेउव्विय) वेउव्वियमिस्स' मुद्रितप्रतौ विद्यते।

'**जोगपच्चओ तिण्हं**' ति, उवसन्तखीणकसायसजोगिकेवलिणं एएसिं तिण्ह जोगपच्चइओ बन्धो उवसन्तखीणमोहाणं णव णव जोगा तेहिं बन्धो । सजोगि केवलिस्स सत्त जोगा, तक्कारणो बन्धो । '**सामन्नपच्चया खलु अट्ठण्हं होन्ति कम्माणं**' त्ति एए भणिया अट्ठण्हं कम्माणं सामन्नपच्चया अविसेसपच्चया इत्यर्थः ॥

[७४]पणपन्न-पन्न-तियछहियचत्त गुणचत्त-छक्कचउसहिया । दुजुया य बीस सोलस-दस-नव-नव-सत्तहेऊओ ॥ १ ॥

इदाणीं विसेसपच्चयणिरूवणत्थं भन्नइ—

पडिणीयअन्तराइयउवघाए तप्पओसनिन्हवणे । आवरणदुगं भूओ बन्धइ अच्चासणाए य ॥१९॥

व्याख्या-'**पडिणीय**' त्ति, णाणस्स, णाणिस्स, णाणसाहणस्स, पडिणीयत्तण करेइ पडिकूलया । '**अन्तराइयं**' ति विग्घं, '**उवघाओ**' त्ति मूलाओ विणासकरणं, '**तप्पओस**' त्ति. मणेण तेसिं रुसणया, '**णिण्हवणं**' ति आयरिय

[पंचसंग्रहद्वार ४-गा. ५]

---

(७४) 卐पणपन्न-पन्न तियछहियचत्त-गुणचत्त-卐छक्कचउसहिया । दुजुया य वीस सोलस दस-नव-नव-सत्तहेऊओ ॥१॥

इय चान्यकर्तृकाऽपि सोपयोगेतीह क्वचिदभिधीयतेऽतो व्याख्यायते । इह च पञ्च-द्वादश पञ्चविंशति-पञ्चदशभेदानां मिथ्यात्वादि प्रत्ययानां समास [५+१२+२५+१५=५७] सप्तपञ्चाशत् । तत्र मिथ्यादृष्टेराहारकद्विकमपनीय शेषाः पञ्चपञ्चाशद्बन्धहेतव इति । त एवापनीतमिथ्यात्वपञ्चकाः पञ्चाशत् । औदारिकवैक्रयमिश्रकार्मणकाययोगानन्तानुबन्धिष्वपगतेषु त्रिचत्वारिंशत् । से(त ए)वौदारिक वैक्रियमिश्रकार्मणेषु परभवसंभविषु प्रक्षिप्तेषु षट्चत्वारिंशत् । औदारिकमिश्रकार्मणत्रसासंयमाऽ-

卐 · · 卐 अत्रादर्शे 'पणपन्न-पन्न-तियहियचत्त-उगचत्त' इति पाठ. ।

ण्हवणं, सत्थणिण्हवणं वा, अन्नं च णाणिसंदूसणयाए, आयरियपडिणीययाए, उवज्झायपडिणीययाए, अकालसज्झायकरणेण य कालसज्झायाकरणेण य, **'आवरणदुगं भूओ बन्धइ'** त्ति णाणदंसणावरणाणि एएहि बन्धइ 'भूयो' त्ति भृशं तीव्रं, **'अच्चासणाए य'** त्ति हीलणयाए णाणं अच्चासेइ, आयरियउवज्झाए य अच्चासाएइ, पाणवहाइहिं य णाणावरणं कम्मं बन्धइ। दंसणावरणस्सवि एए चेव, णवरि अलसयाए, सोविरयाए, णिद्दाबहुमन्नणयाए दरिसणप्पओसेण, दरिसणपडीणीकयाए, दरिसणन्तराइगेण दिट्ठीसदूसणयाए चक्खुविग्घायणयाए पाणवहाईहिं य दंसणावरणं कम्मं बन्धइ ॥१६॥

भूयाणुकम्पवयजोगउज्जओ खन्तिदाणगुरुभत्तो। बन्धइ भूओ साय विवरीए बन्धए इयरं ॥१७॥

व्याख्या-'भूयाणु' त्ति भूयाणुकम्पयाए, दयालुकत्ताए, धम्माणुरागेणं, धम्मणिस्सेवणयाए, सीलव्वयपोसहोववासरतीए, अकोहणयाए, तवोगुणणियमरयाणं फासुयदाणेण, बालवुड्ढतवस्सिगिलाणगाईणं वेयावच्चकरणेण, मायापियाधम्मायरि-

---

प्रत्याख्यानावरणचतुष्करहिता एकोनचत्वारिंशत् । अतोऽपि प्रत्याख्यानावरणचतुष्काभावे एकादशाऽसंयमापगमे आहारकद्विकप्रक्षेपे च षड्विंशति । ततो वैक्रियाहारकमिश्रयोरपगमे चतुर्विंशति.। एतयोरेवशुद्धयोरभावे द्वाविंशतिः। षण्णोकषायापगमे च षोडश। वेदत्रयसज्वलनत्रितयाभावे दश । सज्वलनलोभाभावे नव । चत्वारि मनासि वचांसि च शुद्धौदारिककाययोगश्चेति नव। पुनरप्येत एव नव द्वितीयतृतीययोर्मनसोर्वचसोश्चाभावे, औदारिकमिश्रकार्मणकाययोगयोगे च त एव सप्तबन्धहेतव इति।

एते च पञ्चपञ्चाशदादय. सप्तान्ता क्रमेण मिथ्यादृष्ट्यादिषु सयोगिकेवलिपर्यवसानेषु त्रयोदशसु गुणस्थानकेषु नानाजीवानां समयाऽनपेक्ष्य सम्भवतो बन्धहेतवो द्रष्टव्या इति गाथार्थ । विशेषभावनाविस्तरभयान्नलिखितेति ।

याणं च भत्तीए, सिद्धचेइयाणं पूयाए, सुहपरिणामेणं सायावेयण यं कम्मं तिव्वं बन्धइ । 'विवरीए बन्धए इयरं' ति, भणियविवरीएहिं, तं जहा—णिरणुकम्पयाए,[1] वाहणविहडणदमणवहबन्धपरियावणयाए, अङ्गोवङ्गवेयणाइसंकिलेसजणणयाए, सारीरमाणसदुक्खुप्पायणयाए, तिव्वासुभपरिणामेणं णिद्दयत्ताए, पाणवहाइहिं य असायं कम्मं बन्धइ'इयर' ति असायावेयणीयं।१७॥

इयाणिं मोहबन्धस्स कारणं, तत्थ पढमं दंसणमोहस्स भन्नइ—

अरहन्त-सिद्ध-चेइय-तव-सुय गुरु साहु संघ पडणीओ । बन्धइ दंसणमोहं अणन्तसंसारिओ जेणं ॥१८॥

व्याख्या—अरहन्ताणं, सिद्धाणं, चेइयाणं, केवलीणं, साहूणं, साहूणीणं, धम्मस्स, धम्मोवएसगस्स, तवस्स सव्वन्नुभामियस्स, सुत्तस्स दुवालसंगस्स गणिपिडगस्स, सव्वभावपरूवगस्सअवन्नवाएणं, चाउव्वण्णस्स संघस्स अवन्नवाएणं '**पडिणीओ**' त्ति पडिणीओ अवन्नवाई भवइ, अन्नं च उम्मग्गदेसणाए, मग्गविपडिवत्तीए, धम्मियजणसंदूसणयाए, असिद्धेसु सिद्धभावणाए, सिद्धेसु असिद्धभावणाए, अदेवेसु देवभावणाए, देवेसु अदेवभावणयाए, असव्वन्नुसु सव्वन्नुभावणयाए, सव्वन्नुसु असव्वन्नुभावणयाए एवमाइं विवरीयभावसन्निवेसणयाए संसारपरिवद्धणमूलकारणं बन्धइ दंसणमोहं, सम्मदंसणघाइ मिच्छत्तमित्यर्थः । '**अणन्तसंसारिओ जेणं**' ति जेणं अणन्तसंसारिको भवइ ॥१८॥

इयाणिं चरित्तमोहकारणं भन्नइ—

तिव्वकसाओ बहुमोहपरिणओ रागदोससंजुत्तो । बन्धइ चरित्तमोहं दुविहंपि चरित्तगुणघाई ॥ १९ ॥

अष्टकर्मणां विशेषबन्धहेतुवर्णनम्

॥ ७० ॥

---

1 'णिराणुकम्पयाए' इति मु० ।

॥ ७१ ॥

व्याख्या—तिव्वकोहपरिणामो कोहवेयणीयं कम्मं बन्धइ । एवं माणमायालोभरागदोसा य वत्तव्वा । '**बहुमोहपरिणओ**' त्ति तिव्वमोहपरिणामो मोहवेयणीयं कम्मं बन्धइ । विषयगृद्ध इत्यर्थः । तिव्वरागो[1], अइमाणो, ईसालुको, अलियवाई, वङ्को, वङ्कसमायारो, सढो, परदाररइप्पिओ य इत्थिवेयणियं कम्मं बन्धइ । उज्जु, उज्जुसमाचारो, मन्दकोहो, मिउ, मद्दवसम्पन्नो, सदाचाररइप्पिओ, अणीसालुको, पुरिसवेयणीयं कम्मं बन्धइ । तिव्वकोहो, पिसुणो, पसूणं [2]वहबन्धछेयण-ताडणणिरओ, इत्थिपुरिसेसु अणंगसेवणसीलो, सीलव्वयगुणधारीसु पासण्डपविट्ठेसु य वभिचारकारी, तिव्वविसयसेवी य, णपुंसगवेयणीयं कम्मं बन्धइ । हसिणो परिहासउल्लाओ, कन्दप्पिओ, हसावणसीलो य, हासवेयणीयं कम्मं बन्धइ । सोयण-सोयावणसीलो, परदुक्ख-वसण-सोगेसु य अभिणन्दगो, सोगवेयणीयं कम्मं बन्धइ । विविहपरिकीलणाहिं रमण-रमावणसीलो, अदुक्खुपायणो य रइवेयणीयं कम्मं बन्धइ । परस्स रइविग्घकरणाए, अरइउप्पायणयाए पावजणसंसग्गीरइए य अरइवेयणीयंकम्मं बन्धइ । सयं भयन्तो, परस्स य भयउव्वेयं जणयन्तो, भयवेयणीयं कम्मं बन्धइ । साहुजण [3]दुगुच्छन्तो, परस्स दुगुच्छमुप्पान्यतो, परपरिवायणसीलो दुगुच्छावेयणीयं कम्मं बन्धइ । पत्तेयं पत्तेयं पयडीओ अहिकिच्च बन्धो भणिओ । इयाणिं सामन्नेणं भन्नइ—सीलव्वयसंपन्ने चरणट्ठे धम्मगुणरागिणे सव्वजगवच्छले समणे गरहन्तो, तवसंजमरयाणं परमधम्मिकाणं धम्माभिमुहाणं च धम्मविग्घं करेन्तो, जहासत्तीए सीलव्वयकलियाणं देसविरयाणं विरइविग्घं करेन्तो, महुमज्जमंसविरयाणं को एत्थ दोसोत्ति अविरति दरिसेन्तो; चरित्तसंदूसणाए अचरित्तसंदेसणाए [4]य परस्स कसाए णोकसाए य संजणन्तो बन्धइ चरित्तमोहं कम्मं ।

॥ ७१ ॥

1 'तिव्वरोसो' इति वा पाठ । 2 'वहछेयणफोडणणिरओ' इति मु० । 3 साहुजणदुगुच्छए' इति मु० । 4 'अचरित्तगुणसदसणयाए' इतिजे०।

'दुविहंपि चरित्तगुणघाई' ति कसायणोकसायवेयणीयं दुविहंपि चरित्तगुणं घातति त्ति चरित्तगुणघाई तं चरित्तगुणघाई ॥१९॥ इयाणिं णिरयाउगस्स [3]पच्चओ भन्नइ—

मिच्छदिट्ठी महारम्भपरिग्गहो तिव्वलोभनिस्सीलो। निरयाउयं निबंधइ पावमई रुद्दपरिणामो॥२०॥

व्याख्या—**'मिच्छदिट्ठी'** धम्मस्स परम्मुहो, **'महारम्भपरिग्गहो'** त्ति जम्मि आरम्भे बहूणं जीवाणं घाओ भवइ सो महारम्भो, जम्मि परिग्गहे बहूणं जीवाणं घाओ भवइ सो महापरिग्गहो, **'तिव्वलोभ णिस्सीलो'** त्ति णिम्मेरपचक्खाणणोसहोववासो, अग्गिरिव सव्वभक्खी णिरयाउग्गं कम्मं बन्धइ । **'पावमई रुद्दपरिणामो'** त्ति। पावमई असुभचित्तो पत्थरभेयसमाणचित्तो त्ति । रोद्दपरिणामो सव्वकालं मारणाइचित्तो ॥२०॥

इदाणिं तिरियाउगस्स भन्नइ—

उम्मग्गदेसओ मग्गनासओ गूढहिययमाइल्लो । सढसीलो य ससल्लो तिरियाउं बन्धए जीवो ॥२१॥

व्याख्या—**'उम्मग्गदेसओ'** त्ति उम्मग्गं पन्नवेइ, मग्गत्थियाणं णासणं करेइ, **'गूढहिययमाइल्लो'** त्ति मणसा गूढो; किरियाए माइल्लो, **'सढसीलो'** णाम वाचा मधुरो, **'ससल्लो'** त्ति वयसीलेसु अइयारसहिओ मायावी णालोए त्ति, पुढविभेयसरिसरोसो, अप्पारम्भो, तिरियाउयं कम्मं बन्धइ ॥२१॥

---

3 'इयाणिमाउगस्स'इति मु० ।

इयाणिं मणुआउगस्स भन्नइ—

पयईअ तणुकसायो दाणरओ सीलसंजमविहूणो । मज्झिमगुणेहि जुत्तो मणुयाउं बन्धए जीवो ॥२२॥

व्याख्या—'**पयईअ तणुकसायो**' त्ति पगईए अप्पकसाओ, पगईए भद्दगो, पगईए विणीओ, जहि तहिं वा दाणरओ, वालुकराईसरिसरोसो, सीलसंजमरहिओ, '**मज्झिमगुणेहिजुत्तो**' त्ति णाइसंकिलिट्ठो, ण विसुद्धो, उज्जु, उज्जु-कम्मसमाचारो, मणुयाउगं कम्मं बन्धइ ॥२२॥

इयाणिं देवाउअस्स पच्चओ भन्नइ—

अणुवयमहव्वएहि य बालतवाकामनिज्जराए य । देवाउयं निबन्धइ सम्मदिट्ठी उ जो जीवो ॥२३॥

व्याख्या—'**अणुवयमहव्वएहि य**' त्ति अणुव्वयगहणेणं पंचणुव्वयधरो, सत्तसिखाणिरओ सावगो । महव्वयगहणेण छज्जीवनिकायसंजमरओ, तवणियमबम्भचारी, सरागसंजओ । '**बालतव**' त्ति अगहियजीवाजीवा, अणुवलद्धसब्भावा, अन्नाणकयसंजमा, मिच्छदिट्ठिणो गहिया । '**अकामणिज्जराए य**' त्ति अकामतण्हाए, अकामच्छुहाए, अकामबंभचेरेणं, अकामसेयजल्लपरियावणयाए, चारगणिरोहबन्धणाईया, दीहकालरोगिणो य, असंकिलिट्ठा, उदगराइसरिसरोसा, तरुवरसिखरणिवाइणो, अणसणजलजलणपवेसिणो य गहिया '**देवाउगं णिबन्धन्ति**' एए सव्वे देवाउगं कम्मं बन्धन्ति । '**सम्मदिट्ठी उ जो जीवो**' त्ति तिरियमणुया अविराहियसम्मदंसणा अविरयावि देवाउगं णिबन्धंति ॥२३॥

॥ ७३ ॥

इयाणिं णामस्स पच्चया भन्नन्ति—

मणवयणकायवंको माइल्लो गारवेहि पडिबद्धो । असुहं बन्धइ कम्मं तप्पडिवक्खेहि सुहनामं ॥२४॥

व्याख्या–'मण' त्ति मनोवाक्काएहिं वंको, माई, तिहिं गारवेहिं पडिबद्धो, तं जहा–"वंका [७५]वंकसमायारा, [७६]माइल्ला [७७]नियडिकुडिला, कूडतुलकूडमाणा, [७८]साइ[1]जोगिणो दव्वाणं ॥१॥" अवन्नाणं च वन्नकरणेणं, वन्नवन्ताणं अवन्नकरणेणं, अगंधाणं गंधकरणेण, परवंचणसीलयाए, सुवन्नमणिरजतादीणं पगडविउव्वणाए, ववहारकरणाईसु विसंवायणसीलयाए, परेसिं अंगोवंगविणासणाए, परदेहविरूवकरणेणं, परासूययाए, पाणवहाईहिं य असुभं णामं बन्धइ । **तप्पडिवक्खेहिं सुहणामं**' ति तव्विवरीएहिं गुणेहिं जुत्तो उज्जुओ अविसंवायणसीलो य सुह णामं बन्धइ ॥२४॥

इयाणिं गोयस्स पच्चया भन्नन्ति—

(७५) '*वंको*' इत्यादि । वक्रो मनसा कौटिल्यवान् वक्रसमाचारः कायेन । शठः कार्याशया मधुरवाक् ।

(७६) '*माइल्ल*' त्ति । मायिनः सामान्येन ।

(७७) '*नियडिकुडिल*' त्ति । नितरामतिशयेन परस्य वञ्चनार्थमादरादे कृतिस्तया कुटिला निःकृतिकुटिलाः ।

(७८) '*साइजोगिणो दव्वाणं*' ति । अतिशायिना वर्णाद्यतिशयवता निरतिशयस्य योग अतियोग., सहातियोगेन वर्तत इति सातियोगिन. समासाद् इन् । द्रव्याणां कुसुम्भादीनां तत्प्रतिरूपव्यवहारकारिण इत्यर्थ. । उक्त च—.

1 'माइजोगिणो' इति जे. ।

अरहन्ताइसु भत्ती सुत्तरुई पयणुमाण-गुणपेही । बन्धइ उच्चागोयं विवरीए बन्धए इयरं ॥२५॥

व्याख्या–'**अरहन्ताइसु**' त्ति अरहंतभत्तीए, सिद्धभत्तीए, चेइयभत्तीए, गुरुमहत्तराणं भत्तीए, पवयणभत्तीए य जुत्तो, सुत्तरुई, सव्वन्नुभासियं सिद्धंतं पढइ पढावेइ य, चिन्तेइ य, वक्खाणेइ त्ति । अहवा सुत्ते वुत्तमत्थं जहा तहा सद्दहइ। '**पयणुमाणो**' त्ति जाईए कुलेण वा रूवेण वा, [1]बलसुयलाभआणाइस्सरियत्तणेण वा जुत्तो वि ण मज्जई [७९]ण परं णिन्दइ, ण परं खिसइ, ण परं हीलेइ, ण परपरिवायसीलो य '**गुणपेहि**' त्ति सव्वेसिं गुणमेव पेक्खइ, किमहं, अन्ने बहवे गुणाहियासन्तीति ण माणगव्विओ हवइ, गुणाहिकेसु णीयावत्ती, कुसलो '**बन्धइ उच्चागोयं**' ति एव गुणसंपज्जुत्तो उच्चागोयं कम्मं बन्धइ । विवरीए बन्धइ णीयं ति, [2]अरहन्ताइ अभत्तो एवमाइ भणियविवरीएहिं गुणेहि जुत्तो णीयागोयं बन्धइ ॥२५॥

इयाणिमन्तराइयस्स भन्नइ—

पाणवहाईसु रओ जिणपूआमोक्खमग्गविग्घकरो । अज्जेइ अन्तरा(इ)यं न लहइ जेणिच्छियं लाभं॥२६॥

सो होइ साइजोगो, दव्वं तं छुहिय अन्नदव्वेसु । दोसगुणावेयणेसु य, अत्थविसंवायणं कुणइ ॥ [ ]

'दोसगुणावेयणेसु' त्ति वचनेषु पुनर्यथारूचिर्दोषेष्वपि गुणान् गुणेष्वपि दोषान् क्षिप्त्वाअर्थविसवादन करोतीति ।

(७९) 'न पर' मित्यादि । निन्दा परोक्षे परदोषाविष्करणं, तत्समक्ष तु खिसा, जात्यादिमर्मोद्घट्टनं हीला।

---

1 'बलसुयआणाइस्सरियतवे वा' इति मु,। 2 'अरहन्ताइसु भत्तो' इति मु. ।

व्याख्या–'**पाणवहाईसु रओ**'त्ति पाणाइवाएणं जाव महारम्भपरिग्गहेण जुत्तो, '**जिणपूयामोक्खमग्गविग्घकरो**'त्ति जिणपूयाए मोक्खमग्गट्ठियाणं च विग्घकरो। अहवा साहूणं * भत्तपाणउवगरणआवसहओसहभेसजं वा दिज्जमाणं पडिसेहेइ, सव्वसत्ताणवि दाणलाभभोगपरिभोगविग्घं करेइ, परस्स विरियमवहरइ, परं [1]बलाबन्धणणिरोहाईहिं णिच्चेट्ठं करेइ, कण्णणासजीहछेयणाईहि इन्द्रियबलणिग्घायकरणेहि पाणवहाईहिं य '**अज्जेइ अन्तरा(इ)यं ण लहइ जेणिच्छियंलाभं**' ति दाणलाभभोगपरिभोगविग्घजणयं बलविरियणिग्घायकरणं च अन्तराइयं कम्मं बन्धइ, जेण इच्छियं लाहं न लभइ ॥२६॥

सामन्नविसेसपच्चया भणिया। इयाणिं जेसु ठाणेसु बंधइ त्ति एवं भन्नइ–

[2]**छसु ठाणगेसु सत्तट्ठविहं बन्धन्ति तिसु य सत्तविहं। छव्विहमेगो तिन्नेगबन्धगाऽबन्धगो एगो** ॥२७॥

व्याख्या–**छसु ठाणगेसु सत्तट्ठविहं बन्धन्ति**' त्ति अट्ठकम्माणि णाणावरणाईणि, छसु ठाणकेसु सत्तविहं अट्ठविहं वा बन्धन्ति, मिच्छादिट्ठी सासणअसंजयसम्मदिट्ठी संजयासंजयपमत्तसंजयअपमत्तसंजया य एएसु छसु ठाणेसु वट्टमाणा आउगबन्धकालं मोत्तूणं सेसं सव्वकालं सत्तविहं बन्धन्ति, आउगबन्धकाले ते चेव अट्ठविहं बन्धंति. सव्वे आउगं बन्धन्ति त्तिकाउं। '**तिसु य सत्तविहं**' ति सम्मामिच्छदिट्ठी, अपुव्वकरणो, अणियट्टी य, आउगवज्जाओ सत्त कम्म-

* 'भत्तपाणउवगरणओसहभेसजं' इति मु.। 1 'गलाबंधणणिरोहणाईहिं' इति मु.। 2 मु. प्रतौ 'छसुठाणगेसु' इति गाथा पूर्वं 'बंधट्ठाणा चउरो तिन्निय उदयस्स होन्ति ठाणाणि। पंच य उदीरणाए संजोग अउ परं वोच्छं'' इत्येव रुपा प्रक्षिप्तगाथा दृश्यते, सा च जे. प्रतौ नास्ति।

पगडीओ बन्धन्ति । [८०]सम्मामिच्छद्दिट्ठी तेण भावेण ण मरइ त्ति आऊगं ण बन्धन्ति, अपुव्वकरणो, अणियट्टीय अच्चन्तविसुद्ध त्ति काउं । '**छव्विहमेगो**' त्ति एगो सुहुमरागो आउगमोहवज्जाओ छ कम्मपगडीओ बन्धइ, बायरकसायभावातो मोहणीयं न बन्धइ त्ति । [1]आउगस्स वुत्तं । '**तिन्नेगबंधगा**' ति तिन्नि उवसन्तखीणसजोगिकेवली य एगविहं बन्धन्ति [2]वेयणियं, सेसाणं कसाओदयाभावात् बन्धो णत्थि, सजोगिणो त्ति काउं वेयणीयस्स बन्धो भवइ । '**अबन्धगो एगो**' त्ति अजोगिकेवलिस्स जोगाभावाओ बन्धो णत्थि ॥२७॥

इदाणीं उदओ वुच्चइ—

सत्तट्ठविहछ[विह]बन्धगावि वेएन्ति अट्ठगं नियमा । एगविहबन्धगा पुण चत्तारि व सत्त वेएन्ति ॥२८॥

व्याख्या–'**सत्तट्ठविहछ[विह]बन्धगावि वेयन्ति अट्ठगं णियम**'त्ति सत्तविहबन्धगा अट्ठविहबन्धगा छव्विहबन्धका य सव्वे अट्ठविहंपि कम्मं वेएन्ति, कम्हा ? सव्वेवि मोहस्स उदए वट्टन्तित्ति काउं । **एगविहबन्धगा पुण चत्तारि व सत्त वेएन्ति**' त्ति एकविहबन्धका तिन्नि, तेसु उवसन्तखीणमोहा य सत्त वेएन्ति त्ति, कम्हा ? मोहस्स उदयाभावाओ,

(८०) 'सम्मामिच्छे' त्यादि । अयमभिप्रायो यो यदध्यवसायः सन्नायुर्बध्नाति स तदध्यवसाय एव कालं करोति, मुक्त्वैकमुपशमश्रेणिप्रतिपन्नमिति ।

1 'आउगस्स वुत्त' इति जे. प्रतौ नास्ति । 2 'बन्धइ' इति मु. ।

॥ ७७ ॥

तब्भावपरिणामोत्ति काउं। सजोगिकेवली चत्तारि वेएइ, कम्हा ? घाइकम्मक्खयाओ केवली जाओ त्ति काउं। वा शब्दात् अबन्धकावि य चत्तारि वेएन्ति ॥२८॥

इदाणीं उदीरण त्ति—

मिच्छद्दिट्ठिप्पभिई अट्ठ उदीरन्ति जा पमत्तो त्ति। अद्धावलिया सेसे तहेव सत्तेवुदीरन्ति ॥२९॥

व्याख्या-'**मिच्छद्दिट्ठिप्पभइ अट्ठ उदीरन्ति जा पमत्तो**' त्ति मिच्छाइ जाव पमत्तसंजओ सव्वेवि अट्ठविहं उदीरन्ति, कम्हा ? तप्पाओगज्झवसाणसहियं त्ति काउं। '**अद्धावलिया सेसे तहेव सत्तेवुदीरन्ति**' त्ति अप्पप्पणो आउगद्धाए आवलिगा सेसे सत्त उदीरेन्ति, कम्हा ? आउगं आवलियागतं ण उदीरेन्ति त्ति काउं। एत्थ सम्मामिच्छद्दिट्ठिस्स आउगस्स आवलियपवेसाभावाओ अट्ठविहा चेव उदीरणा, आउगस्स अन्तोमुहुत्तसेसेसम्मामिच्छत्तं छड्डेइ त्ति ॥२९॥

वेयणियाऊवज्जे छक्कम्म उदीरयन्ति चत्तारि। अद्धावलिया सेसे सुहुमो उदीरेइ पञ्चेव ॥३०॥

व्याख्या-'**वेयणियाऊवज्जे**' त्ति वेयणीयं आउगं च मोत्तूणं सेसाणि छक्कम्माणि ताणि चत्तारि [1]जणा उदीरन्ति, अप्पमत्त-अपुव्वकरण-अणियट्टि-सुहुमरागा य, विसुद्धत्वात् वेयणीआउगाणं उदीरणा णत्थि त्ति, तप्पाओगज्झवसाणाभावात्। '**अद्धावलियासेसे सुहुमो उदीरेइ पञ्चेव**' त्ति सुहुमसंपराइगद्धाए आवलियासेसे तहेव मोहवज्जाणि कम्माणि पञ्च उदीरेन्ति, कम्हा ? मोहणिज्जं आवलिकापविट्ठं ण उदीरेति त्ति काउं ॥३०॥

---

1 "गुणा" इति मु.।

वेयणियाउयमोहे वज्ज उदीरेन्ति दोन्नि पंचेव । अद्धावलियासेसे नामं गोयं च अकसाई ॥३१॥

व्याख्या–'वेयणियाउग' त्ति वेयणियाउगमोहवज्जाणि कम्माणि पञ्च, 'दोण्णि' त्ति उवसन्तखीणकसाया उदीरेन्ति, मोहस्स उदयो णत्थि त्तिकाउं 'अद्धावलियासेसे णाम गोयं च अकसाई' त्ति खीणकसायद्धाए आवलिकासेसे णामं गोयं च खीणकसाओ उदीरेइ । कम्हा ? णाणदंसणावरणन्तराइगाणि आवलिगापविट्ठाणि ण उदीरेन्ति त्ति काउं ॥३१॥

उइरेइ नामगोए छक्कम्मविवज्जिया सजोगी य । वट्टन्तो य अजोगी न किञ्चि कम्मं उदीरेइ ॥३२॥

व्याख्या–'उदीरेइ णामगोए छक्कम्मविवज्जिया सजोगि' त्ति सजोगीकेवली णामगोत्ताणि चेव उदीरेइ, आउगवेयणिज्जाणं उदीरणाभावाओ, सेसाणं चउण्हं उदयाभावात् । 'वट्टन्तो य अजोगी ण किंचि कम्मं उदीरेइ' त्ति चउण्हं अघाइकम्माणं उदए वट्टमाणोवि ण किञ्चि कम्मं उदीरेइ, जोगाभावाओ ॥३२॥

इयाणिं तिण्हं पि संजोगो त्ति—

अणुईरन्त अजोगी अणुहवइ चउव्विहं गुणविसालो । इरियावहं न बन्धइ आसन्नपुरक्खडो सन्तो॥३३॥

व्याख्या–'अणुदीरन्त' त्ति उदीरणाविरहओ अजोगिकेवली चउव्विहं वेएइ अघाइणि, 'इरियावहं ण बंधइ' जोगाभावाओ जोगपच्चइगं ण बंधइ; कम्हा ? 'आसन्नपुरक्खडो सन्तो' सन्तो-मोक्खो, सो आसन्नोत्ति काउं ॥३३॥

इरियावहमाउत्ता चत्तारि व सत्त चेव वेदेन्ति । उईरन्ति दुन्नि पञ्च य संसारगयम्मि भयणिज्जा ॥३४॥

॥ ७९ ॥

व्याख्या—'इरियावहमाउत्त' त्ति जोगपच्चइगबन्धसहिया तिन्निवि 'चत्तारि व सत्त चेव वेदेन्ति' त्ति उवसंतखीणमोहा य सत्त वेएन्ति; सजोगिकेवलि चत्तारि वेएइ । वा सद्दो भेयदरिसणत्थं 'उदीरेन्ति दोन्नि पञ्चेव' त्ति ते चेव जोगपच्चयबन्धसहिया दो उदीरेन्ति सजोगिकेवली, खीणकसायो जाव आवलिकावसेसे ताव पञ्च उदीरेन्ति, आवलिकासेसे दो उदीरेइ । उवसन्तकसाओ सव्वद्धासु पंचेव उदीरेइ । 'संसारगयम्मि भयणिज्ज' त्ति उवसन्तकसाओ संसारम्मि भयणिज्जो त्ति लद्धं बोहिलाभं भयणिज्जो विणासेइ वि ण विणासेइ वि ।।३४।।

छप्पञ्च उदीरन्तो बन्धइ सो छव्विहं तणुकसाओ ।अट्ठविहमणुहवन्तो सुक्कज्झाणा डहइ कम्मं ॥ ३५ ॥

व्याख्या—'छप्पञ्च' त्ति 'तणुकसाओ' सुहुमरागो, सो छव्विहं पञ्चविहं वा उदीरेइ,आवलिकावसेसे पञ्चविहं उदीरेति, सेसकाले छव्विहं । 'अट्ठविहमणुभवन्तो' सव्वद्धासु अट्ठविहं चेव वेएइ 'सुक्कज्झाणा डहति कम्मं' त्ति मोहणिज्जकम्मं 'डहइ' विणासेइ । सुक्कज्झाणग्गहणं किं णिमित्तं इति चेत् ? भन्नई, संढीए धम्मसुक्कज्झाणाइं सविगप्पाइं अविरुद्धाइं ति तद्बोधनार्थं तु सुक्कज्झाणग्गहणं ॥ ३५ ॥

अट्ठविहं वेयन्ता छविहमुईरन्ति सत्त बन्धन्ति । अनियट्टी य नियट्टी अप्पमत्तजई य ते तिन्नि ॥ ३६ ॥

व्याख्या—'अट्ठविहं वेयन्ता' त्ति अट्ठविहंपि कम्मं वेएन्ति, आउगवेयणियवज्जाणि छकम्माइं उदीरन्ति, आउगवज्जाणि सत्त बन्धन्ति, अणियट्टी य णियट्टी अप्पमत्तजई य ते तिन्निअप्पमत्तो अट्ठविहंपि बन्धइ तं च किं ण भणियं इति

चेत् ? भन्नइ, अप्पमत्तो आउगबन्धाढवणं ण करेइ, पमत्तेण आढत्तं [1]अपमत्तो बन्धइ त्ति तस्सूयणत्थं न भणियं ॥३६॥

अवसेसट्ठविहकरा वेयन्ति उदीरगावि अट्ठण्हं । सत्तविहगा वि वेइन्ति अट्ठगमुईरणे भज्जा ॥ ३७ ॥

व्याख्या—'**अवसेस**' त्ति भणियसेसा जे अट्ठविहबन्धका मिच्छाइ जाव पमत्तसंजओ ते सव्वे अट्ठविह वेएन्ति, अट्ठविहं चेव उदीरेन्ति । कम्हा ? आउगबन्धकाले आवलिकासेसं आउगं ण भवइ त्ति काउं । '**सत्तविहगावि वेइन्ति अट्ठगं**' त्ति ते चेव मिच्छादिट्ठिणो पमत्तन्ता सत्तविहबन्धकाले ते सव्वे अट्ठविहं णियमा वेएन्ति । '**उइरणे भज्ज**' त्ति उदीरणं पडुच्च सत्तविहं वा उदीरेन्ति, अट्ठविहं वा जाव अप्पप्पणो आउगस्स आवलिकावसेसे ताव अट्ठविहं उदीरन्ति । आवलिकापविट्ठे आउगस्स सत्तविहं, आउगस्स उदीरणाभावात् । एत्थ सम्मामिच्छद्दिट्ठी सत्तविहबन्धगो एव णियमा अट्ठविहं वेएति उईरेइ य, कम्हा ? तेण भावेण न मरइ त्ति काउं, भयणिज्जसद्देण गहिओ । संजोगो भणिओ ॥ ३७ ॥

इयाणिं बन्धविहाणे त्ति दारं पत्तं, सो चउव्विहो, पगइबन्धो, ठितिबन्धो, अणुभागबन्धो, पएसबन्धो इति । तत्थ पगइबंधो पुव्वं भन्नइ, तं णिमित्तं मूलुत्तरपगइसमुक्कित्तणा किज्जति तंजहा—

णाणस्स दंसणस्स य आवरणं वेयणीय मोहणियं । आउय नामं गोयं तहंतरायं च पयडीओ ॥ ३८ ॥

पञ्च नव दोन्नि अट्ठावीसा चउरो तहेव बायाला । दोन्नि य पञ्च य भणिया पयडीओ उत्तरा चेव ॥३९॥

---

1 'आउग वधइ' इति मु. ।

॥ ८१ ॥

व्याख्या—'**नाणस्स**' त्ति '**पञ्च**' त्ति एयाओ दोवि गाहाओ जुगवं वक्खाणिज्जन्ति। पढमियाए गाहाए मूलपगडणं णिद्देसो। बिइयाए तेसिं चेव उत्तरपगइणिरूवणं भन्नइ। तत्थ पगई दुविहा, मूलपगई उत्तरपगई य। तत्थ मूलपगईअट्ठविहा, णाणावरणिज्जं, दंसणावरिज्जं, वेयणिज्जं, मोहणिज्जं, आउगं, णामं, गोयं, अन्तरायगमिति। जीवो अणेगपज्जायसमुदओ दव्वं, तस्स णाणादंसणसुहदुक्खसद्दहणचारित्तजीवियं देवभवादिउच्चणीयदाणलद्धियादओ अणेगविहा धम्मा पज्जाया। तत्थ अत्थावबोहो णाणं अभिगमो तं आवरेइ त्ति णाणावरणीयं भास्कराभ्राद्यावरणवत्, तस्सावरणभेया पञ्च, तंजहा—आभिणिबोहियणाणावरणिज्जं सुयओहिमणपज्जवकेवलणाणावरणीयमिति। तत्थाभिणिबोहियं अभि त्ति आभिमुख्ये, निः इति णियमे, बोहो—अवगमो, आभिमुख्येन णियतविसयावबोधो अभिणिबोधो, किं तं अभिमुख्यं ? [८१]जुत्तसन्निकरिसविसयावत्थियाणं रूवाईणमत्थाणं गहणमाभिमुख्यं, चक्खुरादिइंदियं पइ णियतविसयाणं ग्रहणमिति णिययं, अवबोहो अवगमो अभिणिबोहो एगट्ठं, अभिणिबोह एव आभिणिबोहियं, पञ्चिन्दियमणोछट्ठाणं उग्गहादओ चत्तारि चत्तारि अत्था, वंजणावग्गहो चउण्हं इंदियाणं चक्खिदियमणोवज्जाणं, तेहिं य सुयाणुसारेण घडपडसंखाइविन्नाणं। तमाभिणिबोहियं अट्ठावीसइविहं बत्तीसइविहं छत्तीसतिसयविहं वा।

---

(८१) जुत्ते' त्यादि। युक्ताश्च ते ग्रहणयोग्या', सन्निकर्षविषयावस्थिताश्च समुचितदेशस्थायिनोऽथवा युक्ताश्चेन्द्रियेण तद्देशस्थितया सन्निकर्षविषयावस्थिताश्चेति द्वन्द्व, युक्तसन्निकर्षविषयावस्थितास्तेषां। तत्र हि चक्षुर्विरहितमिन्द्रियं(य)चतुष्टयमस्पष्टत्वात् स्पृष्टं स्पृष्टबद्ध च विषयमभिगृह्णाति। चक्षुस्तु स्पष्टत्वाद्धस्तूत्कृष्टतो योजनलक्षस्थितं जघन्यतस्त्वङ्गुलसंख्येयभागस्थायि पश्यतीति।

कहं ? उग्गहाईभेएहिं २८, उप्पादिया वेणइया कम्मिया पारिणामियबुद्धिपक्खेवे ३२, [८२]बहु-बहुविध-क्षिप्र-निसृत-संदिग्ध ध्रुवैः सेतरैर्गुणनात् ३३६, तं आवरेइ त्ति आभिणिबोहियणाणावरणं, चक्खिन्दियस्सेव पडलाइं । सुयणाणं हि आभिणिबोहियणाणपुव्वगं कहं ? आभिणिबोहियणाणेण तमत्थं चक्खुराइकरणसंणिज्झेणं अवगम्म तज्जाइयदेसकालविलक्खणमणेगमट्ठमुवलब्भइ त्ति सुयं । श्रोत्रविषयं श्रुतं–

"इंदियमणोणिमित्त ज विन्नाण सुयाणुसारेण । णियवत्थु त्ति समत्थं तं भावसुय मई सेस ॥ १ ॥"

इंदियमणोणिमित्तं सुयाणुसारेण अणेगभेयं जं विन्नाणमुप्पज्जइ तं सुयणाणं, अहवा संपयकालविसय मइणाणं तिकालविसयं सुयणाणं ति । 卐 धारणातिकालविसया इति चेत् ? तन्न, अणागए काले अणवबोहाओ इंदियमणोणिमित्तं सुयक्खराणुसारेण अणेग भेदं जं विन्नाणमुपज्जइ तं सुयनाणं, त णाणं आवरेइ त्ति सुयणाणावरणीयं । तं वीसतिविहं, तंजहा–

---

(८२) 'बहुबहुविधे' त्यादि । बहुविधादिलक्षणमित्थ ज्ञेयम्–

णाणासद्दसमूहं, बहुं पिहं मुणइ भिण्णजाईयं । बहुविहमणेगभेयं, एक्केक्कं निद्धमहुराइ ॥१॥

खिप्पमचिरेण तं चिय, सरूवओ जं अणिस्सियमलिङ्गं । निच्छियमसंसयं जं धुवमच्चन्तं न उ कयाइ ॥२॥

एत्तो चिय पडिवक्खं, साहेज्जा निस्सिए विसेसो वा । परधम्मेहि विमिस्सं, निस्सियमविणिस्सियं इयरं ॥३॥

[विशेषावश्यकभाष्ये गाथा ३०८, ३०९,३१०]

卐 'धारणे तिकालविषय सुयणाण ति' इति पाठो मुद्रितप्रतावधिकः प्रतिभाति ।

॥ ८३ ॥

८३"पज्जयअक्खरपयसंघाया पडिवत्ति तह य अणुओगो । पाहुडपाहुड पाहुड वत्थू पुव्वा य ससमासा ॥१॥

(८३) 'पज्जय अक्खरे' त्यादिगाथा । पर्यायश्चाक्षरञ्च पदञ्च संघातश्च पर्यायाक्षरपदसंघाता । 'पडिवत्ति' त्ति प्रतिपत्तिः विभक्तिलोपश्च प्राकृतत्वात् । तथाऽनुयोगश्चानुयोगद्वारम् । प्राभृतप्राभृतञ्च प्राभृतञ्च-[1]वस्तु च पूर्वं च, प्राभृतप्राभृत-प्राभृत-वस्तु-पूर्वाणि । लिङ्गव्यत्ययश्च प्राकृतत्वात् । च कारः समुच्चये भिन्नक्रमश्च, ततः ससमासानि च पर्यायादीनि । एवञ्च पर्याय पर्याय-समासो, अक्षर-मक्षरसमासः, पद पदसमासः इत्येव योजनया विंशतिधा श्रुतज्ञानं भवतीति गाथाक्षरार्थः । भावार्थः पुनरयम्—लब्ध्यपर्याप्तकसूक्ष्मनिगोदजीवस्य यज्जघन्य ज्ञानमत्र चैतन्यद्रव्यरूपं तदतिबहलकर्ममलपटलविलुप्तसकलकेवलोपयोगस्वरूपस्यापि सर्वस्य जन्तोः 'सुट्ठुवि मेहसमुदये होइ पहा चंदसूराणमिति' दृष्टान्तान्नित्यमनावरणमेव, तदावरणे हि स्वल[क्षण]क्षयात्तस्य अजीवत्वमपि स्यात् । ततश्चैतस्मिन्निखिलजीवानन्त्येन विभक्ते यो भागस्तद्भागाधिकं यदपरं विज्ञानमुत्तिष्ठते तत्पर्यायः । ततोऽप्यनन्तरमनन्तभागवृद्धिभाक्पर्यायसमासाभिधान स्थानमेवमेतद्, तुल्ययोगक्षेममत्यद् । अथ एवमेतानि षड्स्थानकक्रमेणासंख्यलोकप्रमाणानि पर्यायसमासस्थानानि भवन्ति । अत्र चानन्तभागादिका वृद्धि पर्यायः । ततश्च यत्र स्थाने एकैवासौ प्रथमानन्तभागलक्षणा तत्पर्याय, येषु च भागद्वयादिकासौ तानि तृतीयादीनि स्थानानि पर्यायसमासः । यदुक्तं—"णाणाविभागपलिच्छेयपक्खेवो पज्जओ नाम, तस्स समासो जेसु णाणठाणेसु अत्थि तेसिं णाणठाणाणं 'पज्जयसमासो' त्ति सन्ना, जत्थ पुणो एक्को चेव पक्खेवो तस्स णाणस्स 'पज्जओ' सन्ना" ।

पुनश्चरिमपर्यायसमासज्ञानस्थानादनन्तरमनन्तभागवृद्धमक्षरज्ञानस्थानमुत्पद्यते । एतच्चानन्तलब्ध्यपर्याप्तकसूक्ष्मनिगोदलब्ध्यक्षरप्रमाणं । तत्रसामान्यतस्त्रिविधमक्षरं, लब्धि-निर्वृत्ति-संस्थानाक्षरभेदात् । तत्र सूक्ष्मनिगोदसंवेदनप्रभृतियावदुत्कृष्ट

1. आदर्शे 'प्राभृतञ्च' इति द्विरुल्लिखितम् ।

पज्जायावरणीयं पज्जायसमासावरणीयं, एवं नेयव्वं, अहवा—

जावन्ति अक्खराइं अक्खरसंजोयजत्तिया लोए। एवइया पगडीओ सुयणाणे होन्ति णायव्वा ॥ १ ॥

श्रुतकेवलो तावद्ये श्रुतावरणक्षयोपशमविशेषास्ते लब्ध्यक्षरम्। जीवाजीवप्रयोगतो ध्वनिपरिणामापन्नानि शब्दवर्गणाद्रव्याणि निर्वृ त्यक्षर, व्यक्तमव्यक्तञ्चेति द्विविधमेतत् व्यक्तमकारादिव्यक्तिमत्। इतरदव्यक्तं। भावाक्षराऽभेदबुद्ध्या व्यवस्थापितो म(ब) हिराकारविशेष. सस्थानाक्षरमनेकधा लिपिभेदेन। अत्र तु लब्ध्यक्षरमेवाधिक्रियते न शेषे जडत्वात्। एतच्चेह चतु षष्टिधा-पञ्चविंशति-वर्गाक्षराणि, चत्वार्यन्तस्थाक्षराणि, चत्वायु ष्माक्षराणि, एवं त्रयस्त्रिंशद् व्यञ्जनानि, अ-इ-उ-ऋ-लृकारानां संध्यक्षराणाञ्च ह्रस्व-दीर्घ-प्लुतभेदेन भिन्नत्वात्, सप्तविंशतिः स्वराः। उक्तं च—

एकमात्रो भवेद् ह्रस्वो, द्विमात्रो दीर्घ उच्यते। त्रिमात्रस्तु प्लुतो ज्ञेयो, व्यञ्जनश्चार्धमात्रकम् ॥

चत्वारश्च योगवाहा इति चतुषष्टिरक्षराणि। उक्तं च—

तेत्तीसवंजणाइं, सत्तावीसं च हुंति सव्वसरा। चत्तारि(अ) जोगवहा, एवं चउसट्ठि वण्णाओ ॥

एतेभ्य उत्पद्यमान ज्ञानमक्षरश्रुतं, द्विप्र[भृ] त्यक्षरसंयोगजमक्षरसमा[स]श्रुतं।संख्याताक्षरं पदम्। त्रिविधं चैतदर्थप्रमाणमध्यमपदभेदात्। तत्र 'भ'वदर्थोपलब्धिहेतुपदमेकाक्षरादि, प्रमाणपदमष्टाक्षरं,मध्यपदश्चाचारादिश्रुतसमस्था[स्ता] धिकृत बहुश्रुतानुमत्या ज्ञातव्यप्रमाणं। तदुक्तम्—

तिविहं पयमुद्दिट्ठं, [पमाण]पयमत्थमज्झिमपयं च। मज्झिमपएण वुत्ता, पुव्वंगाणं पयविभागा ॥

मध्यमपदमेवेह प्रस्तुतं, इदमेव चैकाक्षरादिवृद्धिक्रमेण प्राप्तापरापरपदसमुदायं पदसमासः। एवं पूर्वपूर्वस्थानसमुदयसमाधानि सघात-प्रतिपत्ति-अनुयोगद्वार-प्राभृतप्राभृत-प्राभृत-वस्तु-पूर्वाणि ससमासानि सप्तश्रुतस्थानान्युत्तरोत्तरक्रमेण ज्ञातव्यानि।

[84]अवधिर्मर्यादायां तेण नाणं ओहिनाणं तस्स संखा वावारो पोग्गलदव्वेसु, तस्संणिज्झेण [85]दव्वखेत्तकालभावाणमुवलद्धि, अहवा [86]अहोगयपभूयपोग्गलदव्वजाणणासितमज्जायवावारो[1] वा अवही, इंदियमणोणिरवेक्खं अणावरियजीवप्पएसखओ-

परं सम्यग्दर्शनादौ जीवगुणप्ररूपणीये गत्यादिकाया एकस्या मार्गणाया नरकगत्यादिरेकोऽवयवसंघातः सैव परिपूर्णप्रतिपत्तिः, सत्पदप्ररूपणीयादेरनुयोगद्वारस्य गत्यादीनां मार्गणाधिकाराणां पृथक् पृथक् प्रतिपत्तिसञ्ज्ञत्वात् ।

उक्तं च-'अनुयोगदारस्स जे अहिगारा तत्थ एगस्स पडियत्ति सन्न' त्ति, सत्पदप्ररूपणाद्यनुयोगद्वारम्। प्राभृताधिकारः प्राभृतप्राभृतम् । वस्त्वधिकारः प्राभृतम्। पूर्वाधिकारो वस्तु । सर्वश्रुत(त्व)ात् पूर्वं क्रियमाणत्वेन पूर्वाण्युत्पादादीनीति । विंशतिधा [2]श्रुतज्ञानम् । तदावारकं कर्माऽपि तावद्भेदमेवेति ।

(८४) 'अवधि मर्यादाया' मित्यादि । अयमभिप्रायोऽवधिज्ञानमित्यत्रावधिशब्दो मर्यादायां विषयनियमलक्षणायां वर्तते, तामेवाविष्करोति । अवधिज्ञानव्यापारो गोचरग्रहणरूपः पुद्गलद्रव्यस्यपरमाण्वादेः सानिध्यं विषयतया सन्निहितता पुद्गलद्रव्यसानिध्यं, तेन क्षेत्रकाललक्षणयोर्भावयोरूपलब्धिर्नपुनस्तदनपेक्षत्वेन स्वप्रधानतया पुद्गलवत् । *

(८५) क्वचित् 'दव्वखेत्तकालभावाणमुवलद्धी' ति दृश्यते । तत्र पुद्गलद्रव्यसानिध्येनालम्बनीभूतमूर्त्तद्रव्याश्रयेण द्रव्याणां तेषामेव क्षेत्रकालयोस्तद्विशेषणतया वृत्तयोर्भावानां तद्वर्तिपर्यायाणामुपलब्धिरिति मर्यादा । अथवेति विकल्पोपक्षेपार्थः ।

(८६) अधोगतप्रभूतपुद्गलद्रव्याणां 'जाणणा' त्ति, ज्ञानं । सैव मर्यादा तया व्यापारः प्रवृत्तिरधोगतप्रभूतपुद्गलद्रव्यज्ञान

1 अहोगयपभूयदव्वजाणणपोग्गलमज्झाय वावारो' इति जे. प्रतौ । 2 'विंशति विंशतिधा' इति आदर्शे । * टिप्पनानुसारिचूर्णिपाठोऽयं प्रत्यान्तरे सम्भाव्यते, 'पोग्गलदव्वसन्निज्झेण खेत्तकालाणमुवलद्धि' इति ।

वसमणिमित्तं साक्षाज्ज्ञेयग्राहि अवधिज्ञानं, तं आवरेइ त्ति ओहिणाणावरणं, तस्स असंखेज्जलोगागासप्पएसमेत्ताओ पगडीओ, णाणभेयावि तत्तिया चेव । मणपज्जवणाणं ति ⁸⁷मणसो पज्जाया मणपज्जाया, कारणे कार्यव्यपदेशः, यथा सालयो भुज्यन्त इति तेसु णाणं मणपज्जवणाणं । तहेव सुद्धा जीवप्पएसा परिछिन्दति, ते पुग्गले णिमित्तं काउण तीयाणागयवट्टमाणे पलिओवमासंखेज्जइभागपच्छाकडपुरेक्खडे भावे जाणइ माणुसं खेतंतो वट्टमाणे, ण परओ । तं दुविहं, उज्जुमई, विउलमई य,

---

मर्यादाव्यापारः, स चावधिरिति । प्रायेण ह्यवधिज्ञानी स्वक्षेत्रादधःक्षेत्रस्य विषयवस्तु वैमानिकवद् बहुपश्यतीति, ततश्चावधिना ज्ञानमवधिज्ञानमिति विग्रहः । 'इन्द्रियमणोणिरवेक्ख' मित्यादि तु स्वरूपनिर्देशः ।

(८७) 'मणसो पज्जाया' इत्यादि । मनसो मनोनिमित्तद्रव्यस्य पर्याया बाह्यवस्त्वालोचनानुगुणाः प्रकाराः मन पर्याया । आह कथं मनोहेतुरपि द्रव्य मन इत्याह-कारणे कार्यव्यपदेश । यथा हि शालयो भुज्यन्ते, यथा शालिफलमप्योदनो भुज्यमान 'शालिष्ट एवाटतो' व्यपदिष्ट, शालयो भोजनमित्यर्थ । तथा मनोध्वनिरपि मनोहेतुषु द्रव्येष्विति । यतो मन.-पर्यायज्ञानी द्रव्यमन एव मनुते । यथोक्त--

दव्वमणो पज्जाए, जाणइ पासइ य तग्गएऽणंते । तेणावभासिए पुण, जाणइ बज्झेऽणुमाणेणं ॥

[विशेषावश्यभाष्ये, गाथा १८४]

अस्यार्थः-मन पर्यायज्ञानी द्रव्यमन पर्यायान् जानाति साक्षात्करोति पश्यति । पुन. सामान्यतो वाऽवगच्छति कानित्याह-तद्गताश्चिन्तनीयतया द्रव्यमन पर्यायप्रतिबद्धाननन्तान् वाह्यान् घटादीन् पर्यालोच्यानित्यर्थः । कथमसौ तान् पश्यतीत्याह-तेन द्रव्यमनसोऽवभासितांश्चिन्तितान् जानीते पश्यति । बाह्यान् पर्यालोच्यानुमानात् । इत्थं द्रव्यमन.परिणतेरन्यथाऽनुपपत्तेस्त-

॥ ८७ ॥

॥ ८८ ॥

उज्जुमई ते पोग्गले अवलम्बित्ता ⁸⁸रिजुरिव मालावद्धे अत्थे जाणइ, विउलमई एक्काओ चेव बहवो पज्जाया जाणइ, तं आवरेइ त्ति मणपज्जवणाणावरणीयं। तं दुविहं, उज्जुमइमणपज्जवणाणावरणीयं, विउलमइमणपज्जवणाणावरणीयं चेति। केवलणाणं ति केवलं सुद्धं जीवस्स णिस्सेसावरणक्खए, अहवा सव्वदव्वपज्जायसकलाववोधनेन वा केवलं सकलं अच्चंतखाइगं केवलणाणं तं आवरेइ त्ति केवलणाणावरणीयं, तं च सव्वघाइ सेसाणि चत्तारि वि देसघाईणि। सामन्नं णाणमिति—जहा मुट्ठी पंचंगुलीसु, रुक्खो वा खन्धसाहाईसु, मोदगो वा घयगुलसमिदादिसु। णाणावरणं सभेयं भणियं ॥

इयाणि दंसणावरणीयं दर्शनमाव्रियतेऽनेनेति दर्शनावरणीयं, अक्षिपटलवत्। दंसणावरणीयस्स णव पयडीओ, तंजहा—णिद्दा, णिद्दाणिद्दा, पयला, पयलापयला, थीणगिद्धी पंचमा, चक्खुदंसणावरणीयं अचक्खुदंसणावरणीयं, ओहिदंसणावरणीयं, केवलदंसणावरणीयमिति। तत्थ मूलिल्लाणि पंचआवरणाणि लद्धाणं दंसणलद्धीणं उवघाए वट्टन्ति, उवरिल्ला चत्तारिवि दंसणलद्धिमेव घायन्ति।

"सुहपडिबोहा णिद्दा णिद्दाणिद्दा य दुक्खपडिबोहा। पयला होइठियस्स वि पयलापयला य चकमओ ॥१॥
थिणगिद्धी उदयाओ महाबलो केसवद्धबलसरिसो। भवइ य उक्कोसेण दिणचिन्तियसाहगो पायं ॥२॥

ममीहशेन पर्यालोच्येन भाव्यमित्येवं लक्षणादिति।

(८८) रिजुरिवे' त्यव्युत्पन्न इव पुरुषो मालाबद्धान् सामान्यमात्राश्रितान् जानीत इति।

---

1 'रज्जुरिव' इति मु०।

चक्खुणा दंसणं चक्खुदंसणं, चक्खुरिंदिएण करणभूएण जीवो चक्खुदंसणावरणीयकम्मखओवसमावेक्खा चक्खुदंसणपरिणओ भवइ।

ज सासन्नग्गहण भावाण णेव कट्टु आगारं । अविसेसिऊण अत्थे दंसणमिइ वुच्चए समए ॥१॥"

चक्खिदियसामन्नत्थाववोहो चक्खुदंसणं । सेसिंदियमणो सामन्नपयत्थाववोहो अचक्खुदंसणं । ओहिणाणेण सामन्नपयत्थग्गहणं ओहिदंसणं । केवलणाणेण सामन्नपयत्थग्गहणं केवलदंसणं । चक्खिन्दियलद्धिघाइ चक्खिन्दियावरणं, जेण चउरिन्दियाइसु तं ण वट्टति । एवं सेसिन्दिओवघाइअचक्खुदंसणावरणीयं, [८९]मणोवि जेसिं न सम्भवति तेसिं तहेव, जेसिंचउरिन्दियाइणं णत्थितेसिंपि विज्जमाणिन्दियसंभ(सब्भा)वेण भासियव्वं ॥

(८९) 'मणोवी' त्यादि । मनोऽपि येषां लब्धसर्वेन्द्रियलब्धीनां न सम्भवति । एकान्ताभावपरिहारेण तथैव चक्षुरावरणवत्, अचक्षुरावरण भणितव्यमित्युत्तरेण सम्बन्ध. यथाहि–चक्षुर्लब्धिघाति चक्षुरावरणं, तदुदयाच्च जीवश्चतुरिन्द्रियेषु न वर्तते । तथा मनोलब्धिप्रतिबन्ध्यचक्षुरावरणं, तदुदयाच्चसकलेन्द्रियलब्धावपि न संज्ञिषु वर्तत इति * * । एकेन्द्रियादीनां तु सत्यपि चक्षुदर्शनावरणाद्युदये चक्षुदर्शनादिलब्धेरद्याप्यवसराभावान्न तेषु तथावरणोदयेन चक्षुदर्शनादिव्याघातभावना क्रियत इति। क्वचित्सम्भव इति दृश्यते, तच्च स्पष्टमेव । येषां चतुरिन्द्रियादीनां नास्त्यचक्षुरावरणमुदये संजातस्पर्शनादीन्द्रियक्षयोपशमत्वात्तेषामपि विद्यमानेन्द्रियसद्भावेन भणितव्यं, नास्त्यचक्षुरावरणमिति । नत्वविशेषेण कस्यापि कियदिन्द्रियावरणादिति।

*...... * आदर्शे तु वर्तत इत्यनन्तर 'तथा मनोलब्धिप्रतिबन्ध्यचक्षुरावरण, तदुदयाच्च जीवश्चतुरिन्द्रियेषु नवर्तते' इति पाठो दृश्यते, किन्तु तस्यात्राऽघटमानत्वान्न गृहीत. ।

|| ८९ ||

इयाणिं वेयणीयं ति [90] दव्वाइकम्मोदयमभिसमेच्च अणेगभेयभिन्नं सुहदुक्खं अप्पा वेएइ अणेण त्ति वेयणीयं। त दुविहं, सायवेयणीयं, आसायवेयणीयं च। सारीरमाणसं जस्सोदया सुहं वेएइ तं सातं, तव्विवरीयमसायं।

इयाणिं मोहणिज्ज त्ति [91] कारणकम्मोदयावेक्खो जीवो मुज्झइ अणेणेति मोहो। तं दुविहं, दंसणमोहणिज्जं, चरित्तमोहणिज्जं च। दंसणमोहणिज्जं बन्धन्तो एगविहं बन्धइ मिच्छत्तं चेव। सन्तकम्मं पडुच्च तिविहं तजहा—मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तं समत्तमिति। तिण्हंवि अत्थो पुव्वुत्तो। चरित्तमोहणिज्जं दुविहं, कसायवेयणिज्जं, णोकसायवेयणिज्ज च। कसायवेयणिज्जं सोलसविहं, तंजहा—अणन्ताणुबन्धिकोहमाणमायालोभा, एवं अपच्चक्खाणावरणा, एवं पच्चक्खाणावरणावि, कोहसंजलणा, माणसंजलणा, मायासंजलणा, लोभसंजलणा य। णोकसायवेयणिज्जं णवविहं, तजहा—पुरिसवेओ, इत्थिवेओ, णपुं-

---

(९०) 'दव्वाइ' त्यादि। द्रव्यमादिर्येषां ते द्रव्यादय', द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावाः तत्र द्रव्य शीतलजलानिलमलयजादि.। क्षेत्रं चन्दनवन-नाकलोकादि। काल एकान्तसुषा(सुषमा)दि। भावः क्षायोपशमिकादि कर्मण प्रकृतत्वाद्वेदनीयस्यैवोदयो विपाकः कर्मोदयस्ततो द्रव्यादिभ्यो द्रव्यादिकर्मोदयस्तमभिसमेत्य आश्रित्य, इदमुक्तं भवति- येन करणभूतेन द्रव्यादिनिमित्त तस्योदयमेव न तु बन्धसत्कमाद्यपेक्ष्यमाणोऽयमात्मा सुखदुखं वेदयति तद वेदनीयं कर्म। कृत्यल्युटोऽन्यत्रापीतिवचनात् करणेऽनीय. प्रत्ययः। अत्र यद्दुःखप्रतिकारहेतुद्रव्यसम्पादक, दुःखोत्पादककर्मद्रव्यश.क्तिविनाशकं च कर्म सद्वेद्यम। जीवस्य-सुखस्वभावस्य दुखोत्पादकं, दु.खप्रशमहेतुद्रव्यापसारकं च कर्माऽसद्वेद्यमिति।

(९१) 'कारणे' त्यादि। अनेनेति यत्कारणतया कर्म प्रतिपादित तस्यैव कारणकर्मण उदयमनुभवन न तु सत्वाद्यपेक्षते, कारणकर्मोदयापेक्ष इति।

सगवेओ, हासं, रई, अरई, सोगो, भयं, दुगंच्छा इति । जस्स कम्मस्स उदएण मोहं गच्छइ, यथा–[९२]मद्यपीतहृत्पूरकभक्षितपित्तोदयव्याकुलीकृतज्ञानक्रिया पुरुषवत् । दंसणतिगस्स अत्थो पुव्वुत्तो । मिच्छत्तोदिन्नपुरिसस्स मतिश्रुतावधयश्च विपर्ययं गच्छन्ति, यथा–विषमिश्रमन्नमौषधं वा । चारित्रं क्रियाप्रवृत्तिलक्षणं तस्य मोहं करोतीति चारित्रमोहनीयं । अणन्ताणि भवाणि अणुबन्धन्ति जीवस्येति अणन्ताणुबन्धिणो, तेसिं उदएण सम्मत्तंपि ण पडिवज्जइ, किं पुण चारित्तं । पडिवन्नोवि तेसिं उदएण दंसणं चारित्तं च चयइ, मिच्छत्तं चेव गच्छइ । अप्प पच्चक्खाणं देसविरई, तमप्पमवि पच्चक्खाणं आवरयंति, किं पुण सव्व ति, तेण अपच्चक्खाणावरणा वुच्चन्ति । तेसिं उदए वट्टमाणो देसविरइं पि ण पडिवज्जइ त्ति, पडिवन्नोवि परिवडइ । पच्चक्खाणं सव्वविरई, तमावरन्ति तेण पच्चक्खाणावरणा वुच्चन्ति, तेसिं उदयाओ सव्वविरतिं ण पडिवज्जइ, पडिवन्नो वि परिवडइ । मव्वपावविरयमवि जइं संज्वलयन्ति त्ति संजलणा वुच्चन्ति, संजलणाण उदयाओ अहक्खायचारित्तं ण लभति अकषायमित्यर्थः, सुविशुद्धं स्थानं वा न प्राप्नोति, प्राप्तो वा तदुदयात् मलीमसीभवति । णोकसाया कषायैः सह वर्त्तन्ते, नहि तेषां पृथ-

---

(९२) 'मद्यपीते' त्यादि । आहिताग्न्यादिपाठान्निष्ठान्तस्य परनिपातात् मद्यं पीत येन स मद्यपीत, हृत्पूरको भक्षितो येन स हृत्पूरकभक्षित, पित्तोदयेन व्याकुलीकृतः । मद्यपीतश्च हृत्पूरकभक्षितश्च पित्तोदयव्याकुलीकृतश्चे ति विशेषणसमुच्चयसमासात् मद्यपीतहृत्पूरकभक्षितपित्तोदयव्याकुलीकृतास्ते च ते पुरुषाश्च तेषा ज्ञान चावबोध, क्रिया गमनागमनादिका ज्ञानक्रिये ते इव । मद्यपीतहृत्पूरभक्षितपित्तोदयव्याकुलीकृतपुरुषज्ञानक्रियावत् । छान्दसत्वात् पुरुषशब्दस्य परनिपात. । अथवा मद्यपीतादिपुरुषाणामिवाऽसमञ्जसे ये ज्ञानक्रिये, तत्प्रधान पुरुषवदिति व्याख्येयम् ।

कसामर्थ्यमस्ति,जे कसायोदये दोषा तेऽपि तद्योगात् तद्दोषा एव, अणन्ताणुबन्धिसहचरिता ते अणन्ताणुबन्धिसहावं पडिवज्जं ति, तग्गुणा भवन्ति त्ति भणियं होइ। एवं सेसकसाएहिं वि सह वक्तव्यं पूर्ववत् , संसर्गजाः णोकसाया तद्देसवर्तिनः तम्हा एएवि चरित्तं मोहेत्ता जहा कसाया तहा चरित्तघाइणो भवन्ति। इत्थिम्मि अभिलासो पुरिसवेदोदएण जहा सिंभोदए अम्बाइसु। इत्थिवेओदएण पुरिसाभिलासो पित्तोदए मधुराभिलापवत् । नपुंसगवेओदयाओ इत्थिपुरिसदुगमहिलसति धातुद्वयोदीर्णे मज्जिकादिद्रव्याभिलाषिपुरुषवत् । हासोदयाओ सणिमित्तमणिमित्तं वा हसइ रंगगतनटवत्। सोगोदयाओ परिदेवनहननादिं करोति। सो मानसो विकारः। रतिः प्रीतिः, बाह्याभ्यन्तरेषु वस्तुषु विषयेन्द्रियादिषु च। एतेष्वेवाप्रीतिररतिः। भयं त्रासो उद्वेगः। दुगंच्छा शुभाशुभेषु द्रव्येषु जुगुप्सा विचिकित्सा व्यलीकता । एवमेते सोलस णव य पणवीसं चारित्तमोहणिज्जं। मिच्छत्तेण सह छव्वीसं। सम्मत्तमीसेहिं समं अट्ठावीसं । सम्मत्तसम्मामिच्छाइं मिच्छत्तपगइ त्ति काउं दंसणमोहणिज्जं भण्णइ ॥

इयाणिं आउगं ति [९३]आनीयन्ते शेषप्रकृतिसप्तकविकल्पाः [९४]तस्मिन्नुपभोगार्थे जीवस्य, कांस्यपात्र्याधारे [९५]शाल्यो-

(९३) 'आनीयन्त' इत्यादि। आनीयन्ते स्वोदयनिमित्तैर्द्रव्यादिभिरिति शेषः।

(९४) 'तस्मिन्नि' त्यायुषि सति।

(९५) 'शाल्योदनः' शालिकूरं, आदिशब्दात् सूपादिग्रहः। व्यञ्जनविकल्पाः शाकादिशालनकप्रकाराः, शाल्योदनादयश्च व्यञ्जनविकल्पाश्च शाल्योदनव्यञ्जनविकल्पाः। त एवानेकं भोज्यं भोजनंशाल्योदनादिव्यञ्जनविकल्पानेकभोज्यं, तदिवेति।

टिप्पनयु चूर्णिस बन्धशत ॥ ८८ ॥

दनादिव्यञ्जनविकल्पानेकभोज्यवत्, आनीयते वाऽनेनेति तद्भवान्तर्भाविप्रकृतिगुणसमुदयः तदेकत्वेन रज्ज्वववद्धेक्षुयष्टिभारकवत्, शरीरं वा तेनावबद्धमास्ते [९६]यावदायुष्कं णिगलवद्धपुरुषवत्, तेण आउगं भन्नइ त्ति । तं चउव्विहं, तंजहा–णिरयाउगं, तिरियमणुयदेवाउगमिति । णेरइगाणमाउगं णिरयाउगं एवं सर्वत्र ।

इयाणिं णामं ति णामयति परिणामयति णिरयाइभावेणेति णामं, [९७]अहवा णामेइ जं जीवप्रदेशान्तर्भाविपुद्गलद्रव्यविपाकसामर्थ्यात् संज्ञां लभते[९७]तन्नाम कर्म, पदेन वाक्येन वा समाहूयते तत्सम्बन्धात् । नीलशुक्लादिगुणोपेतद्रव्यसमादिग्ध [९८]चित्रपटादि-

(९६) यावदायुष्कमिति, आयुष्क जीवितपरिणाम' सर्वत्रनिरुक्तानुसरणादायुरिति भवति ।

(९७) 'अहवा नामे' त्यादि । नामेति कोऽर्थ ? उच्यते-यत्कर्म जीवप्रदेशानामात्मावयवानां तत्स्थितयाऽन्तर्मध्ये भवितुं शीलमस्य जीवप्रदेशान्तर्भावी । तच्च तत् स्वप्रदेशरूपं पुद्गलद्रव्य च तस्य विपाकसामर्थ्यं स्वकार्यकर्तृसामर्थ्यं तस्मात् संज्ञां नाम लभते । नामनिमित्तीभवतीत्यर्थ । तत्कर्म 'नाम' क (का) रणे कार्योपचारात् । यत पदेन मनुष्यादिना वाक्येन शोभन स्वरोऽस्येत्येवमादिना पदसमुदयजेन समाहूयते सशब्दायते, तत्सम्बन्धात् प्राप्तविपाकनामकर्मसम्बन्धात् । इदमुक्त भवति–नामकर्मोदयाज्जीवस्याने(क)धा द्रव्यगुणपरिणामाभिधायिनी व्यपदेशप्रवृत्तिर्भवति । कथमित्याह-नीलशुक्लादिगुणोपेतद्रव्यसमादिग्धचित्रपटादिद्रव्यव्यपदेशादिशब्दप्रवृत्तिवत् । नीलशुक्लादिगुणोपेतद्रव्येण गुलिकाशङ्खचूर्णादिना समादिग्धं कृतयथास्थानोपलेप नीलशुक्लादिगुणोपेतद्रव्यसमादिग्ध वस्त्विति गम्यते ।

(९८) 'चित्रपटादेः' द्रव्यस्य व्यपदेशश्चित्रपटोऽयमित्यादिरूप, चित्रपटादिद्रव्यव्यपदेश स आदिर्येषां ते चित्रपटादिव्यपदेशादयस्ते च ते शब्दाश्चेति । आदिशब्दात् तद्गतप्रतिनियतप्रतिबिम्बव्यपदेशग्रहो यथा सुरनाथः पाथोनाथोऽयमि-

॥ ६३ ॥

॥ १४ ॥

द्रव्यव्यपदेशादिशब्दप्रवृत्तिवत् । णामकम्मस्स [66]बायालीसं पिंडपगडीओ, तंजहा—गइणामं जाइणामं सरीरनामं सरीरसंघायनामं सरीरबंधणनामं सरीरसंठाणनामं, सरीरअंगोवंग-सरीरसंघयण-वन्नगंधरसफासआणुपुव्विअगुरुलहुगउवघायपरावायउस्सासआयावुज्जोअविहायगइतसथावरबायरसुहुमपज्जत्तगअपज्जत्तगपत्तेयसाहारणसरीरथिरअथिरसुभअसुभसुभगदुभगसुस्सरदुस्सरआएज्जअणाएज्जजसकित्तिअजसकित्तिणिम्माणतित्थगरणामं चेति । पिंडपगइ त्ति मूलभेओ । गम्मतीति गति । जति गम्मइ त्ति गई तो जीवेण सव्वे पज्जवा गम्मंते तम्हा सव्वपज्जवाणं गइप्पसंगो ? ण; विसेसियया ओ गइपज्जवेण अप्पा तं णामकम्मोदयाभिमुहो परिणमइ गच्छतीति वा गती ।

"णिरयगइतिरियमसुभं विसेसओ मणुयदेवसुभउ त्ति । जीवो उ चाउरन्त गच्छइ तम्हा गई तेण ॥१॥"

सा चउव्विहा, णिरयगई तिरियगई मणुयगई देवगई । णिरयाणं गई णिरयगई, नारकगईत्ति तत्संज्ञां लभते, तत्स-

---

त्यादि । ततो नीलशुक्लादिगुणोपेतद्रव्यसमादिग्धस्य चित्रपटादिद्रव्यव्यपदेशादिशब्दा इति षष्टिरालापः । तेषां प्रवृत्तिस्तद्वत् । यथा पटादिवस्तु विविधवर्णकद्रव्यव्यतिकरान्नानाऽव्यपदेशभाक् तथाऽऽत्मापि स मनुष्यगत्यादिविचित्रकर्मोदयादनेकधा नरनारकादितया व्यपदिश्यत इति भावः ।

(66) 'बायालीसं पिंड[प] गईओ' त्ति । पिंडो बहुप्रकृतिसंदोहः, तद्रूपाः प्रकृतयः पिण्डप्रकृतयो गत्यादिवत् । न चैव त्रसस्थावरादिप्रकृतीनामेकैकत्वेनाऽपिण्डप्रकृतित्वमाशङ्कनीयं, त्रसत्वादिसामान्याऽभेदेऽपि पतङ्ग-भृङ्ग-मातङ्ग-तुरङ्गत्वादीनां तदन्तर्भेदनिबन्धनत्वेन तासामपि पिण्डत्वात् । अन्यथा आसामेकरूपत्वे तन्निमित्तस्य त्रसत्वादेर्भेदो न स्यात् ।

॥ १४ ॥

म्बन्धात् । एवं सर्वत्र ॥ जातिनामं ति–सव्वेसिं तज्जाइयाणं जं सामन्नं ति सा जाइ वुच्चइ, एगिन्दियत्तं सव्वेगिन्दियाणं सामन्नं जाई । एवं सर्वत्र । अत्राह–फासिन्दियावरणस्स कम्मस्स खओवसमेणं एगिंदिओ भवइ, एत्थ णामं उदईओ भावो त्ति तम्हा एगिंदियत्तं न घडइ ? उच्यते, सच्च, फासिन्दियावरणस्स खओवसमेणं एगिन्दियलद्धी, जइ तस्स जाइणामं ण होज्जा तो [100]एगिन्दिओ त्ति संज्ञां न लभते, तम्हा संज्ञाकरणं यत्कर्म्म तन्नामोच्यते । तस्स जाइणामस्स कम्मस्स पञ्च पगईओ तं जहा–एगिन्दिय-बेइन्दिय-तेइन्दिय-चउरिन्दिय-पञ्चिन्दियजाइणाम ति ॥ सरीरं ति सीर्यत इति सरीरं तस्स उत्तरपगईओ पञ्च, तंजहा–ओरालियवेउव्वियआहारगतेजइगकम्मइगसरीरणामं ति । उदारं बृहदसारं तं णिप्पन्नमौदारिकं, असारथूलदव्ववग्गणा-कारणसमारद्धं, ओरालियं तप्पाओग्गपोग्गलग्गहणकारणं जं कम्मं तं ओरालियसरीरणामं, पोग्गलविवागि पोग्गलग्गहणकारण-मित्यर्थः । एव सर्वत्र । विविधगुणरिद्धिसंपउत्तं वेउव्वियं, यैस्तदारब्धं ते पोग्गला विविहगुणरिद्धिशक्तिप्रचितधर्म्माणः विक्रर-

(१००) 'तो एगिंदिओ' इत्यादि । अत्र हेतुर्व्यपदेशस्य बाह्येन्द्रियाधीनत्वात्, बाह्येन्द्रियस्य च प्रतिनियतजाति-हेतुकत्वात् । तथाहि-बकुलादेः कथञ्चित् सकलेन्द्रियव्यापारेऽपि पञ्चेन्द्रियजातिवैकल्येन बाह्येन्द्रियाभावान्न पञ्चेन्द्रियव्यपदेश । उक्तं च—

पंचिंदिउव्व बउलो, नरोव्व सव्वविसओवलंभाओ । तहवि न भण्णइ पंचिंदिउत्ति बज्झिंदियाभावा ॥

[विशेषावश्यकभाष्ये, गा. ३००१]

केवलिनश्च भावेन्द्रियाभावेऽपि 'अनीन्द्रिया' केवलिनः' इतिवचनात् पञ्चेन्द्रियजात्युदयेन बाह्येन्द्रियभावात् पञ्चे-न्द्रियव्यपदेशः । तस्मात्सुष्ठूक्तं सञ्ज्ञाकरण जातिकर्म इति ।

णारब्धं वैकुर्व्विकमिति । [1]शुभतरशुक्लविशुद्धद्रव्यैः शरीरं प्रयोजनाया-ह्रियते इति आहारकं । तेज इत्यग्निः, तेजोगुणोपेत-द्रव्यसमारब्धं तेजसमुष्णगुणं तमेव जया उत्तरगुणेहिं लद्धी समुप्पज्जइ तदा रोसाविद्धो णिसिरइ, जहा गोसालो, जम्स ण संभवइ लद्धी तस्स सततमुदराई (मोदनाई) आहारपाचकं । कम्मइगं सव्वकम्माधारभूतं जहा कुण्डं बदराईणं, सर्वकर्मप्रसवसमर्थं वा यथा बीजं अंकुरादीनां । एसा उत्तरप्रकृतिः सरीरणामकम्मस्स पृथगेव कर्म्माष्टकसमुदायभूतादिति । पोग्गलरचनाविशेषः संघातः, तेसिं चेव गहियाणं पोग्गलाणं जस्स कम्मस्स उदयाओ सरीररचना भवइ तं संघायणामं । पोग्गलेसु निवागो जस्स सो य पञ्चविहो, तंजहा—ओरालियसरीरसंघायणामं वेउव्वियआहारगतेजसकम्मइगसरीरसंघायणामं, लेप्यकरचनादिविशेष-रूपवत् सरीरपञ्चकस्य संघातः । बन्धणं ति—गहियघेप्पमाणाणं पोग्गलाणं अन्नसरीरपोग्गलेहिं वा समं बन्धो जस्स उदएणं कम्मस्स भवइ तं बन्धणणामं । सो पञ्चविहो तंजहा—ओरालियवेउव्वियआहारकतेजसकम्मइगशरीरबन्धणणामं ति, विद्यते तत्कर्म यन्निमित्ताद् द्वयादिसंयोगापत्तिराविर्भवति यथा काष्ठद्वयभेदैकत्वकरणाय जतुकारणं । एवं जत्तियाणि जत्थ सरीराणि सम्भवन्ति तेसिं बन्धणं भासियव्वं । अबद्धं हि ण संघायमावज्जइ, वालुकापुरुषशरीरवत् , विश्लिष्टतृणादिवद्वा । अहवा बन्ध-णणामं पन्नरसविहं तंजहा—ओरालियओरालियसरीरबंधणणामं, ओरालियतेजइकओरालियकम्मइगओरालियतेयकम्मइगसरीरबन्ध-णणामं । एवं वेउव्विसरीराणं ४ । एवं आहारगसरीराणं ४ । तेजइगतेजइगं तेजइगकम्मइगं कम्मइगकम्मइगं चेति । जेण पुव्व-

1 'शुभतरशलक्षणविशुद्धद्रव्यैः' इति जे. ।

गहियाणं वट्टमाणसमयगहियाणं च सह बन्धणं कज्जइ तं ओरालियओरालियसरीरबन्धणणामं । एवं सर्वत्र ॥ संठाणं ति–संस्थानमाकृतिविशेषः, तेसु चेव गहियसंघाइयपविट्ठेसु पोग्गलेसु संस्थानविशेषो यस्य कर्मणः उदयात् भवइ तं संठाणणामं । तं छव्विहं, तंजहा–समचउरंससंठाणणामं णग्गोहसंठाणं साइसंठाणं खुज्जसंठाणं वामणसंठाणं हुण्डसंठाणमिति । मानोन्मानप्रमाणान्यन्यूनातिरिक्तान्यङ्गोपाङ्गानि यस्मिच्छरीरसंस्थाने तत्संस्थानं समचतुरस्रं, स्वाङ्गुलाष्टशतोच्छ्रयाङ्गोपाङ्गनिर्म्मितलेप्यकवत् । णाभीतो उवरि सव्वावयवा समचउरंसलक्खणा अविसंवादिणो, हेट्ठाओ तदनुरूपं ण भवति तं णग्गोहं । णाभिहेट्ठाओ सव्वायवा समचउरंसलक्खणा अविसंवादिणो उवरि तदणुरूवं ण भवइ [101]तं सादि । गीवाओ उवरि हत्था पाया य आइलक्खणजुत्ता संखित्तविकृतमज्झकोष्ठं कुज्जं । लक्षणयुक्तं कोष्ठं ग्रीवाद्युपरि हस्तपादयोश्चादिन्यूनलक्षणं वामनं । कुब्जमेतद्विपरीतं । हस्तपादाद्यवयवा बहुप्रायाः प्रमाणविसंवादिनो तं हुण्डमिति ।

"तुल्लं वित्थरबहुल उस्सेहबहुं च मडहकोट्ठं च । हेट्ठिल्लकायमडहं सव्वत्थासट्ठियं हुडं ॥१॥"

अंगोवंगं ति–अंगाणि उवंगाणि य अंगोवंगाणि जस्स कम्मस्स उदएणं णिव्वत्तन्ते त अंगोवंगणामं ।

"दो हत्था दो पाया पिट्ठो पेट्ट उरं च सीस च । एए अट्ठङ्गा खलु अङ्गोवङ्गाणि सेसाणि ॥१॥"

यत्कर्म्मोदयादेवंविधा [1]निर्वृत्तिरिति । तं तिविहं उरालियशरीरअङ्गोवङ्गं वेउव्वियशरीरअङ्गोवङ्गं आहारगसरीरअङ्गो-

(१०१) 'त सादि' त्ति । तत्संस्थानं स्वाति शाल्मलिर्वाल्मिक इत्यपरे, तदाकारत्वात् स्वाति ।

1 एवविधानि निर्वर्त्यन्ते' इति जे. ।

॥ ९७ ॥

वज्रमिति । एगिन्दियवज्जेसु सेसेसु सम्भवन्ति ॥ संघयणं ति–अट्ठिबन्धणं, तं छव्विहं, तंजहा–वज्जरिसहनारायसंघयणं वज्ज-नाराय-नाराय-अद्धनाराय-कीलिया-असंपत्तच्छेवट्टसंघयणमिति । मर्कटबन्धसंस्थानीयः उभयपार्श्वयोरस्थिबन्धो यस्य तं णाराचं, ऋषभं पट्टः, वज्रं कीलिका, वज्रं च ऋषभं च नाराचं च यस्यास्ति तं वज्रर्षभनाराचसंहननं, मर्कटपट्टकीलिकारचनायुक्तं प्रथमं । मर्कटकीलिकायुक्तं द्वितीयं । मर्कटसंयुक्तं तृतीयं । मर्कटकैकदेशबन्धेन द्वितीयपार्श्वे कीलिकासंबद्धं चतुर्थं । अङ्गुल(अस्थि)द्वयसंयुक्तस्य मध्यकीलिका एव दत्ता एतं कीलिकासंहननं । असम्पत्तसेवट्टं अस्थीनि चर्माणि निकाचितानि केवलमेवेति । एवंविधाऽस्थिसंघातकारिसंहनननाम औदारिकशरीरविषयमेव संहन्यमानानां कपाटादीनां लोहादिपट्टरचना-विशेपोपकारिद्रव्यवत् संहननं । वण्णणामं ओरालियाइसु सरीरेसु जस्सोदयाओ कालादिपञ्चविहवण्णणिप्फत्ती भवइ, जहा चित्त-कम्माइसु तव्विधवण्णा समारद्धेसु कारणाणुरूववण्णणिप्फत्तिवत् । तं पञ्चविहं, तंजहा–कण्ह-नील-लोहिय हालिद्द-सुक्किल्लणामं चेति । गन्धो त्ति तेसु चेव शरीरेसु सुगन्धया दुगन्धया वा जस्स कम्मस्स उदएणं भवइ तं गन्धणामं । तं दुविधं, सुगन्धिणामं दुगन्धिणामं च । रसो त्ति तेसु चेव सरीरपोग्गलेसु तित्ताइरसविसेसो जस्स कम्मस्स उदएणं भवइ तं रसणामं । तं पञ्च-विहं तंजहा-तित्तरसणामं, कडुकणामं, कसायणामं, अम्बिलणामं, महुरणामं चेति ॥ फासो त्ति-तेसु चेव पोग्गलेसु कक्खड-मउकाइफासो जस्स कम्मस्स उदएणं पाउब्भवइ तं फासणामं । तं अट्ठविहं, तंजहा-कक्खडफासणामं-मउग गुरुअ-लहुग-णिद्ध-रुक्ख-सीय उसिणनामं चेति । एयाइं सरीरसंघायबन्धणाईणि जाव फासन्ताणि गहिएसु ओरालियाइसु पोग्गलेसु विभागं देन्ति । आणुपुव्वि त्ति आणुपुव्वी णाम परिवाडी, कासिं ? सेढीणं, तासिं अणुसेढिगमणं जस्स कम्मस्स उदयाओ भवइ ते आणुपुव्वि-

णामं अंतरगइए वट्टमाणस्स जा उवग्गहे वट्टइ, यथा—जलचरस्स गइपरिणयस्स जलं सा आणुपुव्वी । गई दुविहा. उज्जुगई वक्कगती य, जत्थ उज्जुगती तत्थ पुव्वाउगेणेव गच्छइ, गन्तूण उववत्तिठाणे पुरेक्खडमाउगं गेण्हइ । वक्कगई कोप्पर-लांगल-गोमुत्तिलक्खणा, एकद्वित्रिसमइका । ताए पुण गच्छन्तो जत्थ वङ्कमारभते तत्थ पुरेक्खडमाउगं गेण्हिऊण तं वेएइ, तत्थ य तन्नामाणुपुव्वीए उदओ भवइ । उज्जूआते समओ, तम्मि ण य आणुपुव्वीए, ण य पुरेक्खडाउगुदउत्ति । अगुरुलहु त्ति—णोगुरु णोलहु णोगुरुलहु अगुरुलहु । जस्सोदयाओ अगुरुलहुत्तं सव्वेसिं जीवाणं अप्पप्पणो सरीरं ण गुरुगं ण लहुगं अगुरुलहुगं । अगुरुलहुगं पञ्चविहपि सरीरं णिच्छयाओ गुरुगं लहुगं गुरुलघु वा ण भवइ, किंतु अन्नोन्नावेक्खाए तिन्निवि सम्भवन्ति उवघायं ति—जस्सोदएण परेहिं अणेगहा घाइज्जति । पराघाओ—जस्सोदयाओ जीवो अणेगहा परं हणइ । उस्सासो जस्सोदयाओ ऊसासणीसासया भवति । आयवणाम तपणं तावो मर्यादया तप आतपः तं जस्सोदयाओ भवइ तं आयव णामं । आइच्च-मण्डलपुढविकाइए चेव विपाको, ण अणत्थ। उज्जोयणामं उद्योतनं उद्योतः प्रकाशः अणुसिणो पकासो जस्सोदयाओ भवइ तं उज्जोयणामं; खज्जोगाईणं. ण पुण अग्गिस्स[1] फासो उसिणणामाओ रूवं लोहियणामं ति । विहायगई-चङ्कमणं गमणं विहाओ-गई एगट्ठा, णेरइगतिरियमणुयदेवाणं जस्सोदएणं गमणं भवइ तं विहायगइणाम । तं दुविहं पसत्थविहागई अपसत्थविहाय-गई य, तत्थ पसत्थविहायगई गमणं हसगजवसभादीणं, अपसत्थविहायगई य उट्टोलसिगालादीणं । तस्सणामं जस्सो-

1 अत्र 'आइच्चस्स वा अग्गिस्स' इति पाठो जे. प्रतावधिकः ।

दयाओ फन्दइ चलइ गच्छइ । थावरणामं जस्सोदयाओ ण फन्दइ ण चलइ । सुहुमतसे तेजवाऊ मोत्तूणं तेसिं थावरोदएवि सरीरसभावाओ देसन्तरगमणं भवइ । बायरणामं थूलं जस्सोदयाओ थूलया भवइ सरीरस्स तं बायरणामं । सुहुमं सूक्ष्मं जस्सोदयाओ सुहुमता भवति सरीरस्स तं सुहुमणामं, ण चक्खुग्गाहं, तं पडुच्च अन्नोन्नवेक्खायाओ वा बायरसुहुमता । पज्जत्तगणामं जस्सोदयाओ णिव्वत्तिं गच्छइ आपाकप्रक्षिप्तनिवृत्तघटवत् तं पज्जत्तगणामं । अपज्जत्तगणामं अपर्याप्तं अनिष्पन्नध्वंसि अर्द्धपक्वविनष्टघटवत् जस्सोदयाओ णिप्फत्तिं न गच्छइ । पत्तेगं ति–न सामान्यं, जस्सोदयाओ एको जीवो एकं सरीरं णिव्वत्तेइ, तं प्रत्येकं, यथा–देवदत्तयज्ञदत्तादीनां पृथग्गृहवत् । साहारणं ति-सामान्यं जस्सोदयाओ बहवो जीवा एगं शरीरं णिव्वत्तयंति, यथा--देवदत्तादयो सामान्यं देवकुलं । थिरणामं यदुदयाच्छरीरावयवानां स्थिरता भवति यथा--शिरोऽस्थिदन्तानां । अस्थिरनाम तदवयवानामेव मृदुता भवति यथा--नासिकाकर्णत्वचादीनां । शुभाशुभं शरीरावयवानामेव शुभाशुभता, यथा शिर इत्यादयः शुभाः, तैः स्पृष्टस्तुष्यति, पादेन स्पृष्टो रुष्यति तेऽशुभाः । सुभगं दुभगं, कमनीयः सुभगः मनसः प्रियः, इतरो दुर्भगः । सुस्सरदुस्सरं बेइन्दियाइयाणं सद्दो सरो येनोच्चारितेन प्रीतिरुत्पद्यते सा सुस्सरता, तव्विवरिया दुस्सरता । आएज्जं प्रमाणीकरणं आएज्जकम्मोदयाओ जं तस्स चेट्ठियं जं वा तस्स वयणं तं सव्वं मणुएहिं पमाणीकिज्जइ, जहा-जमणेण कयं तं अम्हं पमाणं ति, मध्यस्थमनुजवचनभरं मनुजचेष्टितवत् , (मध्यस्थमनुजवचनक्रियानुकूल्येनेतरमनुजचेष्टितवत्)। तव्विपरीतमणाएज्जं । अथवा आदेयता श्रद्धेयताशरीरगता, तव्विवरीयमनादेयमिति। जसकित्ति कीर्त्तनं संशब्दनं कीर्त्तिः, यश इति वा शोभनमिति वा एकार्थः, यशसा लोके कीर्तनं यशःकीर्तिः। तत्पुनः केन संसदनं ? पुण्यशौर्यसत्क्रियानुष्ठानाचलित-

स्वाध्यायध्यानशोभनार्थावलम्बनात् संसद्नं कीर्त्तनं यशःकीर्त्तिकर्मविपाकाद्भवति । अथवा यश इति इहलोके वर्त्तमानस्य, परलोगगतस्यापि (वा) यद्यशः सा कीर्त्तिरिति । तव्विवरीयमयशःकीर्त्तिः । निम्माणं ति--निम्माणं सव्वजीवाणंपि अप्पप्पणो सरीरावयवाण विन्नासणियमणं जेण भवइ तं णिम्माणणाम, जहा--मणुस्साणं दोहत्था दोपाया-उरोसिराइविन्नासो, एवं सेसजीवाणंपि, जहा वड्ढइ अणेगकलाकुसलो पासायाइस्वशास्त्रसिद्धलक्षणेन[1] णिम्माणेइ तहा णिम्माणंपि । तित्थयरणामं जस्स कम्मस्स उदएणं सदेवासुरमणुस्सलोकस्स अच्चियपूइयवन्दियणमंसिए धम्मतित्थयरे जिणे केवली भवति तं तित्थकरणामं । नामं भणियं ।।

इयाणिं गोत्तं ति--गच्छइ जीवो उच्चाणीयं कुलमिति गोयं । तं दुविहं, उच्चागोत्तं नीयागोयं च, अन्नाणीवि विरूवोवि अधणोवि जाइमत्तादेव पूइज्जइ तं उच्चागोत्तं । पंडिओवि सुरूवोवि धणवन्तोवि सव्वकलाकुसलोवि णिन्दिज्जइ उवहसिज्जइ अवमाणिज्जइ तं णीयागोत्तं ।

इयाणिं अन्तराइगं ति- [102]अन्तरे एइ व्यवधानं गच्छइ अणेण जीवस्स दाणाइपज्जयस्स दाणाइविग्घपज्जएणेति अन्तरा·

(१०२) 'अन्तरे' त्यादि । अन्तरा अन्तरालमेति गच्छति; किं कर्तृ इत्याह-दानादि दानलाभाविलब्धिपञ्चक विघ्नपर्यायेन विघ्नस्वभावेनाऽनेनेति सम्बध्यते । शेष सुगमम् । इत्यन्तरायं तदेव स्वार्थिकेकण्प्रत्ययोपादानादान्तरायिकमितिभावः ।

1 'पासासाइसु शास्त्रसिद्धलक्षणात्' इति जे. । 2 'जातिमिति' मु. ।

इगं । तं पञ्चविहं दाणलाभभोगपरिभोगवीरियन्तराइयमिति । तत्थ दाणान्तराइगं णाम दव्वपडिग्गाहकसन्निज्झेवि दिन्नं महफलं ति जाणंतो वि दायव्वं ण देइ जस्स कम्मस्स उदएणं तं दाणंतराइगं । सव्वकालं सव्वेसिं देन्तोवि जस्स ण देइ तस्स तं लाभन्तराइगोदओ । एक्कसिं भोत्तूण छड्डिज्जइ तं उवभोगं मल्लाइगं, तं विज्जमाणंपि जस्स कम्मस्स उदएणं ण भुंजइ जहा-सुबन्धू, तं उवभोगन्तराइगं । परिभुंजइ पुणो पुणो भुज्जति तं परिभोगं स्त्रीवस्त्रादिकं, सन्निहियंपि जस्स कम्मस्स उदएणं ण भुंजइ जहा सुबन्धू, एतं परिभोगन्तराइगं । वीर्यं, शक्तिः, चेष्टा, उत्साहः, जो समत्थोवि णिरुजोवि तरुणोवि अप्पबलो भवइ जस्स कम्मस्स उदएणं एतं वीरियन्तराइगं । तस्स सव्वोदओ एगिन्दिएसु तओ तरतमेण खओवसमविसेसेण [1] याणं वीरियवुड्ढी ताव जा दुचरिमसमयछउमत्थोत्ति, केवलम्मि सव्वक्खओ । एवं पगइसमुकित्तणा पगईणं [2]अत्थविवरणा य कया । एत्थ बन्धं पडुच्च वीसुत्तरं पगइसतं गहियं, तंजहा-णाणावरणाणि ५, दंसणावरणाणि ९, सायासायं २, छव्वीसं मोहणिज्जं सम्मत्तसम्मामिच्छत्तवज्जं, आऊणि ४, गति ४, जाति ५, पंचसरीराणि य सरीरबन्धणसंघायणाणि सरीरग्गहणेण गहियाइं, संठाण६, संघयण६, अङ्गोवङ्ग३, वन्नगन्धरसफासभेयवज्जाणि, आणुपुव्वीओ ४, अगुरुलहुउवघायपराघाय-उस्सासआयाव १ उज्जोय१विहाय२तसथावराइवीसं णिम्माणं तित्थयरमिति उच्चं णीयं च अन्तराइगाणि त्ति ॥३८॥३९।

इयाणिं मूलुत्तरपगईणं बन्धं पडुच्च साइअणाइयपरूवणा भन्नइ—

---

1 'उत्तर कमेण' इति मु. । 2 'अत्थणिरूवणा' इति जे. ।

गोत्रान्तरायोत्तरप्रकृतिसमुत्कीर्तना मूलप्रकृतिसाद्यादिप्ररूपणा च

साइअणाई धुवअद्धुवो य बन्धो य कम्मछक्कस्स । तइए साइयसेसो [1]अणाइधुवसेसओ आऊ ॥४०॥

व्याख्या—**'साइअणाई'** साइयं णाम जस्स बन्धस्स आई अत्थि, सह आइणा वट्टइ त्ति सो साइओ बन्धो । जस्स बन्धस्स सन्तति पडुच्च आई णत्थि सो अणाइओ बंधो, जस्स बन्धस्स वोच्छेओ नत्थि सो धुवो बन्धो । जस्स बन्धस्स परिनिष्ठानमस्ति अन्त इत्यर्थः सो अधुवो बन्धो । एएणं अत्थपएणं णाणावरणदंसणावरणमोहणिज्जणामगोयअन्तराइगाणं एएसिं छण्हं कम्माणं बन्धो साइओवि अणाइओवि धुवोवि अधुवोवि सम्भवइ । कहं ? भन्नइ, मोहवज्जाणं पञ्चण्हं कम्माणं सुहुमसम्पराइगस्स जाव चरिमसमओ ताव सव्वे हेट्ठिल्ला सययबन्धगा । उवसन्तकसायस्स तेसिं कम्माणं बन्धो णत्थि तओ भवक्खएण ठिइक्खएण वा परिवडियस्स पुणो बन्धो भवइ, ततो पभितिं साइको बन्धो । उवसन्तट्ठाणं अपत्तपुव्वस्स अणाइओ बन्धो, बन्धस्य आद्यभावात् । धुवो अभवियाणं, बन्धवोच्छेदाभावात् । अधुवो भवियाणं बन्धवोच्छेओ णियमा होहि त्ति काउं । एवं मोहणिज्जेवि भावणा । णवरिं बन्धवोच्छेओ अणियट्टिचरिमसमए वत्तव्वो । **'तइए साइयसेसो'** त्ति तइयं ति–वेयणिज्जं तस्स साइगं मोत्तूणं सेसा तिन्नि सम्भवन्ति । कहं ? भन्नइ, वेयणिज्जस्स सजोगिकेवलिचरिमसमए बन्धवोच्छेओ, ततो हेट्ठिल्ला सव्वे नियमा बन्धन्ति, अजोगिस्स बन्धवोच्छिन्ने पुणो बन्धो णत्थि त्ति काउं साइओ णत्थि । सेसतिकभावना पूर्ववत् । **'अणाइधुवसेसओ आउ'** त्ति आउगस्स अणादितं च धुवं च मोत्तूण सेसाणि वे सम्भवन्ति, आउगस्स अप्पप्पणो आउगतिभागे

1 'साइयवज्जो' इति मु. प्रतिगत पाठान्तरम् ।

वन्धाढवणं तं साइयं, अन्तोमुहुत्ताओ पुणो फिट्टइ त्ति अधुवो, तम्हा अणादिधुवाण सम्भवो णत्थि ॥४०॥ इयाणिं उत्तरपगईणं—

उत्तरपयडीसु तहा धुविगाणं बन्धचउविगप्पो य । साई अद्धुवियाओ सेसा परियत्तमाणीओ ॥४१॥

व्याख्या—'**उत्तरपयडीसु तहा**' उत्तरपगइसु सत्तचत्तालीसं धुवबन्धीओ, तं जहा—पंचणाणावरणाणि, नव दंसणावरणाणि, मिच्छत्तं, सोलस कसाया, भयं दुगंछा तेजइगकम्मइगवन्नगन्धरसफासअगुरुलहुउवघायणिम्माणं पञ्चअन्तराइकमिति । एएसिं सत्तचत्तालीसाए चत्तारिवि भावा अत्थि । कहं ? भन्नइ, पंचणाणावरणाणं उवरिल्लचत्तारिदंसणावरणाणं पंचण्हमन्तराइगाणं सुहुमसरागस्स चरिमसमए बन्धवोच्छेओ, हेट्ठिल्ला णियमा बन्धका, उवसन्तकसायस्स बन्धो णत्थि, तओ परिवडन्तस्स सादिकादयो योज्याः पूर्ववत् । चउण्हं संजलणाणं अणियट्टिम्मि बन्धवोच्छेओ, तओ भावेयव्वं । णिद्दापयलाणं तेजइकम्मइकवन्नाइ४अगुरुलहुउवघायणिम्माणभयदुगंच्छाणं जहक्कमेणं अपुव्वकरणम्मि बन्धवोच्छेओ, ततो भावेयव्वं । पच्चक्खाणावरणाणं चउण्हं देसविरयम्मि बन्धवोच्छेओ, ततो परिवडन्तस्स साइयादयो योज्याः पूर्ववत् । अपच्चक्खाणावरणाणं ४ असंजयसम्माद्दिट्ठिम्मि बन्धवोच्छेओ तओ भावेयव्वं । थीणगिद्धितिगमिच्छत्ताणंताणुबंधीणं मिच्छदिट्ठिस्स उवसमसमत्तं पडिवन्नस्स बन्धवोच्छेओ भवइ, तओ परिवडन्तस्स भावेयव्वं । '**साईअद्धुवियाओ सेसा परियत्तमाणीओ**' त्ति परावृत्य पुणो पुणो बन्धइ त्ति परियत्तमाणीओ, तंजहा—सायासायं, तिन्नि वेया, हासरईअरईसोगजुगलं; चत्तारि आउगाणि, चत्तारि गईओ, पञ्च जाईओ, ओरालियवेउव्वियआहारगसरीराणि, छसंठाणाणि, तिन्नि अंगोवंगाणि, छसंघयणाणि, चउरो आणुपुव्वीओ, पराघाय, ऊसास, आयव, उज्जोय, दो विहायगईओ, वीसं तसथावराई, तित्थकर उच्चाणीयमिति ७३ एते

परस्परविरुद्धत्वात् जुगवं ण वन्धति त्ति परियत्तमाणीओ, पराघायउस्सासा पज्जत्तगणामए सह बन्धइ त्ति, न अपज्जत्तगणामए एएण परित्तमाणीओ, आयवुज्जोआणि एगिंदियतिरियगईए सम्मं बज्झंति त्ति परित्तमाणीओ, तित्थगराहारगनामाणि सम्मत्तसंजमपच्चयाणि, न सव्वेसिं ति तेण परियत्तमाणीओ। एएसिं सव्वेसिं साइओ अधुवो य बन्धो ॥४१॥

साइयाइपरूवणा कया। इयाणि पगइट्ठाणभूओगाराइपरूवणा भन्नइ—

चत्तारि पयडिठाणाणि तिन्नि भूगारअप्पतरगाणि। मूलपगडीसु एवं अवट्ठिओ चउसु नायव्वो ॥४२॥

व्याख्या—'**चत्तारि पयडिठाणाणि**' मूलपगईणं चत्तारि पगइठाणाणि बन्धभेदा इत्यर्थः। तं जहा—अट्ठविहं, सत्तविहं, छव्विहं, एगविहं ति। अट्ठवि कम्मपगडीओ बन्धमाणस्स अटठविहं पगइठाणं, आउगवज्जं तमेव सत्तविहं, आउगमोहवज्जं बन्धमाणस्स तमेव छव्विहं, एगं चिय वेयणीयं बन्धमाणस्स एकविहं ति। '**तिन्नि भूगारअप्पतरगाणि**' त्ति भूयोकारं णाम थोवाओ बन्धमाणो बहुकाओ बन्धइ। अप्पतरं णाम बहुकाओ बन्धमाणो थोवाओ बन्धइ। '**अवट्ठिओ चउसु णायव्वो**' त्ति अवट्ठिओ वन्धो णाम जत्तियाओ पढमसमए बन्धइ तत्तियाओ चेव बिइयसमयाइसु बन्धइ। एएसिं अत्थो इमो [103]एगविहं बन्धमाणो छव्विहाइ बन्धइ त्ति तिन्नि भूओकारा, एसो एकसमइओ पडिवत्तिकाले, सेसकालं अवट्ठियबन्धो

(१०३) 'एगविहम्मि' त्यादि। एकविधं सद्वेद्य बध्ननुपशान्तमोहः। अद्धाक्षयेण प्रतिपतन् सूक्ष्मसपरायगुणस्थानकस्थः षड्विधमादिशब्दाद्भवक्षयेण सुरलोकोत्पत्तौ सप्तविध, सामान्यजीवश्च सप्तविधबन्धादष्टविध बध्नातीति त्रयो भूयस्कारा इति।

[104]अट्ठविहाओ सत्तविहाइगमणं अप्पतरबन्धो, सो वि एकसमइओ तिप्पगारो य, सेसकालं अवट्ठिओ। एवमवट्ठियबन्धो चउविगप्पो अट्ठविहाइसु ॥ अवत्तव्वबन्धो अबन्धाओ बन्धगमणं, मूलपगईसु णत्थि, मूलपगईणं सव्वबन्धे वोच्छिन्ने पुणो बन्धो णत्थि त्ति काउं। उत्तं च—

"एकादहिगे पढमो एकादी ऊणगम्मि बिइओ उ। तत्तियमेत्तो तइओ पढमे समए अवत्तव्वो ॥१॥ त्ति॥४२॥"

मूलपगईणं भूओकागाईणि भणियाणि, इयाणिं उत्तरपगईणं भन्नन्ति—

तिन्न दस अट्ठ ठाणाणि दंसणावरणमोहनामाणं। एत्थ य भूओगारो सेसेसेगं हवइ ठाणं ॥४३॥

व्याख्या—'**तिन्नि दस**' तिन्नि दस अट्ठठाणाणि पगइठाणाणि जहासंखेण दंसणावरणमोहणामाणं ति। [105]'एत्थ

---

(१०४) '*अट्ठविहातो*' इत्यादि। अष्टविधबन्धात् सप्तविधे, आदिशब्दात् सप्तविधात् षड्विधे, षड्विधादेकविधबन्धे गमनं संक्रमणं सप्तविधादिगमनम्। अष्टविधबन्धादानन्तर्येण षड्विधादिबन्धगमनासंभवात्।

(१०५) '*एत्थ य भूओगारो*' इत्यत्रादिशब्दलोपो दृश्यः। यदुक्तम्—

"भूओगारग्गहणादप्पतराई वि सूइया होन्ति। सु(सु)त्ते तालपलंबे, लुत्तो जह आइसद्दो उ ॥" [ ]

तथाऽत्राप्यादिशब्दलोपो दृश्य इति भावः। तालप्रलम्बसूत्र च— 'नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा आमे तालपलंबे अभिन्ने पडिगाहित्तए।' [बृ.क.उद्दे-१.सू-१] तालः-वृक्षविशेषः, तस्य प्रलम्बं फलं, लुप्तादिशब्दादन्यस्यापि फल प्रतिग्रहीतुं न कल्पत इति योगः।

य भूओकारो' एएसु चेव कम्मेसु भूओकारादओ चत्तारि । 'सेसेसेगं हवइ ठाणं' ति सेसाणं कम्मपगईणं एक्केक्कं चेव पगइट्ठाणं । दंसणावरणीयस्स तिन्नि पगइट्ठाणि । तंजहा—णवविहं छव्विहं चउव्विहं ति । सव्वपगईणं समुदओ णवविहं, थीणतिगविरहियं तमेव छव्विहं, णिद्दादुगरहिय तमेव चउव्विहं । एत्थ य वे भूओकारा, दोन्नि अप्पतराणि, अवट्ठियबंधाणि तिन्नि, अवत्तव्वमेगंति सव्वबंधवोच्छेए जाए पुणो बंधइ अवत्तव्वबंधो । मोहणिज्जस्स दस पगइट्ठाणाणि, तंजहा—बावीसा, एक्कवीसा, सत्तरस, तेरस, णव, पंच, चत्तारि तिन्नि, दो, एक्क त्ति । एएसिं विवरणा जहा [106] सत्तरीए । एत्थ भूओकाराणि नव, अप्पतराणि अट्ठ, कहं ? बावीसाओ एक्कवीसगमणं णत्थि, मिच्छादिट्ठी सासणभावं ण गच्छइ त्ति । एक्कवीसाओ वि सत्तरसबंधगमणं णत्थि, सासणो समत्तं ण पडिवज्जइ, णियमा मिच्छत्त गच्छइ त्ति, तम्हा बावीसाओ सत्तरसाइ-

(१०६) चूर्णिकारेण 'सप्ततिकातिदिष्टाना' मोहनाम्नो बन्धनस्थानानां क्रमेण लेशत किञ्चित् स्वरूपमुच्यते । तद्यथा-द्वाविंशतिर्मिथ्यात्व षोडशकषाया अन्यतरो वेदो हास्यरतियुग्माऽरतिशोकयुग्मयोरन्यतरद्धूयं जुगुप्सा चेति । मिथ्यात्वबन्धोपरमे सास्वादनस्यासावेकविंशतिः । सैव सम्यग्मिथ्यादृष्टेरविरतसम्यग्दृष्टेर्वाऽनन्तानुबन्ध्यभावे सप्तदशविध बन्धस्थानम् । तदेव देशविरतस्याऽप्रत्याख्यानबन्धाभावे त्रयोदशविधम् । तदेव प्रमत्ता-ऽप्रमत्ता-ऽपूर्वकरणानां प्रत्याख्यानावरणबन्धाभावान्नवविधम् । एतदेव हास्यादियुग्मस्य भयजुगुप्सयोश्चापूर्वकरणचरमसमये बन्धोपरमात् पञ्चविधम् । ततोऽनिवृत्तिकरणसङ्ख्येयभागावसाने पु वेदबन्धोपरमाच्चतुर्विधम् । ततोऽपि तस्मिन्नेव सङ्ख्येयभागे क्षयमुपगच्छति सति क्रोधमानमायासञ्ज्वलनाना क्रमेण बन्धोपरमात्त्रिविध द्विविधमेकविधञ्चेति । तस्याप्यनिवृत्तिकरणचरमसमये बन्धोपरमात् मोहनीयस्याऽबन्धकः ।

गमणं अत्थि । अवट्ठियबंधा दस । अवत्तव्वगो एक्को । [107]णामकम्मस्स पगइट्ठाणाणि अट्ठ तंजहा–तेवीसा, पणुवीसा, छव्वीसा, अट्ठावीसा, एगुणतीसा, तीसा एक्कतीसा, एगं चेति । एएसिं विवरणा जहा सत्तरीए । एत्थ भूओकाराणि सत्त [108]पणुवीसाइएगतीसपज्जवसाणाणि, एक्काओवि एकतीसाए जाइ त्ति भूओकारा सत्त । अप्पतरकाणि

(१०७) 'नाम्नस्तु' त्रयोविंशतिः, तिर्यग्गतिप्रायोग्य बध्नतस्तिर्यग्गतिरेकेन्द्रियजातिरौदारिकतैजसकार्मणानि हुण्डसंस्थानं वर्णगन्धरसस्पर्शास्तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी-अगुरुलघूपघातं स्थावरं बादरसूक्ष्मयोरन्यतरदपर्याप्तकं प्रत्येकसाधारणयोरन्यतरदस्थिरमशुभं दुर्भगमनादेयमयशःकीर्तिः निर्माणमिति । इयमेकेन्द्रियापर्याप्तकप्रायोग्यं बध्नतो मिथ्यादृष्टेर्भवति । इयमेव पराघातोच्छ्वाससहिता पञ्चविंशतिः, नवरमपर्याप्तकस्थाने पर्याप्तक एव वाच्यः । इयमेव चातपोद्योतान्यतरसमन्विता षड्विंशतिः, नवरं बादरप्रत्येके एव वाच्ये । तथा देवगतिप्रायोग्यं बध्नतोऽष्टाविंशतिस्तद्यथा देवगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, वैक्रियतैजसकार्मणानि, समचतुरस्रमङ्गोपाङ्गं वर्णादिचतुष्कमानुपूर्वी–अगुरुलघूपघातपराघाता उच्छ्वासः प्रशस्तविहायोगतिस्त्रसं बादर, पर्याप्तकं, प्रत्येकं, स्थिरास्थिरयोरन्यतरत्,शुभाशुभयोरन्यतरत्, सुभगं, सुस्वरमादेयं, यशःकीर्त्ययशःकीर्त्योरन्यतरत्, निर्माणमिति । एषैव तीर्थकरनामसहिता एकोनत्रिंशत् । साम्प्रत त्रिंशद् देवगति ,पञ्चेन्द्रियजातिः, वैक्रियाहारका शरीरा, ङ्गोपाङ्गचतुष्टयं, तैजसकार्मणे, सस्थानमाद्य, वर्णादिचतुष्कमानुपूर्वी, अगुरुलघूपघातपराघातोच्छ्वासाः प्रशस्तविहायोगतिस्त्रसं, बादरं,पर्याप्तकं, प्रत्येकं, स्थिरं, शुभं, सुभगं,[सुस्वरं] आदेय, यशःकीर्तिर्निर्माणमिति च बध्नत एक बन्धस्थानं एषैव त्रिंशत् तीर्थकरनामसहिता एकत्रिंशत् । एतेषां च बन्धस्थानानामेकेन्द्रियद्वीन्द्रियनरकगत्यादिभेदेन बहुविधता सप्ततिग्रन्थादवसेया । अपूर्ण(र्व)करणादिगुणस्थानकत्रये देवगतिप्रायोग्यबन्धोपरमाद्यशःकीर्तिमेव बध्नत एकविधबंधस्थानमिति । तत ऊर्ध्वं नाम्नो बन्धाभाव इति ।

[109]णाणाजीवे पडुच्च सत्त, एक्कतीसाई तेवीसंताणि [110]एक्कतीसाओ तीसगमणं देवत्तं गयस्स, तओ चयंतस्स एगुणतीसगमणं, अट्ठवीसाइतो एक्कगमणं, सामन्नजीवाणं तीसाओ तेवीसंतगमणं, तम्हा सामन्नेणं सत्त अप्पतराणि । अव-

---

(१०८) 'पणुवीस' इत्यादि । पञ्चविंशत्यादीनि एकत्रिंशदन्तानि षट् । एकविधबन्धकश्चोपशमश्रेणिप्रतिपाते पश्चानुपूर्व्या एकत्रिंशदादिषु चतुर्षु यथायोग्य सचरति । एतानि च एकमेव भूयस्कारस्थान विवक्षात इति ।

(१०९) 'णाणाजीवे पडुच्चे' त्ति । अल्पतरविशेषणाद् भूयस्कारस्थानानि क्रमेण एकस्यापि जीवस्य त्रयोविंशत्यादि-सर्वबन्धस्थानसंभवात् । उपशमश्रेणिप्रतिपाते चैकविधबन्धादेकत्रिंशदादिबन्धाच्च सप्तापि सभवति । अल्पतरस्थानानि तु सर्वजीवानेव प्रतीत्य भवन्ति, एकस्य जीवस्य सर्वेषामसभवात् । यस्मादेकत्रिंशद्बन्धको नैकोनत्रिंशद्बधादधः पतति । एतदेव भावयति ।

(११०) 'एगतीसाओ' इत्यादि । देवत्वप्राप्तावाहारकद्वयाऽबन्धे मनुष्यगतियोग्यसंहननबधे च त्रिंशत् । तस्यैव ततश्च्युतस्य देवगतिप्रायोग्यामष्टाविशतिं तीर्थंकरनामकर्म च बध्नत एकोनत्रिंशदिति । इह च दर्शनावरणनाममोहकर्मसु यदेकैकमेवावक्तव्यस्थानमुक्त तदिहैव श्रेणिप्रतिपातमपेक्ष्य, अन्यथाऽद्धाभवयोः क्षयेण प्रतिपततः यथासंख्यं चतुष्कं षट्कमिति द्वे द्वे, एका एकोनत्रिंशत् त्रिंशच्चेति त्रीणि, एका सप्तदश चेति द्वे, इत्येवमवक्तव्यस्थानानामभिधानात् । उक्त च–

'चउ छ दुइए' दर्शनावरण इत्यर्थः ।

'......नामंमि एग-गुणतीस-तीस अवत्तव्वा । इग सत्तरस य मोहे, एक्केक्को तइअवज्जाणं ॥'

[श्री पञ्चसग्रहे, भा १, द्वार ५, गाथा १०]

॥ १०९ ॥

ट्ठियाणि अट्ठ । अवत्तव्वमेगं णाणावरणीयवेयणीयआउगोयअंतराइगाणं एक्केकं पगइट्ठाणं । बंधं पडुच्च एकं अवट्ठियं । वेयणीयवज्जाणं अवत्तव्वगबंधो एक्को ॥४३॥

एवं भूओकारबंधाइणि वक्खाणियाणि, इयाणि बंधसामित्तं भन्नइ—

सव्वासिं पगईणं मिच्छद्दिट्ठी उ बंधओ भणिओ । तित्थयराहारदुगं मोत्तूणं सेसपयडीणं ॥४४॥

व्याख्या—'**सव्वासिं पगईणं**' पुव्वुद्दिट्ठं वीसुत्तर पगईसयं । तत्थ तित्थकरं च आहारगदुगं च मोत्तूण सेसाओ सव्व-पगईओ मिच्छद्दिट्ठी मिच्छत्ताइहिं हेऊहिं बंधइ विसेसहेऊहि य ॥४४॥

तित्थगराहारगदुगं च किं न बंधतीति चेत्? भन्नइ—

सम्मत्तगुणनिमित्तं तित्थयरं संजमेण आहारं । बज्झंति सेसियाओ मिच्छत्ताईहि हेऊहिं ॥४५॥

व्याख्या—'**सम्मत्तगुणनिमित्तं**' सम्मत्तगुणणिमित्तं तित्थकरं, संजमेण आहारं बंधइ त्ति । वीसाणं एगदुगाइ-गेहिं अन्नतरेहिं कारणेहिं तित्थयरणामंपि बद्धं सम्मद्दिट्ठिणा, जाव तस्स सम्मत्तभावो धरइ ताव बंधइ, सम्मत्तभावे फिट्टे ण बंधइ, तेण तित्थकरणामं सम्मत्तपच्चयं । आहारगदुगं अप्पमत्तभावे वट्टमाणो संजओ बंधइ, ण पमत्तो, तम्हा संजमपच्चइगं । तेण एयाओ तिन्नि पगईओ मोत्तूण सेसाओ सत्तरसुत्तरसयं पगईणं बंधइ मिच्छद्दिट्ठी मिच्छत्ताईहिं हेऊहिं ॥४५॥

सोलस मिच्छत्तंता पणुवीसं होइ सासणंताओ ॥ तित्थयराउदुसेसा अविरइअंताउ मीसस्स ॥४६॥

गुणस्थानकेषु बन्धस्वामित्वम्

व्याख्या–'**सोलस मिच्छत्तंता**' मिच्छत्तं, णपुंसगवेओ, णिरयाउगं, णिरयगई, एगिंदियजाई, बितिचउरिंदियजाई, हुंडसंठाणं, छेवट्ठं संघयणं, निरयाणुपुव्वी, आयवं, थावरं, सुहुमं, अपज्जत्तगं, साहारणमिति। एयाणि सोलसण्हं कम्मपगईणं मिच्छद्दिट्ठिम्मि चेव अन्तो, मिच्छत्तभावेण विणा एएसिं बन्धो णत्थि, एयाणि एक्कंतेण णिरयएगिंदियविगलिंदियपाउग्गाणि णेरइयएगिंदियविगलिंदियाणं णपुंसगं हुंडं च मोत्तूण सेसा णत्थि संठाणवेया, विगलिंदियाणं सेवट्ठमेव त्ति सेसाणि पडिसिद्धाणि, अप्पज्जत्तगमेगंतासुभमिति मिच्छद्दिट्ठिम्मि चेव बंधइ। एयाणि सोलस पुव्वतिकसहियाणि एगूणवीसंति। एयाणि मोत्तूण सासणो एगुत्तरं पगइसयं बंधइ। असंजयपच्चयादिगेहिं हेऊहिं '**सासणंताओ पणुवीस तु**' त्ति सासणंताओ पणुवीसं पगईओ सासणस्स उवरिल्ला ण बंधंति त्ति भणियं भवइ। के ते? भन्नइ–थीणगिद्धितिगं, अणंताणुबन्धीणि, इत्थिवेओ, तिरियाउगं, तिरियगई, आद्यंतवज्जाणि चत्तारि चत्तारि संठाणसंघयणाणि, तिरियाणुपुव्वी, उज्जोअं, अप्पसत्थविहायगई, दुभगं, दुस्सरं, अणाएज्जं, नीयगोत्तमिति। '**तित्थयराउदुसेसा अविरइअंताउ मीसस्स**' त्ति तित्थकरणामं आउदुगं च मोत्तूण जाओ असंजयसम्मदिट्ठी अंतग्गताओ पगईओ बन्धं पडुच्च ताओ चेव पगईओ सम्मामिच्छादिट्ठी बन्धइ। '**अंताउ**' त्ति अन्तर्गता इत्यर्थः। अहवा असंयते जासिं अन्तोऽतो अविरइअन्ता तासिं मिस्सो त्ति, किमुक्तं भवति? मिस्सम्मि प्रत्येकं व्यवच्छेदप्रतिषेधसूचनार्थमुक्तं, तिन्नि सोलस पणुवीसा आउगदुगं च मोत्तूण सेसाओ चोवत्तरि पगईओ सम्मामिच्छद्दिट्ठी बन्धति। असंजयसम्मद्दिट्ठी ताओ चेव तित्थयराउगदुगसहियाओ सत्त[म]त्तरिपगईओ बंधइ ॥४६॥

॥१११॥

अविरयअंताओ दस विरयाविरयंतया उ चत्तारि । छच्चेव पमत्तंता एगा पुण अप्पमत्तंता ॥४७॥

व्याख्या–'**अविरयअंताओ दस**' त्ति असंजयाओ उवरिल्ला दस पगईओ ण बन्धंति, तंजहा अपच्चक्खाणावरणा चत्तारि, मणुस्साउगं, मणुयगई, ओरालियसरीरं, वज्जरिसभणारायसंघयणं, ओरालियअंगोवंग, मणुयाणुपुव्वी य । मणुयाउगं मणुयगइपाउग्गं च देवणेरइगा असंजयसम्मद्दिट्ठी बंधंति त्ति । तिरियमणुए पडुच्च मणुयगइपाओग्गाओ पगईओ ण संभवंति । एए दस, पुव्वुत्ता सोलस, पणुवीसा, आहारदुगं च मोत्तूण सेसाओ सत्त[स]ट्ठि पगईओ देसविरओ बन्धइ, विरयाविरयं ति काउं । '**चत्तारि**' त्ति देसविरए पच्चाक्खाणावरणाणं चउण्हं अंतो, "जो वेदेइ सो बन्धइ" त्ति वचनात् पुव्वुत्ता संजयाति संजयापाउग्गाओ, एताओ चत्तारि मोत्तूण, सेसाओ तेसट्ठी पगईओ पमत्तसंजओ बन्धइ त्ति '**छच्चेव पमत्तंता**' इति पमत्तविरयंताओ छप्पगडीओ तं जहा–असायं, अरई, सोगो, अत्थिरं, असुभं, अजसमिति । एयाओ पमत्तप्पाओग्गसहियाओ मोत्तूण सेसाओ आहारदुगसहियाओ एगूणसट्ठिपगईओ अप्पमत्तसंजओ बन्धइ । '**एक्का पुण अप्पमत्तंता**' एगा पगई देवाउगं अप्पमत्तद्धाए संखेज्जइमे भागे ठाइ, अप्पमत्तअयोग्गाओ देवाउगं च मोत्तूण सेसाओ अट्ठावन्नं पगईओ अपुव्वकरणो बन्धइ, ताव जा अपुव्वकरणद्धाए संखेज्जइमो भागो त्ति ॥४७॥

दो तीसं चत्तारि य, भागे भागेसु संखसन्नाए । चरमे य जहासखं, अपुव्वकरणंतिया होंति ।४८।।

व्याख्या–'**दो तीसं**' दोन्नि अपुव्वकरणद्धाए संखेज्जइमे भागे गए णिद्दापयलाणं बन्धो वोच्छिज्जइ, पुव्वुत्ता अजो-

ग्गा णिद्दादुगसहियाओ मोत्तूणं सेसाओ छप्पन्नं पगडीओ अपुव्वकरणो बन्धइ ताव जाव अपुव्वअद्धाए संखेज्जभागा गत त्ति । **'तीसं'** ति अपुव्वकरणद्धाए संखेज्जभागेसु गएसु तीसाए कम्मपगईण बन्धो वोच्छिज्जइ, तजहा–देवगई पंचेन्दियजाइवेउव्विय-आहारगतेयइगकम्मइगसरीरसमचउरंसवेउव्वियाहारगअंगोवंगवन्नगंधरसफासदेवाणुपुव्विअगुरुलहुउवघायपराघायउस्सासपसत्थ-विहायगइतसबायरपज्जत्तपत्तेयथिरसुभसुभगसुस्सरआएज्जणिम्माण-तित्थकरमिति । देवगइबन्धजोग्गाओ एयाओ तीसं पगडीओ पुव्वुत्ताओ अयोग्गसहियाओ मोत्तूण सेसाओ छव्वीसं पगडीओ अपुव्वकरणो अंतिमे भागे बन्धइ, ताव जाव चरिमसमओ त्ति । **'चत्तारि य'** त्ति अपुव्वकरणस्स चरिमसमए चउण्हं पगईणं बन्धो वोच्छिज्जइ, तंजहा–हासरइभयदुगुंछ त्ति । **'दो तीस'** गाहात्थो इमो-दो पगईओ तीसं पगईओ चत्तारि पगईओ अपुव्वकरणद्धाए **'भागे भागेसु संखसन्नाए'** त्ति संखेज्जइमे भागे गए संखेज्जेसु भागेसु गतेसु त्ति भणियं भवइ । **'चरिमे य'** चरिमसमए य जहासंखं अपुव्वकरणंमि वोच्छिज्जंति । एए तिन्नि विगप्पा अपुव्वकरणंमि भवंति, एए चत्तारि पुव्वुत्ता अप्पाओग्गसहिए मोत्तूण सेसाओ बावीसं पगईओ अणियट्टी बंधइ, ताव जाव अणियट्टिअद्धाए संखेज्जभागा गया, एक्को भागो सेसो त्ति ॥४८॥

संखेज्जइमे सेसे, आढत्ता बायरस्स चरिमंतो । पंचसु एक्केक्कंता, सुहुमंता सोलस हवंति ॥४९॥

व्याख्या–**'संखेज्जइमे सेसे आढत्ता बायरस्स चरिमंतो पंचसु एक्केक्कंता'** इति बायराणियट्टी । तस्स अद्धाए संखेज्जइमे भागे सेसे आढत्ता जाव चरिमसमओ त्ति पंचसु ठाणेसु पंचपगईओ एक्केक्कंताओ भवंति । अणियट्टिअद्धाए

॥ ११३ ॥

संखेज्जेसु भागेसु गएसु पुरिसवेयस्स बंधो वोच्छिज्जइ, तं सवेयगो बंधइ त्ति काउं। पुव्वुत्ते अप्पाओग्गे एगे पुरिसवेयस्स सहिए मोत्तूण तओ एक्कवीसं पगईओ अणियट्टी बंधइ, ताव जाव सेसद्धाए संखेज्जा भागा गयत्ति। संखेज्जइमे सेसे कोह-संजलणाए बंधो वोच्छिज्जइ। अणंतरुत्ते अप्पाओग्गे कोहसंजलणासहिए मोत्तूण सेसातो वीसं पगईओ अणियट्टी बंधइ, ताव जाव सेसद्धाए संखेज्जा भागा गयत्ति। संखेज्जइमे भागे सेसे माणसंजलणाए बंधो वोच्छिज्जइ। अणंतरुत्ते अप्पाओग्गे माणसंजलणासहिए मोत्तूण तओ एगूणवीसं पगईओ अणियट्टी बंधइ, ताव जाव सेसद्धाए संखेज्जा भागा गयत्ति। संखेज्जइमे भागे सेसे मायासंजलणाए बंधो वोच्छिज्जइ। अणंतरुत्ते अप्पाओग्गे मायासंजलणासहिए मोत्तूण सेसाओ अट्ठारपगडीओ अणियट्टी बंधइ, ताव जाव अणियट्टिअद्धाए चरिमसमओ त्ति। एए पंच विगप्पा अणियट्टिम्मि भणिया। **'सुहुमंता सोलस हवंति'** त्ति अणियट्टिचरिमसमए लोभसंजलणाए बंधो वोच्छिन्नो. अणंतरुत्ते अप्पाओग्गे लोभसंजलणासहिए मोत्तूण सेसाओ सत्तरसकम्मपगईओ सुहुमसंपरायगो बंधइ, ताव जाव सुहुमसंपराइगद्धाए चरिमसमओ त्ति ॥ ४९ ॥

सायंतो जोगंते एत्तो परओ उ नत्थि बंधो य । नायव्वो पयडीणं बंधस्संतो अणंतो य ॥५०॥

व्याख्या–**'सातंतो जोगंते'** त्ति सुहुमसंपराइगस्स चरिमसमए पंच णाणावरणा चत्तारि दंसणावरणा जसकित्ती उच्चागोयं पंचण्हं अंतराइगाणं एएसिं सोलसण्हं कम्माणं बंधे वोच्छिन्ने अणंतरुत्ते अप्पाओग्गे, एयाओ सोलस कम्मपग-ईओ मोत्तूण सेसं सायावेयणिज्जं तं उवसंतखीणकसाया सजोगिकेवली य बंधंति। कहं ? सजोगिणो बंधगत्ति काउं, साया-

वेयणिज्जस्स बंधंतो जोगंते भवइ, सजोगिकेवली चरिमसमए इत्यर्थः । **'एत्तो परओ उ णत्थि बंधो य'** त्ति सजोगि-चरिमसमयाओ परओ अजोगिकेवलीभावे इत्यर्थः, णत्थि बंधो त्ति–बंधभावेन णत्थि कम्मं, उदयसंतभावे अत्थि चेव । **'णायव्वो पगईणं बंधस्संतो अणंतो य'** त्ति उवसंहारो एवं, जाणियव्वो पगईणं बंधो अमुको अमुकाणं पगईणं बंधगो, तेसिं चेव अंतो अमुगंमि अमुगो वोच्छिज्जइ त्ति । **'अणंतो य'** त्ति अमुगाणं कम्माणं अमुगो अंतो ण भवइ त्ति । अहवा संतो बंधो अणंतो य भव्वाभव्वे पडुच्च ॥५०॥

एवं ओघेण बंधसामित्तं भणियं । इयाणिं आएसस्सूयणत्थं भन्नइ—

गइयाइएसु एवं तप्पाओग्गाणमोघसिद्धाणं । सामित्तं नेयव्वं पयडीणं ठाणमासज्ज ॥५१॥

व्याख्या–**'गइआइगेसु'** त्ति गइइंदियाईसु चोद्दसु मग्गणट्ठाणेसु **'एवं'** ति भणियविहिणा, **'तप्पाओग्गाणं'** ति णेरइयाईणं जोग्गाणं, **'ओघसिद्धाणं'** ति ओघसामित्ते पसिद्धाणं पगईणं ठाणमासज्ज सामित्तं, णेयव्वं भवति । णेरइगाणं णिरयाउगं, णिरयगई, देवाउगं देवगई, तेसिं चेव आणुपुव्वीओ, एगिंदियबितिचउरिंदियजाई, वेउव्वियआहारगसरीरं, एतेसिं चेव अंगोवंगाणि, आयवं, थावरं, सुहुमं, अपज्जत्तकं, साहारणमिति एयाओ एगूणवीसं पगईओ अप्पाओग्गाओ । एयाओ मोत्तूण सेसं एगुत्तरं पगइसयं एएहि सामित्तं णायव्वं पूर्व्ववत् । तिरियाणं आहारदुगं तित्थकरणामं च अप्पाओग्गाणि, एए मोत्तूण सेसाणि सत्तरससयं पगईणं एएहिं सामित्तं णायव्वं । णवरि तिरिया सम्मामिच्छद्दिट्ठी असंजयसम्मद्दिठी य

॥ ११५ ॥

देवगइपाओग्गमेव बंधंति ण सेसं ति। मणुयाणं जहा ओघपयडीओ। णवरि सम्मामिच्छादिट्ठी असंजयसम्मद्दिठी य मणुयगइपाओग्गं ण बंधंति, तेसु ण उववज्जइ त्ति काउं। देवस्स जाणि णेरइगअप्पाओग्गाणि ताणि चेव अप्पाओग्गाणि। णवरि एगिंदियजाई आयवं थावरं च मोत्तूण सेसाणि सोलस। एयाओ सोलस मोत्तूण सेसं चउरुत्तरं पगइसयं बंधंति; एत्थ सामित्तं णेयव्वं। इयाणिं इंदिएसु एगिंदियबितिचउरिंदियाणं णिरयाउगं, देवाउगं, णिरयगई, देवगई, तेसिं चेव[1] आणुपुव्वीओ, वेउव्वियं आहारगं, तेसिं अंगोवंगाणि, तित्थकरणामं च अप्पाओग्गाणि। एयाओ एक्कारसपगईओ मोत्तूण सेसं णवुत्तरं पगइसयं, एत्थ सामित्तं णेयव्वं। पंचिंदियाणं जहा ओघो। एवं कायाइकेसु जाणित्तु जोग्गाजोग्गं सामित्तं भाणियव्वं ति। अहवा बंधसामित्तं त्ति जओ एत्थ पढियव्वो॥ **पगइबंधो समत्तो ॥५१॥**

इयाणिं ठिइबंधस्स अवसरो पत्तो तं भन्नइ, तत्थ ठिइबंधे पुव्वं गमणिज्जाणि चत्तारि अणुओगदाराणि तंजहा– [111]'ठिइबंधट्ठाणपरूवणा, णिसेगपरूवणा, अबाहाकण्डयस्स परूवणा, अप्पाबहुगं ति, एयाणि जहा [112]**कम्मपगडिसंगहणीए**।

(१११) 'ठिइबंधठाणे' त्यादि। इह स्थितिबन्धाधिकारेऽनुयोगद्वाराणि स्थितिबन्धस्थानप्ररूपणादीनि।
(११२) अयमेव शिवशर्मसूरिः 'कर्मप्रकृतिसंग्रहण्या' विस्तरतो निर्दिष्टवानिति नात्राधिकृतानि, तत्सापेक्षतयैवास्य बन्धशतकस्य प्रकृतार्थगमकत्वात्। यदुक्तं तत्र—

1 'तेसु आणुपुव्वीओ' इति मु.।

एवं वंधणकरणे, परूविए सह हि बन्धमयगेण । वंधविहाणाहिगमो, सुहमभिगंतुं लहुं होइ ॥

[श्री कर्मप्रकृति० बन्धनकरणे, गा. १०२]

स्वरूपमात्र पुनरेषामेतद्-स्थितिर्ज्ञानावरणादिनामवस्थानकालः । तस्या बन्धस्थानानि बन्धप्रकाराः स्थितिबन्धस्थानानि । यथा नरकायुषो वर्षसहस्रदशलक्षणा स्थितिरेकं स्थितिबन्धस्थान, सैव समयाधिका द्वितीय, द्विसमयाधिका च तृतीय, एवमेकैकसमयवृद्ध्या तावदपरापर स्थितिबन्धस्थान यावदुत्कृष्टतस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि । एव सर्वेषामपि ज्ञानावरणादिकर्मणां स्वजघन्यस्थितिबन्धाद्यावदुत्कृष्टस्थितिस्तावदन्तरा समयवृद्धचाऽपरापरस्थितिबन्धस्थानसभवो भावनीयः प्ररूपणा चैषा प्रतिजीवस्थानमनेकधा प्रतिपादनमिति ।

निषेकः कर्मणामुदयार्थं प्रदेशविन्यासक्रम. । यथा--

मोत्तूण सगमबाहं, पढमाए ठितीए बहुतरं दव्वं । एत्तो विसेसहीणं,जावुक्कोसं तु सव्वांमि ॥ ति ।

[कर्मप्र० बधनकरणे गा. ८३]

अबाधाऽनुदयकाल' । सा च बन्धसमयोत्तरकालं जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्तम् । उत्कृष्टतो यस्य यावत्यः सागरोपमकोटीकोटयो ज्ञानावरणादे' स्थितिस्तस्य तावन्ति वर्षशतानीति । कण्डकञ्च स्थितिकण्डक , पल्योपमाऽसख्येयभागप्रमाण स्थितिखण्डमित्यर्थ । आबाधोपलक्षितः स्थितिकण्डकः, अबाधाकण्डक । इदमुक्तं भवति-यदा ज्ञानावरणादेरुत्कृष्टाऽबाधा तदा तस्य स्थितिरुत्कृष्टा वा समयहीना वा यावत्पल्योपमाऽसख्येयभागेनापि स्यात् । यदि पुनरबाधा समयो[ना] तदाऽवश्य स्थितिः कण्डकेनोनेति । एव द्वयादिसमयेनोनायामवाधाया स्थितेरवश्य द्वयादिकण्डकपातो वक्तव्यः । यावज्जघन्याऽबाधा । तदुपरि च जघन्यनिषेकस्थितिरिति । उक्तं च-

॥ ११७ ॥

[113]अद्धाच्छेदं करिस्सामि तत्थपढमं मूलपगईणं भन्नइ

सत्तरि कोडाकोडी अयराणं होइ मोहणीयस्स । तीसं आइतिगते वीसं नामे य गोए य ॥१॥
तेत्तीसुदही आउंमि केवला होइ एवमुक्कोसा । मूलपयडीण एत्तो ठिई जहन्नो निसामेह ॥२॥

व्याख्या—'सत्तरि' त्ति, 'तेत्तीसु' त्ति णाणावरणीयदंसणावरणीयवेयणीयअंतराइगाणं एएसिं चउण्हं कम्माणं उक्कोसतो ठिइबंधो तीसं सागरोवमकोडाकोडीओ, तिन्नि वाससहस्साणि अबाहा, अबाहूणिया कम्मट्ठिई कम्मणिसेगो । मोहणिज्जस्स कम्मस्सुक्कोसो ठितिबंधो सत्तरिसागरोवमकोडाकोडीओ, सत्तवाससहस्साणि अबाधा, अबाहूणिया कम्मठिती कम्मणिसेगो । णामगोत्ताणं उक्कोसओ ठिइबंधो वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ, बे वाससहस्साणि अबाहा, अबाहूणिया कम्मठिती कम्मणिसेगो । आउगस्स उक्कोसओ ठितीबंधो तेत्तीसं सागरोवमाणि पुव्वकोडितिभागब्भहियाणि, पुव्वकोडितिभागो अबाहा, अबाहाए विणा कम्मट्ठिई कम्मणिसेगो ।

मोत्तूणमाउगाइं, समए समए अबाहहाणीए । पल्लासंखियभागं, कंडं कुण अप्पबहुमेसिं ॥[कर्मप्र० बंधनकर० गा. ८५]

अल्पबहुत्वमल्पबहुभाव । तज्जघन्योत्कृष्टस्थितिबन्धाऽबाधाकण्डकादिपदसमुदायस्य परस्परं यथासंभवमिति । सर्वत्र च पश्चात् प्ररूपणाशब्देन षष्ठीसमासः ।

(११३) अद्धाच्छेदं तु स्थितिबन्धस्थानप्ररूपणान्तर्गतमप्युपरि बहूपयोगितया साक्षाच्चूर्णिकृन्निर्दिशति 'अद्धा छेयं करिस्सामि' त्ति । अद्धाच्छेदः कालप्रमाणम् ।

मूलप्रकृतीनामद्धाच्छेदः-ज० उत्कृष्टतश्च तथा-उत्तरप्रकृतीना मुत्कृष्टतः

इयाणिं जहन्निया भन्नइ—

बारस अत[होइ]मुहुत्ता वेयणिए अट्ठ नामगोयाणं । सेसाणतमुहुत्त खुड्डभवं आउए जाण ॥ १ ॥

व्याख्या—'बारस' त्ति णाणदंसणावरणमोहणिज्जंतराइगाणं जहन्नओ ठिइबंधो अन्तोमुहुत्तं, अन्तोमुहुत्तं अबाहा, अबाहूणिता कम्मट्ठिई कम्मणिसेगो । वेयणिज्जस्स जहन्नओ ठिइबंधो बारसमुहुत्ताणि, अंतोमुहुत्तमबाहा, अबाहूणिता कम्मट्ठिई कम्मणिसेगो । णामगोत्ताणं जहन्नओ ठिइबंधो अट्ठमुहुत्ताणि, अंतोमुहुत्तमबाहा, अबाहूणिया कम्मट्ठिई कम्मणिसेगो। आउगस्स जहन्नओ ठिइबन्धो खुड्डगभवग्गहणं, अन्तोमुहुत्तमबाहा, अबाहूणिया कम्मट्ठिइकम्मणिसेगो ।। १।।

इयाणिं उत्तरपगईणं उक्कोसओ अद्धाच्छेओ; तंजहा-पंचण्हं णाणावरणीयाणं, नवण्हं दंसणावरणीआणं, असायावेयणीयस्स, पंचण्हमंतराइगाणं उक्कोसओ ठिइबन्धो तीसं सागरोवमकोडाकोडीओ, तिन्नि वाससहस्साणि अबाहा, अबाहूणिया कम्मट्ठिई कम्मणिसेगो । सायवेयणीयइत्थिवेयमणुयगइमणुयाणुपुव्वीणं उक्कोसओ ठिइबन्धो पन्नरससागरोवमकोडाकोडीओ, पन्नरसवाससयाणि अबाहा, अबाहूणिया कम्मट्ठिई कम्मणिसेगो । मिच्छत्तस्स उक्कोसओ ठिइबन्धो सत्तरिसागरोवमकोडाकोडीओ, सत्तवाससहस्साणि अबाहा, अबाहूणिया ठिई णिसेगो । सोलसकसायाणं उक्कोसओ ठिइबन्धो चत्तालीसं सागरोवमकोडाकोडीओ, चत्तारि वाससहस्साणि अबाहा, अबाहूणिया ठिई णिसेगो । नपुंसकवेयअरइसोगभयदुगंछाणिरयगइतिरियगइएगिंदियपंचिंदियजाइओरालियवेउव्वियतेयकम्मइगसरीरहुंडसंठाणओरालियवेउव्वियांगोवंगसेवट्ठसंघयणवन्नगंधरसफासणिरया-

णपुव्वितिरियाणुपुव्विअगुरुलहुउवघायपराघायऊसासआयवउज्जोयअपसत्थविहायगइतसथावरबायरपज्जत्तगपत्तेयअथिरअसुभदुभग दुस्सरअणाएज्जअजसकित्तिणिम्माणणीयागोयाणं उक्कोसगो ठिइबन्धो वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ, दोवाससहस्साणि अबाहा, अबाहूणिया ठिई णिसेगो । पुरिसवेयहासरइदेवगइसमचउरंससंठाणवज्जरिसभणारायसंघयणदेवगइआणुपुव्विपसत्थविहायगइथिर सुभसुभगसुस्सरआएज्जजसकित्तिउच्चागोयमिति एएसिं कम्माणं उक्कोसगो ठिइबन्धो दससागरोवमकोडाकोडीओ, दसवाससयाणि अबाहा, अबाहूणिया ठिई णिसेगो । णग्गोहसंठाणरिसहणारायसंघयणाणं उक्कोसओ ठिइबन्धो बारससागरोवमकोडाकोडीओ, बारसवाससयाणि अबाहा, अबाहूणिया ठिई णिसेगो । साइसंठाणणारायसंघयणाणं उक्कोसिओ ठिइबन्धो चोद्दससागरोवमकोडाकोडीओ चोद्दसवाससयाणि अबाहा, अबाहूणिया ठिई णिसेगो । खुज्जसंठाणअद्धनारायसंघयणाणं उक्कोसओ ठिइबन्धो सोलससागरोवमकोडाकोडीओ सोलसवाससयाणि अबाहा, अबाहूणिया ठिई णिसेगो । वामणसंठाणखीलियसंघयणबेइंदियतेइंदियचउरिंदियजाइसुहुमअपज्जत्तगसाहारणणामाणं उक्कोसओ ठिइबन्धो अट्ठारससागरोवमकोडाकोडीओ अट्ठारसवाससयाणि अबाहा अबाहूणिया कम्मट्ठिई कम्मणिसेगो । आहारगसरीर-अंगोवंगतित्थकरणामाणं उक्कोसओ ठिइबन्धो अंतोकोडाकोडी, अंतमुहुत्तमबाहा, अबाहूणिया कम्मट्ठिई कम्मनिसेगो । देवणिरयाउगाणं उक्कोसगो ठिइबन्धो तेत्तीसं सागरोवमाणि पुव्वकोडितिभागहियाणि, पुव्वकोडितिभागो अबाहा, अबाहाए विणा कम्मठिई कम्मणिसेगो । मणुयतिरियाउगाणं उक्कोसठिई तिन्निपलिओवमाणि पुव्वकोडितिभागसहियाणि, पुव्वकोडितिभागो अबाहा, अबाहाए विणा कम्मठिई कम्मणिसेगो । उक्कोसो अद्धाच्छेओ सम्मत्तो॥

इयाणिं जहन्नओ अद्धाच्छेओ-पंचण्हं णाणावरणाणं चउण्हं दंसणावरणाणं लोभसंजलणस्स पंचण्हमंतराइगाणं जहन्नतो ठिइबंधो अंतोमुहुत्तिओ, अंतोमुहुत्तमबाहा, अबाहूणिया कम्मट्ठिई कम्मणिसेगो । थीणगिद्धितिगनिद्दापयलाअसायावेयणीयाणं जहन्नओ ठिइबंधो सागरोवमस्स तिन्नि सत्तभागा पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणूणया, अंतोमुहुत्तमबाहा, अबाहूणिया कम्मट्ठिती कम्मणिसेगो । सायावेयणीयस्स जहन्नो ठिइबंधो बारसमुहुत्तिओ, अंतोमुहुत्तमबाहा, अबाहाए विणा ठिई णिसेगो । मिच्छत्तस्स जहन्नओ ठिइबंधो सागरोवमस्स सत्त सत्तभागा, पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेण ऊणया अंतोमुहुत्तमबाहा अबाहूणिया कम्मठिई कम्मनिसेगो । संजलणवज्जाणं बारसण्हं कसायाणं जहन्नओ ठिइबंधो सागरोवमस्स चत्तारि सत्तभागा पलिओवमासंखभागेण ऊणया, अंतोमुहुत्तमबाहा । कोहसंजलणाए जहन्नओ ठिइबंधो बे मासा, अंतोमुहुत्तमबाहा । माणसंजलणाए जहन्नओ ठिइबन्धो मासो, अंतोमुहुत्तमबाहा । मायासंजलणाए जहन्नओ ठिइबंधो अद्धमासो, अंतोमुहुत्तमबाहा । पुरिसवेयस्स जहन्नओ ठिइबन्धो अट्ठवासाणि अंतोमुहुत्तमबाहा । पुरिसवेयवज्जाणं णोकसायाणं मणुयतिरियगइ(इगदुतिचउ) पंचेंदियजाइओरालियतेयकम्मइगसरीरं, छण्हं संठाणाणं, ओरालियअंगोवंगं, छण्हं संघयणाणं, वन्नाइ४तिरियमणुयाणुपुव्विअगुरुलहुउवघातपराघातउसासआयावउज्जोयपसत्थापसत्थदोविहायगइतसथावराइवीसं जसवज्जं णिम्माणं णीयगोयाणं जहन्नओ ठिइबन्धो सागरोवमस्स बेसत्तभागा पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणूणया अंतोमुहुत्तमबाहा [114]देवगइनिरयगइवेउव्वियसरीर-

(११४) 'देवगई' इत्यादि । पल्योपमसंख्येयभागोनौ सागरोपमसहस्रस्य द्वौ सप्तभागाविति जघन्यतोऽपि वैक्रियषट्-

कस्य स्थितिबन्धप्रमाणमुक्तं । तत्तीर्थंकरयशःकीर्त्याहारकद्वयशेषनामजघन्यस्थितिबन्धापेक्षयाऽस्य सहस्रगुणत्वात् । यतो ह्रस्वा वसंज्ञिपञ्चेन्द्रियेष्वेव, स चैकेन्द्रियबन्धापेक्षया सहस्रगुण एकेन्द्रियस्थितिबन्धश्च शेषनाम्नां जघन्यस्थितिबन्ध । यदुक्तम्—

वग्गुक्कोसठितीणं, मिच्छत्तुक्कोसएण जं लद्धं । सेसाणं तु जहन्नो, पल्लासंखेज्जगेणूणो ॥
एसेगिंदियडहरो, सव्वासि ऊणसंजुओ जेट्ठो । पणुवीसं पण्णासं, सयं सहस्सं च गुणकारो ॥
कमसो विगल असन्नीण, पल्लसंखेज्जभागहाइयरो । इति। [कर्मप्र० बंधनक,गा.७९-८०]

अस्यार्थः । वर्ग.समुदायो नामकर्मवर्गवत्कषायवर्गवद्वा, तेषामुत्कृष्टस्थितयो विंशतिचत्वारिंशत्सागरोपमकोटीकोट्यादिकास्तासां मिथ्यात्वोत्कृष्टस्थित्या सप्ततिकोटीकोटिप्रमाणया भागेऽपहृते यल्लब्धमेकसागरोपमद्विसप्तभागादिकं, तत्किमित्याह-शेषाण(ज्ञानावरणपञ्चकान्तरायपञ्चक-दर्शनावरणचतुष्टय-पुरुषवेद-संज्वलनचतुष्टय-यशःकीर्त्युच्चैर्गोत्रेभ्यो यथासंभवमनिवृत्तिबादरसम्पराय-सूक्ष्मसंपरायगुणस्थानयोःप्राप्तजघन्यस्थितिबन्धिभ्यः,आहारकद्विक-तीर्थंकरनामकर्मभ्यश्चाऽपूर्वकरणसम्पन्नजघन्यस्थितिबन्धिभ्यः, आयुःकर्मभ्यश्च विलक्षणानां जघन्यः सर्वस्तोक स्थितिबन्धः कीदृशः सन्नित्याह-'पल्योपमासंख्येयभागोनः' साम्प्रतममुमेवैकेन्द्रियादिषु जघन्यमुत्कृष्टं च बन्धं निरूपयन्नाह एष एवैकेन्द्रियाणां 'डहरो'-जघन्यः, कासामित्याह—सर्वासामेकेन्द्रियप्रायोग्यबन्धानां प्रकृतीनां, तथाऽयमेव ऊनेन पल्योपमासंख्येयभागलक्षणेन संयुक्त एकेन्द्रियाणामेव ज्येष्ठो भवति तथा तेषामेवैकेन्द्रियाणामुत्कृष्टस्थितिबन्धस्य द्वीन्द्रियादिषु चतुर्षु जीवस्थानेषूत्कृष्टबन्धचिन्तायां क्रमेण पञ्चविंशतिः, पञ्चाशत् शतं सहस्रं च गुणकाराः क्रियन्ते । तत एतेषु जीवस्थानकेषु पञ्चविंशत्यादिप्रमाणसागरोपमसहस्रस्य द्वौ सप्तभागौ द्विसप्तभागादिक उत्कृष्टस्थितिबन्ध. संपद्यते । अय(य)मेव च पल्योपमसंख्येयभागहीनस्तेषां जघन्यः । ततः सिद्धमिदं सागरोपमसहस्रस्य द्वौ सप्तभागौ पल्योपमा(म)संख्येयभागहीनावसंज्ञिन एव जघन्यो वैक्रियषट्कबन्ध इति ।

जघन्याद्धाच्छेदः स्थिति-साद्यादि प्ररूपणा

वेउव्वियअंगोवंगणिरयदेवाणुपुव्वीणं एएसिं कम्माणं जहन्नगो ठिइबंधो卐सागरोवमस्स बेसत्तभागा सहस्सगुणिया 卐पलिओवमस्स संखेज्जतिभागेणूणया, अंतोमुहुत्तमबाहा। एयं असन्निसु लब्भइ। अणियट्टिखवगाइसु जाणि कम्माणि लब्भंति ताणि मोत्तूण सेसाणि बायरएगिंदियपज्जत्तगंमि लब्भंति। आहारकसरीरआहारकांगोवंगतित्थकरणामाणं जहन्नो ठिइबन्धो अंतोकोडाकोडी, अंतोमुहुत्तमबाहा। उक्कोसाओ संखेज्जगुणहीणो जहन्नओ ठिइबंधो। जसकित्तिउच्चागोयाणं जहन्नओ ठिइबन्धो अट्ठमुहुत्ता, अंतोमुहुत्तमबाहा। (सव्वत्थ अबाहाए विणा कम्मठिई कम्मनिसेगो)। देवणिरयाउगाणं जहन्नओ ठिइबंधो दसवाससहस्साणि, अंतोमुहुत्तमबाहा, अबाहाए विणा कम्मट्ठिई कम्मणिसेगो॥ मणुयतिरियाउगाणं जहन्नओ ठिइबंधो खुड्डाभवग्गहणं, अंतोमुहुत्तमबाहा, अबाहाए विणा कम्मट्ठिई कम्मणिसेगो। जहन्नओ अद्धाच्छेओ सम्मत्तो।

इयाणिं मूलुत्तरपगईणं साइअणाइपरूवणा भन्नइ–

मूलठिईण अजहन्नो सत्तण्हं साइयाइओ बंधो। सेसतिगे दुविगप्पो आउचउक्केवि दुविकप्पो॥ ६२॥

व्याख्या—'मूलठिईण अजहन्नो' मूलपगईणं ठिई मूलठिई। पुव्वं ताव जहन्नाईणं लक्खणं भन्नइ–जओ अण्णो खुड्डलतरओ ठिइबंधो नत्थि त्ति सो जहन्नओ ठिइबंधो वुच्चइ; तं मोत्तूणं सेसो सव्वो समयाहिगाइओ अजहन्नो ठिइबंधो ताव जाव उक्कोसगो त्ति। एएसु दोसु सव्वे ठिइविसेसा पविट्ठा। जओ अन्नो उक्कोसतरो ठिइबंधो णत्थि त्ति सो उक्कोसो,

卐... ... ...卐 अत्र 'सागरोवम सहस्सवेसत्तभागा' इति जे. प्रती। 1 'असखेज्जइभागेणूणया' इति मु.।

॥ १२३ ॥

तं मोत्तूणं सेसो सव्वो समयाइणा ऊणो ताव जाव जहन्नो त्ति सो अणुक्कोसो वुच्चइ । एएसु वा दोसु सव्वे ठिइ विसेसा पविट्ठा । एएण अट्ठपदेण मूलपगईणं आउगवज्जाणं सत्तण्हं अजहन्नओ ठिइबंधो साइयाइचउविगप्पो लब्भइ । कहं ? भन्नइ, मोहवज्जाणं छण्हं जहन्नओ ठिइबंधो सुहुमरागखवगस्स चरिमो ठिइबंधो, सो य साइओ अधुवो य । कहं ? भन्नइ, खवगस्स सव्वथोवाओ अजहन्नठिइबंधाओ, जहन्नठिइबंध संकमंतस्स जहन्नस्स साइओ, तओ बंधोवरमे जहन्नस्स अधुवो, तं मोत्तूणं सेसो अजहन्नो, सुहुमोवसामगम्मि तओ दुगुणो ठिइबंधो त्ति अजहन्नो । उवसंतकसायस्स बंधो णत्थि, तओ पुणो परिवडंतस्स अजहन्नठिइबंधो साइओ । बंधोपरमो जेण ण कयपुव्वोतस्स अणाइओ । धुवो अभव्वस्स बंधो, जओ बंधवोच्छेयं जहन्नगं वा ठिइबंधं ण करेहि त्ति । अद्धुवो भव्वाणं, णियमा बंधवोच्छेयं काहिंति त्ति । एवं मोहणिज्जस्सवि । णवरि सव्व-जहन्नोअणियट्टिखवगस्स चरमो ठिइबंधो तओ भावेयव्वं । **'सेसतिगे दुविगप्पो'** उक्कोसअणुक्कोसजहन्नगेसु दुविगप्पो, साइओ अद्धुवो य । जहन्नगे दुविगप्पे कारणं पुव्वुत्तं । उक्कोसो ठिइबंधो सत्तण्हवि सन्निम्मि मिच्छद्दिट्ठिम्मि सव्वसंकिलिट्ठंमि लब्भइ, सो साइओ अद्धुवो य । कहं ? [समयाओ] आढत्तो अंतोमुहुत्ताओ णियमा फिट्टइ त्ति, तओ परिवडंतस्स अणुक्कोसस्स साइओ, पुणो जहन्नेणं अंतोमुहुत्तेणं उक्कोसेणं अणंताहिं ओसप्पिणिउस्सप्पिणीहिं उक्कोसं ठिइं बंधमाणस्स अणुक्कोसस्स अद्धुवो, उक्कोसस्स साइओ, पुणो अद्धुवो, एवं उक्कोसाणुक्कोसेसु परिभमंति त्ति दोण्हवि साइओ अद्धुवो य । सेसा धुवअणाइयबंधा ण संभवंति । **'आउच्चउक्केवि दुविगप्पो'** त्ति उक्कोसो अणुक्कोसो जहन्नो अजहन्नगो य ठिइबंधो साइगो अद्धुवो य, अद्धुवबंधादेव ॥५२॥

इयाणिं उत्तरपगईणं भन्नइ—

अट्ठारसपयडीणं अजहन्नो बंध[1]चउविगप्पो य । [2]साईअअधुवबंधो सेसतिगे होइ बोद्धव्वो[3] ॥५३॥

व्याख्या—'**अट्ठारसपगईणं अजहन्नो बंधोचउविगप्पो**' त्ति, पंचण्हं णाणावरणीयाणं, चउण्हं दंसणावरणीयाणं, चउण्हं संजलणाणं, पंचण्हमंतराइगाणं, एएसिं अट्ठारसण्हं अजहन्नओ ठिइबंधो साइयाइचउविगप्पो लब्भइ । कहं ? भन्नइ, णाणावरणाणं दंसणावरणाणं अंतराइगाणं जहन्नओ ठिइबंधो सुहुमसंपरायखवगस्स चरमे ठिइबंधे लब्भइ, सो साइगो अद्धुवो य । उवसामगम्मि अजहन्ने बंधे वोच्छिन्ने पुणो बंधंतस्स साइओ बंधो, तं ठाणमपत्तपुव्वस्स अणाइओ, धुवो अभव्वस्स. अद्धुवो भव्वस्स । संजलणचउक्कस्स अणियट्टिखवगंमि अप्पप्पणो बंधवोच्छेयकाले जो ठिइबंधो सो सव्वंजहन्नो, सेसो अजहन्नो तओ भावेयव्वं । एएसिं अट्ठारसण्हं जहन्नओ ठिइबंधो खवगसेढिं मोत्तूण अन्नहिं ण लब्भइ त्ति साईयाईणि लद्धाणि । '**साईअअधुवबंधो सेसतिगे होइ**' उक्कोसाणुक्कोसजहन्नगेसु ठिइबंधेसु साइगो अद्धुवो य लब्भइ । कहं ? भन्नइ, जहन्नगे कारणं पुव्वुत्तं । उक्कोसाणुक्कोसा जहा मूलपगईणं तहा चेव भाणियव्वा ॥५३॥

उक्कोसाणुक्कोसो जहन्नमजहन्नगो य ठिइबंधो । साईअअधुवबंधो सेसाणं होइ पयडीणं ॥५४॥

व्याख्या—'**उक्कोसाणुक्कोसो**' त्ति उक्कोसगोवि, अणुक्कोसगोवि, जहन्नगोवि, अजहन्नगोवि ठिइबंधो भणियसेसाणं

1 बधो 2 साततिअद्धुव 3 दुविगप्पो इति मुद्रितप्रतिगतपाठान्तराणि।

॥१२५॥

सव्वपगईणं साइगो अद्धुवो य । कहं ? भन्नइ, थीणगिद्धितिगं णिद्दा पयला मिच्छत्तं आइमा बारसकसाया भयदुगुंछाणामधुवबंधिणो णव, तंजहा-तेजइगकम्मसरीरवन्नाइ ४ अगुरुलघुउवघायणिम्माणमिति एगूणतीसा । एएसिं सव्वेसिं जहन्नगो ठिइबंधो बायरएगिंदियम्मि पज्जत्तगंमि सव्वविसुद्धम्मि लब्भइ, अंतोमुहुत्तमेत्तं कालं, पुणो संकिलिट्ठो अजहन्नं बंधइ, पुणो विसुद्धो कालंतरेण वा तंमि चेव भवे, अन्नभवे वा जहन्नगं बंधइ, एवं जहन्नाजहन्नपरिवत्तणं करेन्ति त्ति दोण्ह वि साइओ अद्धुवो य ठिइबंधो । एएसिं उक्कोसो सन्निम्मि मिच्छादिट्ठिम्मि पज्जत्तगसव्वसंकिलिट्ठंमि लब्भइ अंतोमुहुत्तमेत्तं कालं, पुणो विसुद्धो अणुक्कोसं बंधइ, पुणोवि संकिलिट्ठो तब्भवे वा अन्नभवे वा वट्टमाणो उक्कोसं बंधइ, एवं उक्कोसाणुक्कोसेसु परिवत्तणं साइगो अद्धुवो य सव्वत्थ । सेसाणं परियत्तमाणीणं सव्वपगईणं अद्धुवबंधित्तादेव सव्वत्थ साइओ अद्धुवो य ठिइबंधो ॥५४॥ एवं साइयाइपरूवणा कया, इयाणिं ठिईणं शुभाशुभनिरूवणत्थं भन्नइ—

सव्वासिंपि ठिईओ सुभासुभाणंपि होंति असुभाओ । माणुसतिरिक्खदेवाउगं च मोत्तूण सेसाणं ॥५५॥

व्याख्या—'**सव्वासिंपि ठिईओ सुभासुभाणंपि होंति असुभाओ**' त्ति सव्वासिं कम्मपगईणं सुभाणं असुभाणं च ठिईओ सव्वाओ असुभा चेव । कहं ? भन्नइ, कारणाशुद्धत्वात्, किं तं कारणं ? भन्नइ, संकिलेसो कारणं, संकिलेसवुड्ढिओ ट्ठिइवुड्ढि भवइ, संकिलेसो य कसाया, तद्वृद्धौ स्थितिवृद्धिरिति, तस्मात्कारणाशुद्धत्वात् कार्यमप्यशुद्धं, यथा—अप्रशस्तद्रव्यकृतघृतपूर्णवत् । अन्नेणावि कारणेण पसत्थावि अपसत्थाओ भवन्ति । कहं ? नीरसत्ताओ जत्तियं २ ठिई

वड्ढेइ, तत्तियं २ शुभकम्माणि णीरसाणि भवंति, रसगालितेक्षुयष्टिवत् । अप्पसत्थाणं कम्माणं ठिइवुड्ढीओ रसो वड्ढइ त्ति । तम्हा सुभाणं असुभाणं च ठिईओ असुभाओ चेव । अइप्पसत्तं लक्खणंति तम्स अववाओ वुच्चइ '**माणुसतिरिक्खदेवाउगं च मोत्तूण सेसाणं**' ति मणुयाउगं तिरिक्खाउगं देवाउगं च मोत्तूण सेसाणं सव्वपगईणं ठिईओ असुभाओ सव्वाओ । एएसिं तिण्हंपि ठिईओ सुभाओ, कहं ! कारणशुद्धत्वात्[1] , किं तं कारणं ? विसोही, विसोहितो एएसिं कम्माणं ठिईओ वड्ढंति त्ति सुभाओ, यथा शुभद्रव्यनिष्पन्नमोदकवत् । अन्नं च कारणं एएसिं ठिइवुड्ढीओ अणुभागो वड्ढइ सो य सुभकारणंति ॥५५॥

इयाणिं सव्वासिं उक्कोसठिई जहन्नठिई य केण णिव्वत्तिजइ त्ति तं णिरूवणत्थं भन्नइ--

सव्वट्ठिईणमुक्कोसगो उ उक्कोससंकिलेसेणं । विवरीए उ जहन्नो आउगतिगवज्जसेसाणं ॥५६॥

व्याख्या--'**सव्वट्ठिईणमुक्कोसगो उ उक्कोससंकिलेसेणं**' ति सव्वपगईणं उक्कस्सओ ठिइबंधो सव्वुक्कस्ससंकिलेसेणं भवइ त्ति । जे जे सव्वपगईणं बंधका तेसु तेसु जो जो सव्वसंकिलिट्ठो सो सो उक्कोसं ठिइं बंधइ सव्वपगईणं । '**विवरीए उ जहन्नो**' त्ति सव्वपगईणं भणियविवरीयाओ जहन्नगो ठिइबंधो भवइ । कहं ? भन्नइ, जे जे सव्वपगईणं बंधका तेसु तेसु जो जो सव्वविसुद्धो सो सो सव्वपगईणं जहन्नगं ठिइं बंधइ । '**आउगतिगवज्जसेसाणं**' ति

1 'कारनसुभत्वात्' इति मु. ।

॥ १२७ ॥

पुव्वुत्तं आउगतिगं मोत्तूणं सेसाणं पगईणं एस विही । तिण्हंपि आउगाणं उक्कोसं जहन्नगं विवरीयं । कहं ? तब्बंधकेसु जो जो सव्वविसुद्धो सो सो सव्वुक्कसियं ठिइं बंधइ, तेसु चेव जो जो सव्वसंकिलिट्ठो सो सो सव्वजहन्नियं सव्वासिं ठिइ बंधइ, जहा जहा ठिई हस्सति तहा तहा अणुभागो हस्सइ ॥५६॥

इयाणिं उक्कोससामित्तणिरूवणत्थं भन्नइ—

सव्वुक्कोसठिईणं मिच्छादिट्ठी उ बंधओ भणिओ । आहारगतित्थयरं देवाउं वा विमुत्तूणं ॥५७॥

व्याख्या—'**सव्वुक्कोसठिईणं**' ति सव्वासिं पगईणं उक्कोसं ठिइं मिच्छद्दिट्ठी सव्वाहिं पज्जत्तीहिं पज्जत्तो सव्वसंकिलिट्ठो बंधइ । कहं ? भन्नइ, जे जे बंधका सव्वेसिं तेसिं मिच्छद्दिट्ठी सव्वसंकिलिट्ठतरो त्ति काउं । '**आहारगतित्थयरं देवाउं वा विमोत्तूणं**' ति आहारगतित्थकरणामाणं मिच्छद्दिट्ठिम्मि बंधो गुणपच्चयगो णत्थि । देवाउगस्स उक्कोसं ठिइंण बंधइ, कहं ? भण्णइ सव्वट्ठसिद्धिए देवाउगस्स उक्कोसा, तंमि मिच्छद्दिट्ठी ण उववज्जइ त्ति उक्कोसं ण बंधइ ॥५७॥

एयासिं तिण्हं उक्कोसं को बंधइ त्ति तं णिरूवणत्थं भन्नइ—

देवाउयं पमत्तो आहारगमप्पमत्तविरओ उ । तित्थयरं च मणुस्सो अविरयसम्मो समज्जेइ ॥५८॥

व्याख्या—'**देवाउयं पमत्तो**' त्ति देवाउगस्स उक्कोसं ठिइं पमत्तसंजओ पुव्वकोडितिभागाइसमए वट्टमाणो अप्पमत्ताभिमुहो बंधइ । अप्पमत्तो उक्कोसं कि ण बंधति त्ति चेत् ? तदुच्यते, अप्पमत्तो आउगं बंधिउं णाढ-

वेइ[1] पमत्तेणाढत्तं अप्पमत्तो बंधइ त्ति सो य उक्कोसठिइयं बंधो एक्कं समयं लब्भइ; परओ अबाहापरिहाणि त्ति न लब्भइ। 'आहारगमप्पमत्तविरओ' त्ति आहारगदुगस्स उक्कोसं ठिइं अप्पमत्तसंजओ पमत्ताभिमुहो तब्बंधकेसु सव्वसंकिलिट्ठो बंधइ। 'तित्थयरं च मणुस्सो अविरयसम्मो समज्जेइ' त्ति तित्थकरणामस्स उक्कोसं ठिइं मणुस्सो असंजओ वेयगसम्मद्दिट्ठी पुव्वं नरगबद्धाउगो णिरयाभिमुहो मिच्छत्तं पडिवज्जिहि त्ति अंतिमे ठिइबंधे वट्टमाणो बन्धइ, तब्बंधकेसु [2]अच्चंतसंकिलिट्ठोत्ति काउं। जो संमत्तेण खइगेणं णरगं गच्छइ सो तत्तो विसुद्धतरो त्ति तम्मि उक्कोसो ण भवइ। 'समज्जेइ' त्ति बंधइ ॥५८॥

पुव्वं मिच्छद्दिट्ठी सव्वपगईणं उक्कोसं ठिइं बंधइ त्ति सामन्नेणं भणियं, इयाणिं मिच्छद्दिट्ठीसु वि विभागदरिसणत्थं भन्नइ—

पन्नरसण्हं ठिइमुक्कोसं बंधंति मणुयतेरिच्छा। छण्हं सुरनेरइया ईसाणंता सुरा तिण्हं ॥५९॥

व्याख्या—'**पन्नरसण्हं ठिइमुक्कस्सं बंधंति मणुयतेरिच्छ**' त्ति देवाउगवज्जाणि तिन्नि आउगाणि, णिरयगई देवगई, बेइंदियतेइंदियचउरिंदियजाइवेउव्वियसरीरं, वेउव्वियगोवंगं, णिरयदेवाणुपुव्वी सुहुमं अपज्जत्तगं साहारणमिति एएसिं पन्नरसण्हं [3]कम्माणं उक्कोसं ठिइं तिरियमणुया मिच्छद्दिट्ठिणो बंधंति। कहं देवणेरइगा ण बंधंति इति चेत्? भन्नइ,

1 'णाढप्पइ' इति मु. 2 'सव्वसकिलिट्ठो' इति मु. प्रत्युल्लिखितं पाठान्तरम्। 3 'कम्माणं' इति मु. प्रतौ नास्ति।

तिरियमणुयाउगं मोत्तूणं सेसाओ सव्वपगईओ देवणेरइगा तेसु ण उववज्जंति त्ति ण बंधंति । तिरियमणुयाउगाणं उक्कोसठिई देवकुरुउत्तरकुरुसु तेसु देवणेरइगा न उववज्जंति त्ति काउ उक्कोसठिइं ण बंधंति । तम्हा पंचिंदियतिरिक्खो मणुओ वा मिच्छद्दिट्ठी तप्पाओगविसुद्धो पुव्वकोडितिभागाइसमए वट्टमाणो मणुयतिरियाउगाणं उक्कोसं ठिइं बंधइ । अच्चंतविसुद्धस्स ण बंधो एइ, तिरियमणुया सम्मद्दिट्ठी एताणि ण बंधंति । णिरयाउगस्सवि एए चेव, णवरि तप्पाओगसंकिलिट्ठो बंधइ. अच्चंतसंकिलिट्ठो आउगं न बंधइ । णिरयदुगवेउव्वियदुगाणं अच्चंतसंकिलिट्ठो वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ बंधमाणो उक्कोसं ठिइं बंधइ । देवदुगविगलतिगसुहुमतिगाणं उक्कोसठिइं तप्पाओगसंकिलिट्ठो बंधइ, अच्चंतसंकिलिट्ठो णिरयपाओग बंधइ त्ति तओ विसुद्धो तिरियपाओगं, तओ विसुद्धो मणुयपाओगं, तओ विसुद्धो देवपाउग्गति । 'छण्हं सुरणेरइया' इति तिरियगई ओरालियसरीरं सेवट्ठसंघयणं ओरालियंगोवंगं तिरियाणुपुव्वी उज्जोवमिति एएसिं छण्हं कम्माणं उक्कोसगो ठिइबंधो देवणेरइगाणं भवइ । कहं ? देवणेरइगा अच्चंतसंकिलिट्ठा पंचिंदियतिरियगइपाओग्गं बंधंति, तेसु वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ भवइ। एएसिं उक्कोसा ठिई । मणुयतिरिएसु अट्ठारससागरोवमकोडाकोडीओ। कहं ? ते संकिलिट्ठा णिरयपाओग्गं बंधंति, तत्तो विसुद्धतरा मणुयगइपाओग्गंति । सेवट्टओरालियंगोवंगाणं ईसाणाओ उवरिल्ला देवा उक्कोसं ठिइं बंधंति. ईसाणंतेसु ण भवइ, कहं ? ते अच्चंतसंकिलिट्ठा एगिंदियपाओग्गं वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ बंधंति, तंमि एएसिं दोण्हं अट्ठारस भवंति, तओ विसुद्धतरो

1 'तिण्ह' इति जे. प्रतौ नास्ति ।

एयाओ बंधइ त्ति । **'ईसाणंता सुरा तिण्हं'** ति ईसाणाओ हेट्ठिल्ला देवाओ तिण्हं[1] एगिंदियआयवथावराणं उक्कोसं ठिइं वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ बंधंति । कम्हा ? ते अच्चंतसंकिलिट्ठा एगिंदियपाओग्गं बंधंति त्ति । तओ विसुद्धा पंचिंदियतिरियपाओग्गं अट्ठारस, तओ विसुद्धतरा मणुयपाओग्गं पन्नरस त्ति । जेसिं कम्माणं देवणेरइगेसु उक्कोसा ठिई तेसिं तिरियमणुयाण अणुक्कस्सा, जेसिं कम्माणं तिरियमणुएसु उक्कस्सा ठिई, तेसिं कम्माणं देवणेरइगाणं अणुक्कस्सा ठिई । कहं ? तिरियमणुया अच्चंतसंकिलिट्ठा णिरयगइपाओग्गं वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ बंधंति, तओ विसुद्धा तिरियगइपाओग्गं अट्ठारसकोडाकोडीओ, तओ विसुद्धामणुयगइपाओग्गं पन्नरससागरोवमकोडाकोडीओ, तओ विसुद्धा देवगइपाओग्गं दस सागरोवमकोडाकोडीओ बंधंति, तओ विसुद्धा खुड्डतरागं जाव अंतोसागरोवमकोडाकोडी ॥५९॥

सेसाणं चउगइया ठिइमुक्कस्सं करेंति पगईणं । उक्कोससंकिलेसेण ईसिमहमज्झिमेणावि ॥ ६० ॥

व्याख्या—**'सेसाणं चउगइया ठिइमुक्कस्सं करेंति पगईणं'** ति भणियसेसाणं पंचणाणावरणं, नव दंसणावरणं, सायासायं, मोहणिज्ज सव्वं, णामंमि इमे मोत्तुं मणुअगइवज्जाओ तिन्नि गईओ, एयासिं चेवाणुपुव्वीओ, पंचिंदियजाइवज्जाओ चत्तारि जाईओ, तेयकम्मइगसरीरवज्जाणि तिन्नि सरीराणि, तिन्नि अंगोवंगाणि, असंपत्तसेवट्टं, आयवं, उज्जोवं, थावरं, सुहुमं, अपज्जत्तगं, साहारणं, तित्थकरनाममिति, एयाहिं विरहियाणि सव्वणामाणि, उच्चाणीयगोत्तं, पंच अंतराइगमिति । एयासिं सव्वासिं उक्कोसं ठिइबंधं चउगइयावि मिच्छद्दिट्ठी बंधंति, सव्वासु वि गईसु उक्कोसो संकिलेसो

1 'तिण्हं' इति जे·प्रतौ नास्ति ।

लब्भइ त्ति काउं । धुवबंधीणीणं ४७ [115]परियत्तमाणीणं असुभाणं △असातनपुंसकशोकारतिनीचैर्गोत्रमप्रशस्तविहायोगति-अथिरछक्कं एते द्वादश १२ (हुंडसंट्ठाण) △ पंचिंदियजाइपराघायउस्सासतसबायरपज्जत्तगपत्तेगाणं च उक्कोसं ठिइं सव्व-संकिलिट्ठो बंधइ । सायपुरिसित्थिवेदहासरतिउच्चागोयमणुयदुगहुंडासंपत्तवज्जसंघयणसंठाणदसगं पसत्थविहायोगतिथिराइछक्काणमेयासिं पणवीसाए तप्पाओग्गसंकिलिट्ठतरो त्ति । परियत्तमाणीणमसुभाणं उक्कोसठिईतो समयूणादि ठिईओ जाव तज्जाइयं अप्पगइ उक्कोसठिइबंधठाणं ण पावइ ताव तप्पाओग्गसंकिलेसेण ताओ चेव पगईओ तम्मत्तठिईओ बंधइ । तओ पडिनियत्ते परिणामे परियत्तमाणीणं सुभाणं उक्कोसठितिं तप्पाओग्गसंकिलेसेणं बंधइ । 卐 एवमियरासिं पि णवरि पडिवक्खो णत्थि । 'उक्कोससंकिलेसेण ईसिमहमज्झिमेणावि' त्ति सव्वजहण्णगे ठिट्ठाणे ठिइबंधज्झवसाणठाणाणि असं-

(११५) 'सेसाणं चउगइगे' ति गाथाचूर्णौ 'परियत्तमाणीणमसुभाण' मित्यादि । तत्र परिवर्तमाना अशुभा असद्वेद्य-नीचैर्गोत्रा-ऽस्थिरषट्काद्याः, एतदुत्कृष्टावस्थितिस्त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोट्याविका । साताद्यास्तु तद्विपरीताः पञ्चदशकोटीकोट्या-दिस्थितयः । तासां च परिवर्तमानाऽशुभानामुत्कृष्टस्थितेस्त्रिंशत्कोटीकोट्यादिप्रमाणायाः सकाशाद्या. समयोनादयः स्थितयो वर्तन्ते, तन्मात्रस्थितीस्ता एवापरिवर्तमानाऽशुभप्रकृतीर्यावत्तद्जातीयाऽन्यप्रकृत्युत्कृष्टस्थितिबन्धस्थानं न प्राप्नोति तावत् तत्प्रायोग्यसंक्लेशेन बध्नातीति ।

△ ...△ त्रिकोण द्वयान्तरगतः पाठो जे. प्रतावेवम्–'असातमरइसोगनपुंसकवेदहुंडअसुभविहायोगतिअथिरअसुभ (दुभग) दुस्सरअनादेय-अयसकित्ति नीचैर्गोत्र' इति । 卐......卐 स्वस्तिकद्वयान्तरगतः पाठो मु॰ प्रतौ नास्ति ।

सव्वजलोकाकासपदसमत्ताणि विसेसवुड्ढाणप्फन्नाणि तिरियं वड्ढंति । ताहे सव्वाहे सव्वत्र जहान्नया ठिइ णिव्वत्तिज्जइ त्ति, एकव्यापारनियुक्ताऽनेकशक्तिप्रचितपुरुषसमुदायवत् वारावारेण । ततो समयुत्तरं ठिइं णिव्वत्तेन्ति जाणि अज्झवसाणठाणाणि, ताणि अन्नाणि तेहिंतो विसेसाहियाणि । तओ वि समयुत्तरं ठिइं णिव्वत्तेन्ति जाणि अज्झवसाणाणि ताणि अन्नाणि तेहिंतो विसेसाहियाणि, विसेसवुड्ढीए तिरियं वड्ढंति । एवं णेयव्वं जाव दुचरिमुक्कोसिया ठिइ त्ति । दुचरिमुक्कोसाओ सव्वुक्कोसं ठिइं णिव्वत्तेन्ति जाणि अज्झवसायठाणाणि ताणि अन्नाणि तेहिंतो विसेसाहियाणि । तेण वुच्चति उक्कोससंकिलेसेणं जाणि संकिलेसठाणाणि उक्कोसठिइं णिव्वत्तेन्ति, तेसु सव्वंतिमो उक्कोससंकिलेसो वुच्चइ, तेण उक्कोसियं ठिइं णिव्वत्तेन्ति '**ईसिमहमज्झिमेणावि**' त्ति तओ उक्कोससंकिलेसाओ ऊणऊणतराणि य ठिइबंधज्झवसाणठाणाणि, तेहिंपि तमेव उक्कोसियं ठिइं णिव्वत्तेन्ति ते ईसिमज्झिमा वुच्चंति,[116] 'अहवा सव्वसंकिलेसे पडुच्च मज्झिमाईया ते चेव ईसिमज्झिमा वुच्चंति, अहवा उक्कोसियं ठिइं णिव्वत्तेन्ति जाणि अज्झवसाणठाणाणि तेसु सव्वखुड्डगं ईषत् तेणवि तमेव उक्कोसियं ठिइं णिव्वत्तेन्ति, जहन्नुक्कोसाणं मज्झे जाणि अज्झवसाणठाणाणि ताणि मज्झिमाणि तेहिंतोवि तमेव उक्कोसियं ठिइं णिव्वत्तेन्ति ॥ ६० ॥

उक्कोससामित्तं समत्तं, इयाणिं जहन्नठिईसामित्तं भन्नइ—

(११६) 'अहवा सव्वसंकिलेसे' त्यादि । सर्वान् जघन्यमध्यमोत्कृष्टस्थितिविशेषनिर्वर्तकान् संक्लेशान् प्रतीत्य सर्वजघन्यं सर्वोत्कृष्टं च संक्लेशं विमुच्य ते (ये,) ऽन्ये प्रतिस्थितिस्थानं जघन्यमध्यमोत्कृष्टाः संक्लेशाः वर्तन्ते, ते सर्वे ईषन्मध्यमा प्रोच्यन्ते । परे इष्टितस्तन्मध्यादुत्कृष्टस्थितिबन्धप्रायोग्याः केचिदेवेह गृह्यन्त इति ।

॥ १३३ ॥

आहारगतित्थयरं नियट्टिअनियट्टि पुरिससजलणं । बंधइ सुहुमसरागो सायजसुच्चावरणविग्घं ॥६१॥

वाख्या—"**आहारगतित्थयरं णियट्टि**" त्ति आहारगदुगतित्थकरणामाणं जहन्नगं ठिइं '**णियट्टि**' त्ति अपुव्वकरणो तस्सवि खवगो चरिमे ठिइबंधे वट्टमाणो बंधइ, तब्बंधकेसु अच्चंतविसुद्धो त्ति काउं । '**अणियट्टिपुरिस संजलणं**' ति अणियट्टिखवगो अप्पप्पणो बंधवोच्छेयकाले जो जो ठिइबंधो अतिमो तहिं तहिं वट्टमाणो पुरिसवेयसंजलणाणं जहन्नगं ठिइं बंधति, तब्बंधकेसु अच्चंतविसुद्धो त्ति काउं । '**बंधइ सुहुमसरागो सायजसुच्चावरणविग्घं**' ति सुहुमसंपराइगखवगो चरिमे ठिइबंधे वट्टमाणो पचण्हं णाणावरणीयाणं, चउण्हं दंसणावरणीयाणं, सायवेयणीयं, जसकीत्तिउच्चागोयं, पंचण्हमंतराइगाणं, एएसिं सत्तरमण्हं कम्माणं जहन्नगं ठिइं बंधइ, तब्बंधकेसु अच्चंतविसुद्धो त्ति काउं ॥६१॥

छण्हमसन्नी कुणइ जहन्नठिइं आउगाणमन्नयरो । सेसाण पज्जत्तो बायरएगिंदियविसुद्धो ॥६२॥

वाख्या—'**छण्हमसन्नी कुणइ**' त्ति णिरयगइदेवगइतदाणुपुव्वीओ वेउव्वियदुगमिति । एएसिं छण्हं कम्माणं '**जहन्नठिइं**' ति असन्निपंचिंदिओ सव्वाहिं पज्जत्तिहिं पज्जत्तगो सव्वविसुद्धो सव्वजहन्नियं ठिइं बंधइ । णिरयदुगस्सवि तप्पाओगविसुद्धो त्ति वत्तव्वं, हेट्ठिल्ला एगिंदियादी ण बंधंति । सन्निम्मि किं ण भवति इति चेत् ? भण्यते, सन्निम्मि सभावात्देव ठिई महती, असन्निम्मि सभावादेव खुड्डली, बालमध्यमपुरुषाहारवत् । '**आउगाणमन्नयरो**' त्ति देवणिरयाउगाणं सन्नी

1 आहारदुग' इति जे. ।

जघन्यस्थितिबन्धस्वामित्वम् अनुभागबंधे माद्यादि०

वा असन्नी वा जहन्नगं करेइ, असंखिप्पद्धा दोण्हवि लब्भइ त्ति, मणुयतिरियाउगाणं एगिंदियादयो सव्वजहन्नगं ठिइं करेंति, असंखिप्पद्धा सव्वेसिं लब्भइ त्ति काउं । **'सेसाणं पज्जत्तो बायरएगिंदियविसुद्धो'** त्ति सेसाण ति भणियसेसाणं ८५ पगईणं सव्वासिं बायरएगिंदियपज्जत्तगो सव्वविसुद्धो सव्वजहन्नियं ठिइं बंधइ । सन्नी विसुद्धतरो, तहावि तहि सभावादेव ठिई महल्ली, एगिंदिएसु सव्वखुड्डली सभावादेव, एगिंदिएसु सव्वविसुद्धो बायरएगिंदियपज्जत्तगो त्ति तंमि सव्वजहन्ना ठिई भवइ ॥६२॥ **ठिइबंधो समत्तो ॥**

इयाणिमणुभागबंधस्स अवसरो, सो भण्णइ, तत्थ पुव्वं ताव साइयअणाइयपरूवणा कज्जइ—

घाईणं अजहन्नोणुक्कोसो वेयणीयनामाणं । अजहन्नमणुक्कोसो गोए अणुभागबंधम्मि ॥६३॥

साई अणाइ धुवअद्धुवो य बन्धो उ मूलपयडीण । सेसम्मि उ दुविगप्पो आउचउक्केवि दुविगप्पो ॥६४॥

व्याख्या—'घाईणं अजहन्नो' 'साई अणाइ' त्ति संबज्झइ, घाएति णाणदंसणचरित्तदाणाइलाभे त्ति घाइणो, णाणावरणदंसणावरणमोहणिज्जअंतराइगाणं अजहण्णो अणुभागबंधो **'साई अणाइ'** त्ति साइयाइचउविगप्पो । कहं ? भन्नइ, णाणदंसणावरणंतराइगाणं जहन्नमणुभाग सुहुमसंपराइगखवगो चरिमसमए वट्टमाणो बंधइ एगं समयं, मोहणिज्जस्स अणियट्टिखवगो चरिमसमए वट्टमाणो अ जहन्नाणुभागं बंधइ, सो य साइओ अद्धुवो य, तं मोत्तूण सेसं सव्वं अजहन्नं जाव उक्कसं ति । सुहुमसरागउवसामगंमि अजहन्नस्स बंधो फिट्टइ, उवसंतो जाओ, ततो पुणो परिवडंतस्स अजहन्नस्स साइओ

॥ १३५ ॥

... णियमा बंधवोच्छेय का ... त्ति । जहन्नउक्कोसाणुक्कोसे य पडुच भन्नइ[1], सेसंमि उ दुविगप्पो' त्ति जहन्नउक्कोसअणुक्कोसेसु जहन्नगे कारणं पुव्वुत्तं । इयाणिं उक्कोसाणुक्कोसं पडुच भन्नइ-एएसिं चउण्हं घाईकम्माणं उक्कोसगो अणुभागबंधो सन्निम्मि, मिच्छद्दिट्ठिम्मि पज्जत्तगंमि सव्वसंकिलिट्ठम्मि एक्कं वा दो व समया लब्भंति, सो साइओ अद्धुवो य । तं मोत्तूण सेसो सव्वो जाव जहन्नो ताव अणुक्कोसो । ततो उक्कोससंकिलेसाओ परिवडंतस्स अणुक्कोसं बंधंतस्स साइओ, पुणो जहन्नेणं अंतोमुहुत्तेणं उक्कोसेणं अणंताणंताहिं ओसप्पिणि उस्सप्पिणीहिं पुणो उक्कोससंकिलिट्ठो णियमा उक्कोसाणुभागं बंधइ, तं बंधंतस्स अणुक्कोसस्स अद्धुवो, उक्कोसस्स साइओ, एवं उक्कोसाणुक्कोसेसु परियट्टन्ति त्ति सव्वत्थ साइओ अधुवो य, दोवि मिच्छद्दिट्ठिम्मि लब्भंति त्ति काउं । अणुक्कोसो वेयणीयणामाणं' ति साइयअणाइयाइं संवज्झंति, वेयणीयणामाणं अणुक्कोसो अणुभागबंधो साइयाइचउविगप्पो वि लब्भइ । कहं ? भन्नइ, वेयणीयणामाणं उक्कोसो अणुभागबंधो सुहुमसंपराइगखवगस्स चरिमसमए लब्भइ एक्कं समयं, तब्बंधकेसु सव्वविसुद्धो त्ति काउं, सो य साइओ अद्धुवो य । तं मोत्तूणं सेसो जाव जहन्नो ताव सव्वोवि अणुक्कोसो, सुहुमसंपरागउवसामगस्स चरिमसमए णामवेयणियाणं बंधे वोच्छिन्ने उवसंतकसायट्ठाणाओ परिवडंतस्स अणुक्कोसाणुभागं बंधंतस्स साइओ, तं ठाणमपत्तपुव्वस्स अणाइओ, धुवो अभव्वाणं, उक्कोसबंधस्स तब्बंधवोच्छेयस्स

1 'पुच्छ' इति जे. ।

वा अभावात्, अद्धुवो भव्वाणं, णियमा बंधवोच्छेयं काहिंति त्ति । **'सेसम्मि उ दुविगप्पो'** त्ति उक्कोसजहन्नाजहन्नेसु ठाणेसु साइको अद्धुवो य बंधो, उक्कोसे कारणं पुव्वुत्तं, एएसिं दोण्हं जहन्नगं अणुभागबंधं सम्मदिट्ठी वा मिच्छदिट्ठी वा मज्झिमपरिणामो बंधइ । कहं ? भन्नइ, जइ विसुद्धो सुभाणं तिव्वं रसं बंधइ, अह संकिलिट्ठो तो असुभाणं रसं तिव्वं बंधइ, तेण मज्झिमपरिणामग्गहणं, त जहन्नेणं एक्कं समय उक्कोसेणं चत्तारि समया; तओ विसुद्धो वा संकिलिट्ठो वा अजहन्नं बंधइ, तस्स साइओ, पुणो मज्झिमपरिणामो कालंतरेण जहन्नं बंधइ, तस्स अजहन्नस्स अद्धुवो, जहन्नस्स साइओ, एवं जहन्नाजहन्नेसु परिभमंति संसारत्था जीव त्ति, तेण सव्वत्थ साइओ अद्धुवो य बंधो । **'अजहन्नमणुक्कोसो गोए अणुभागबंधंमि'** त्ति गोयस्स अजहन्नाणुक्कोसो बंधो साइयाइचउविगप्पोवि लब्भइ, कहं ? भन्नइ, गोयस्स उक्कोसाणुक्कोसो य जहा वेयणीयणामाणं तहा भावेयव्वं । इयाणिं जहन्नाजहन्नो भन्नइ । गोत्तस्स सव्वजहन्नो अहे सत्तमपुढविणेरइयस्स सम्मत्तं उप्पाएमाणस्स अहापवत्ताईकरणाइं करेत्तु मिच्छत्तस्स अंतरकरणं किच्चा पढमठिईए परिहायमाणीए जाव चरिमसमयमिच्छद्दिट्ठी जाओ, तस्स णीयागोयतिरियदुगाइं भवपच्चएण जाव मिच्छत्तभावो ताव बज्झंति त्ति तस्स चरिमसमयमिच्छदिट्ठीस्स णीयगोत्तं पडुच्च सव्वजहन्नगो अणुभागबंधो एक्कं समयं लब्भइ, तम्हा साइको अद्धुवो य, तओ से[1] काले सम्मत्तं पडिवन्नस्स गोत्तस्स अजहन्नओ बंधो, सम्मद्दिट्ठी उच्चागोत्तं बंधइ तं जहन्नं न भवइ त्ति, तत्थ अजहन्नस्स

1 'तओ सेस' इति जे. ।

॥ १३७ ॥

साइओ, अणाइओ तं ठाणमपत्तपुव्वस्स, ध्रुवाऽध्रुवौ पूर्ववत् । 'सेसंमि उ दुविगप्पो' त्ति उक्कोसजहन्नेसु साइको अद्धुवो य, कारणं भणियं । 'आउच्चउक्केवि दुविगप्पो' त्ति आउगस्स उक्कोसाणुक्कोस जहन्नाजहन्नो अणुभागबंधो साइओ अद्धुवो य, अद्धुवबंधित्वादेव ॥६४॥

मूलपगईणं साइयाइपरूवणा कया । इयाणि उत्तरपगईणं भन्नइ—

अट्ठण्हमणुक्कोसो तेयालाणमजहन्नगो बंधो । णेओ हि चउविगप्पो सेसतिगे होइ दुविगप्पो ॥६५॥

व्याख्या—'अट्ठण्हमणुक्कोसो' त्ति 'अट्ठण्हमणुक्कोसो' 'णेओ हि चउविगप्पो' त्ति संबज्झइ, तेयकम्मइगसरीरपसत्थवन्नगंधरसफासअगुरुलहुगणिम्माणमिति । एएसिं अट्ठण्हं पगईणं अणुक्कोसो अणुभागबंधो साइयाइचउविगप्पोवि लब्भइ । कहं ? भन्नइ एएसिं अट्ठण्हं कम्माणं अपुव्वकरणखवगस्स तीसाणं बंधवोच्छेयसमए उक्कोसो अणुभागबंधो भवइ एक्कं समयं, तब्बंधकेसु अच्चंतविसुद्धो त्ति काउं, तं मोत्तूण सेसं सव्वं अणुक्कोसं जाव जहन्नंपि । उवसामगंमि बंधे वोच्छिन्ने उवसंतकसायो जाओ, तओ परिवडित्तु तं ठाणं पत्तस्स अणुक्कोसं बंधंतस्स साइओ भवति, तं ठाणमपत्तपुव्वस्स अणाइओ, ध्रुवाऽध्रुवौ पूर्ववत् । 'सेसतिगे होइ दुविगप्पो' त्ति उक्कोसजहन्नाजहन्नेसु साइओ अद्धुवो य । कहं भन्नइ, उक्कोसस्स साइअद्धुवत्तं पुव्वुत्तं, एएसिं अट्ठण्हं जहन्नगं सन्निमिच्छादिट्ठिम्मि पज्जत्तगम्मि उक्कोससंकिलिट्ठंमि लब्भइ एक्कं वा दो वा समया, तओ विसुद्धो अजहन्नं बंधइ, पुणो कालंतरेण संकिलिट्ठो जहन्नयं बंधइ, एवं जहन्नाजहन्नेसु सव्वे

संसारत्था जीवा परिभमंति त्ति दोसु वि साइओ अद्धुवो य । 'तेयालाणमजहन्नगो बंधो णेओ हि चउविगप्पो' त्ति पंच णाणावरणा नव दंसणावरणा मिच्छत्तं सोलस कसाया भयदुगुंच्छअपसत्थवन्नगधरसफासउवघायपंचअंतराइगमिति एयासिं तेयालीसाए पगईणं अजहन्नो अणुभागबंधो साइयाइचउविगप्पोवि लब्भइ । कहं ? भन्नइ, । पंच णाणावरणं चत्तारि दंसणावरणं पंचण्हमंतराइगाणं जहन्नगो अणुभागबंधो सुहुमरागखवगस्स चरिमसमए वट्टमाणस्स लब्भइ एक्कं समयं तं साइयं अधुवं, तं मोत्तूण सेसं सव्वं अजहन्नं जाव उक्कोसंपि, उवसामगंमि बंधे वोच्छिन्ने तओ परिवडंतस्स साइयाइया योज्या पूर्ववत् । चउण्ह संजलणाण अणियट्टिखवगम्मि अप्पप्पणो बंधवोच्छेयसमए जहन्नगो अणुभागबंधो एक्केक्कं समयं लब्भइ, सो साइओ अद्धुवो य । उवसमसेढीए बंधवोच्छेयं करेत्तु, पुणो परिवडंतस्स अजहन्नस्स साइयादयो योज्या पूर्ववत् । णिद्दापयलाअप्पसत्थवन्नाइउवघायभयदुगुंच्छाणं अपुव्वकरणखवगम्मि अप्पप्पणो बंधवोच्छेयसमए जहन्नगो अणुभागबंधो एक्केक्कं समयं लब्भइ, तं मोत्तूण सेसं सव्वं अजहन्न, उवसमसेढीए बंधवोच्छेयं करेत्तु पुणो बंधकस्स अजहन्नस्स साइयाई योज्या पूर्ववत् । चउण्हं पच्चक्खाणावरणीयाणं देसविरओ संजमं पडिवज्जिउकामो अच्चंतविसुद्धो चरिमसमयदेसविरओ सव्वजहन्नं अणुभागं बंधइ तव्बंधगेसु सव्वविसुद्धो त्ति काउं एक्कं समयं, सो साइओ अद्धुवो य । त मोत्तूण सेसं सव्वं अजहन्नं, बंधवोच्छेयं काउं संजयठाणाओ पुणो परिवडंतस्स अजहन्नस्स साइयाई योज्या पूर्ववत् । चउण्हं अपच्चक्खाणावरणीयाणं असंजयसम्मद्दिट्ठी खइगसम्मत्तं संजमं च जुगवं पडिवज्जिउंकामो अच्चंतविसुद्धो चरिमसमयअसंजयसम्मद्दिट्ठी सव्वजहन्नमणुभागं बंधइ एगं समयं, तं मोत्तूण सेसं सव्वं अजहन्नं, बंधवोच्छेयं काउं संजयदेसविरइठाणाओ वा परिवडंतस्स साइयाई योज्या । थीणगिद्धि-

॥ १३९ ॥

तिगमिच्छत्तस्स चउण्हमणंताणुबंधीणं अट्ठण्हं कम्माणं मिच्छद्दिट्ठी सम्मत्तं संजमं च जुगवं पडिवज्जित्तुकामो अच्चंत-विसुद्धो चरिमसमयमिच्छद्दिट्ठी सव्वजहन्नाणुभागं बंधइ एगं समयं, तं साइयं अद्धुवं। तं मोत्तूण सेसं सव्वमजहन्नं, बंधवोच्छेयं करेत्तु संजय-संजयाऽसंजयअसंजयसम्मद्दिट्ठीठाणाओ परिवडंतस्स अजहन्नबंधकस्स साइयाईया योज्या पूर्ववत्। 'सेसतिगे होइ दुविगप्पो' त्ति जहन्नुक्कोसाणुक्कोसेसु अणुभागबंधो साइओ अद्धुवो य। कहं? भन्नइ, जहन्नगे कारणं पुव्वभं, एतेसिं तेयालीसाए पगडीणं उक्कोसं सन्निपंचिंदिओ मिच्छद्दिट्ठी सव्वपज्जत्तगो सव्वसंकिलिट्ठो बंधइ एक्कं वा दो वा समया, तं च साइयमद्धुवं, पुणो विसुद्धो अणुक्कोसं बंधइ; तस्स साइओ, पुणोवि कालंतरेण सव्वुक्कोससंकिलिट्ठो उक्कोसं बंधइ, एवं पुणो विसुद्धो अणुक्कोसं बन्धति, एवं पुणो उक्कोसं; एवं उक्कोसअणुक्कोसेसु परिभमंति सव्वे संसारत्था जीवा इति सव्वत्थ साइयमधुवं ति ॥ ६५ ॥

उक्कोसमणुक्कोसो जहन्नमजहन्नगो य अणुभागो । साईअद्धुवबंधो पयडीणं होइ सेसाणं ॥ ६६ ॥

व्याख्या—'उक्कोसाणुक्कोसो' त्ति उक्कोसो अणुक्कोसो जहन्नो अजहन्नो य अणुभागबंधो सेसाणं सव्व-पगईणं ७३ साइओ अद्धुवो य, कहं? अध्रुवबन्धत्वादेव ॥ ६६ ॥

साइयअणाइयपरूवणा कया। इयाणिं सुभासुभाणं पगईणं उक्कोसजहन्नाणुभागं केण णिव्वत्तेइ त्ति तन्निरूवणत्थं भन्नइ-

सुभपयडीण विसोहीइ तिव्वमसुहाण संकिलेसेणं । विवरीए उ जहन्नो अणुभागो सव्वपयडीणं॥६७॥

व्याख्या— **'सुभपगडीण विसोहीइ तिव्वं'** ति सव्वसुभपगईणं उक्कोसाणुभागं मव्व विसुद्धो तव्बंधकेसु णिव्वत्तेइ । **'असुभाण संकिलेसेणं'** ति सव्वअसुभाणं पगईणं उक्कोसाणुभागं तव्बंधकेसु सव्वुक्कोससंकिलिट्ठो बंधइ । **'विवरीए उ जहन्नो अणुभागो सव्वपगडीणं'** उक्तविवरीयाओ जहन्नगं भवइ, सुहपगईणं तव्बंधकेसु सव्वसंकिलिट्ठो जहन्नयं बंधइ । असुभपगईण तव्बंधकेसु सव्वविसुद्धो जहन्नाणुभागं बंधइ ॥ ६७ ॥

सुभासुभपगइणिरूवणत्थं भन्नइ—

बायालंपि पसत्था विसोहिगुणउक्कडस्स तिव्वाओ । बासीइमप्पसत्था मिच्छुक्कडसंकिलिट्ठस्स ॥ ६८ ॥

व्याख्या—**'बायालंपि पसत्था विसोहिगुणउक्कडस्स तिव्वाओ'** त्ति सायावेयणीयं, तिरियमणुयदेवाउगाणि, मणुयगई देवगई, पंचिंदियजाई, पंचसरीराणि, समचउरंससंठाणं, वज्जरिसभणारायसंघयणं, तिन्नि अंगोवंगाणि, पसत्थवन्नगंधरसफासमणुयदेवाणुपुव्विअगुरुलहुपराघायउस्सासआयवउज्जोयपसत्थविहायगइतसाइदसगं णिम्मेणं तित्थगरउच्चागोत्तमिति । एयाओ बायालीसं सुभगपगईओ विसोहिगुणेणं जो **'उक्कडो'**–प्रकृष्टो तस्स **'तिव्वाओ'** त्ति तिव्वाणुभागाओ भवंति । **'बासीइमप्पसत्था मिच्छुक्कडसंकिलिट्ठस्स'** त्ति पंच णाणावरणा, णव दंसणावरणा, असायवेयणीयं, मिच्छत्तं, सोलस कसाया, णव नोकसाया, निरयाउगं, णिरयगई, तिरियगई, एगिंदियविगलिंदियजाई, आइमवज्जाणि संठाणसंघयणाणि, अप्पसत्थवन्नगंधरसफासणिरयतिरियाणुपुव्वी उवघाय अपसत्थविहायगई थावराइदसकं णीयागोत्तं पंच अंतराइकमिति । एयाओ बासिई असुभपगईओ मिच्छद्दिट्ठिस्स उक्कोससंकिलेसे वट्टमाणस्स तिव्वाओ उक्कोसाणुभागाओ भवंति ॥६८॥

॥१४१॥

बायालीसं सुभपगईओ विसोहिगुणउक्कडस्स तिव्वाओ भवंति त्ति सामन्नेणं भणियं, तस्सेव विभागदरिसणत्थं भन्नति

आयवनामुज्जोयं माणुसतिरियाउगं पसत्थासु । मिच्छस्स हुंति तिव्वा सम्मद्दिट्ठिस्स सेसाओ ।।६९।।

व्याख्या—'**आयवणामुज्जोयं माणुसतिरियाउगं पसत्थासु । मिच्छस्स होंति तिव्व**' त्ति आयवणामं, उज्जोयणामं, मणुयाउगं, तिरियाउगं व । पसत्थपगईसु एयाओ चत्तारि पगईओ मिच्छद्दिट्ठिस्स तिव्वाणुभागाओ भवंति । कहं ? भन्नइ, तिरियाउगआयवुज्जोयणामाणं बंध एव सम्मद्दिट्ठीणं णत्थि, मणुयाउगस्स उक्कोसो तिपलिओवमठिईसु लब्भइ । तिरियमणुया सम्मद्दिट्ठिणो मणुस्साउगं ण बन्धंति, देवणेरइगा सम्मद्दिट्ठिणो मणुस्साउगं कम्मभूमिजोग्गं बन्धंति, कम्मभूमिसु उव्वज्जंति त्ति काउं, भोगभूमिजोग्गं ण बन्धंति त्ति । कम्हा ? तेसु ण उववज्जंति त्ति काउं, तम्हा एयासिं चउण्हं उक्कोसो मिच्छादिट्ठिस्सेव । '**सम्मदिट्ठिस्स सेसाउ**' त्ति एयाओ चत्तारि मोत्तूण सेसाओ सव्वाओवि सुभपगईओ सम्मद्दिट्ठिस्स उक्कोसाणुभावाओ भवंति । कहं ? भन्नइ, मिच्छद्दिट्ठीओ सम्मद्दिट्ठी अणंतगुणविसुद्धो त्ति काउं ।। ६९ ।।

इयाणिं विसेससामित्तं भन्नइ—

देवाउमप्पमत्तो तिव्वं खवगा करिंति बत्तीसं । बन्धंति तिरियमणुया एक्कारस मिच्छभावेणं ।।७०।।

व्याख्या—'**देवाउगमप्पमत्तो**' त्ति देवाउगस्स अप्पमत्तसंजओ तिव्वाणुभागं बंधइ । कहं ? भन्नइ, तब्बंधकेसु अच्चंतविसुद्धो त्ति काउं । मिच्छद्दिट्ठी असंजयसम्मद्दिट्ठी संजयासंजय-पमत्तअप्पमत्तसंजया य परंपराओ अणंतगुणविसुद्ध त्ति ।

'तिव्वं खवगा करेंति बत्तीसं' ति बत्तीसाए पगईणं खवगा तिव्वाणुभागं बंधंति । कहं ? भन्नइ, देवगई, पंचिंदियजाई, वेउव्वियआहारगतेयगकम्मइगशरीरं, समचउरंससंठाणं वेउव्वियआहारगअंगोवंगं, पसत्थवन्नगंधरसफासदेवगइपाओग्गाणुपुव्वी, अगुरुलहुगं पराघायं उस्सासं पसत्थविहायगई तसाइदसक्कं जसकित्तिवज्जं, णिम्मेणतित्थकरमिति । एयासिं एगूणतीसाए पगईणं अपुव्वकरणो खवगो तीसाए कम्मपगईणं बंधवोच्छेयसमए वट्टमाणो तिव्वाणुभागं बधइ, एक्कं समयं । कहं ? तब्बंधकेसु अन्नो तो विसुद्धो णत्थि त्ति । सायावेयणीयजसकित्तिउच्चागोत्ताणं सुहुमसंपरायखवगो चरिमसमए वट्टमाणो उक्कसाणुभागं बंधइ, एक्क समयं । कहं ? भण्णइ, दुचरिमसमयाओ चरिमसमए अणंतगुणविसुद्धो त्ति काउं । **'बंधंति तिरियमणुया एक्कारस मिच्छभावेणं'** ति देवाउगवज्जाणि तिन्नि आउगाणि निरयदुगं विगलिंदियतिगं सुहुमं अपज्जत्तकं साधारणमिति एयासिं एक्कारसण्हं पगईणं उक्कोसाणुभागं तिरियमणुया मिच्छद्दिट्ठीणो बंधति । कहं ? भन्नइ, तिरियमणुयाउवज्जाओ सेसाओ णववि पगईओ देवणेरइगा भवपच्चएणं ण बंधंति । मणुयतिरियाउगाणं उक्कोसाणुभागो भोगभूमिगेसु होइ, तेसु देवणेरइगा ण उववज्जंति त्ति अओ तेसु उक्कोसो ण लब्भइ त्ति । तम्हा तिरियमणुया सन्निणो मिच्छद्दिट्ठिणो तप्पाओगविसुद्धा तिरियमणुयाउगाणं उक्कोसाणुभागं बंधति, तओ विसुद्धतरा देवाउगं बंधंति, अच्चंतविसुद्धो आउगं न बंधइ, तम्हा तप्पाओगविसुद्ध त्ति । णिरयाउगस्स तप्पाओगसंकिलिट्ठो उक्कोसाणुभागं बंधइ अच्चंतसंकिलिट्ठस्स आउगबंधो णत्थि त्ति । णिरयगइणिरयाणुपुव्वीणं उक्कोससंकिलिट्ठो उक्कोसाणुभागं बंधइ एक्कं वा दो वा समया, उक्कोससंकिलेसस्स एत्तिओ कालोत्थि । विकलसुहुमतिकाण तिरियमणुया सन्निणो मिच्छद्दिट्ठी तप्पाओग्गसंकिलिट्ठा उक्कोसाणुभागं

॥ १४३ ॥

बंधंति । तओ संकिलिट्ठतरा नरयगइपाओग्गं बंधंति त्ति तम्हा तप्पाओग्गगहणं ॥७०॥

पंच सुरसम्मदिट्ठी सुरमिच्छो तिन्नि जयइ पयडीओ । उज्जोयं तमतमगा सुरनेरइया भवे तिण्हं ॥७१॥

व्याख्या——'**पंच सुरसम्मदिट्ठि**' त्ति मणुयगई ओरालियसरीरं ओरालियअंगोवंगं वज्जरिसभणारायसंघयणं मणुयाणुपुव्वी य । एएसिं पंचण्हं पगईणं उक्कोसाणुभागं देवो सम्मदिट्ठी अच्चंतविसुद्धो बंधइ, एक्कं वा दो वा समया, विसुद्धिएवि एत्तिओ कालो, मिच्छदिट्ठीओ सम्मदिट्ठो अणंतगुणविसुद्धो त्ति । णेरइगावि सम्मदिट्ठिणो अच्चंतविसुद्धा एताओ बंधंति, तेसिं किं उक्कोसं ण भवति इति चेत् ? उच्यते, णेरइगा तिव्ववेयणाभिभूतत्वात् संकिलिट्ठतरा, अन्नं च तित्थकररिद्धिदंसणपवयणसुणणाओ[1] देवाणं तिव्वा विसोही भवति, णेरइकाणं तं णत्थि, तम्हा देवेसु चेव उक्कोसो लब्भइ । '**सुरमिच्छो तिन्नि जयइ पगईओ**' त्ति एगिंदियआयवथावराणं उक्कोसाणुभागं ईसाणाओ हेट्ठिल्ला देवा बंधंति । कहं ? भन्नइ, ते अच्चंतसंकिलिट्ठा एगिंदियपाओग्गं बंधंति त्ति काउं । आयवस्स तप्पाओग्गविसुद्धो, कहं ? जो एगिंदियजाईए सव्वखुड्डलं ठिइं बंधइ तब्बंधकेसु अच्चंतविसुद्धो 'सुभपयडीण विसोहीइ' [गाथा ६७] त्ति वयणाओ । तओ विसुद्धो बेइंदियजाइं बंधइ, तओ विसुद्धो तेइंदियजाइं, तओ विसुद्धो चउरिंदियजाइं, तओ विसुद्धो पंचिंदियतिरियपाउग्गं, तओ विसुद्धो मणुयगइपाओग्गं बंधइ त्ति, तम्हा तप्पाओग्गगहणं । '**जयइ**' त्ति बंधइ । '**उज्जोयं तमतमगा**' त्ति उज्जोवणामं तमतमाए

1 'वयणसुणणाओ' इति मु.

णेरइगो तिन्नि करणाइं करेत्तु संमत्तं पडिवज्जिउकामो चरिमसमयमिच्छद्दिट्ठी उज्जोयणामस्स उक्कोममणुभागं बंधइ । कहं? भवपच्चयाओ तिरिगइपाओग्गं बंधइ, तब्बंधकेसु अन्नो तव्विसुद्धो णत्थि त्ति काउं । '**सुरनेरइया भवे तिण्हं**' ति तिरियगइसेवट्टसंघयणतिरियाणुपुव्वीणं देवणेरइका सव्वसंकिलिट्ठा उक्कोसाणुभागं बंधंति, तिरियमणुया अच्चंतसंकिलिट्ठा णिरयपाओग्गं बंधंति त्ति तेसु ण लब्भइ । छेवट्ठस्स उक्कोमो ईसाणंतेसु देवेसु ण लब्भइ । कहं ? ते अच्चंतसंकिलिट्ठा एगिंदियपाओग्गं बंधंति त्ति काउं ॥ ७१ ॥

सेसाणं चउगइया तिव्वणुभागं करिंति पयडीणं । मिच्छद्दिट्ठी नियमा तिव्वकसाउक्कडा जीवा ॥७२॥

व्याख्या–'**सेसाणं चउगइय**' त्ति भणियसेसाणं सव्वपगईणं उक्कोसाणुभागं चउगइकाविमिच्छादिट्ठीणो तिव्वकसाया तिव्वसंकिलिट्ठा य जीवा बंधंति । कहं ? भन्नइ, सव्वेसिं सव्वाओ जोग्गाओ त्ति काउं । णाणावरणं दंसणावरण असायवेयणीयं मिच्छत्तं सोलसकसाया नपुंसकवेयअरइसोकभयदुगुंच्छा हुंडसंठाणं अप्पसत्थवन्नगंधरसफासउवघायअप्पसत्थविहायगईअथिरअसुभदुभगदुस्सरअणाएज्जअजसकित्तिणीयागोत्तपंचअंतराइगमिति । एएसिं कम्माणं चउगइकावि मिच्छादिट्ठिणो सव्वसंकिलिट्ठा उक्कोसाणुभागं बंधंति । हासरइइत्थिवेयपुरिसवेयआइअंतवज्जसंठाणसंघयणाणं तप्पाओगसंकिलिट्ठो त्ति वत्तव्व । [117]जइ तिरियमणुया तो णिरयगइसहियं बद्धमाणा एएसिं ज्ञानावरणादीनां उक्कोसमणुभागं बंधंति, जाव अट्ठारससागरोवम-

(११७) सेसाणं चउगइ [ये]' त्यादिगाथाचूर्णौ जइ तिरियमणुया तो नरयगइसहियं बधमाणे' त्यादि ।

कोडाकोडीओ बंधंति । तओ विसुद्धतरा एगिंदियजाइसुहुमअपज्जत्तगसाहारणतिगसहियं तिरियगइणामं अट्ठारससागरोवम-कोडाकोडीओ बंधंति । तओ विसुद्धतरा बेइंदियजाइं सेवट्टसहियं अट्ठारस किंचूणं । तओ विसुद्धतरा तेइंदियजाइसहियं अट्ठारससागरोवमं किंचूणं । तओ चउरिंदियसहियं अट्ठारससागरोवमं । तओ वामणं कीलियं च पंचिंदियजाइसहियं अट्ठारस-सागरा किंचूणा बंधंति,एवं जाव सोलससागरोवमकोडाकोडीओ बंधंति । तओ विसुद्धतरो खुज्जअद्धनारायसहियं तिरियगइपाओग्गं सोलससागरोवमकोडाकोडीओ बंधइ जाव पन्नरस त्ति । तओ विसुद्धतरो अतीयसंठाणसंघयणसहियं मणुस्सगइपाओग्गं पन्न-रससागरोवमकोडाकोडीओ बंधन्ति, तओ विसुद्धतरो साइणारायसहियं चोद्दससागरोवमकोडाकोडीओ बंधन्ति, तओ विसुद्धतरो निग्गोहसंठाणवज्जणारायसंघयणसहियं बारससागरोवमकोडाकोडी बंधन्ति, एएसिं पंचण्हं संठाणसंघयणाणं अप्पप्पणो उक्कोसठिइबंधे उक्कोसाणुभागसंभवो होज्जा, असुभत्ताओ, तम्हा आइअंतिमवज्जाणं तप्पाओग्गसंकिलिट्ठो त्ति वत्तव्वं । जइ देवणेरइगा तो पुव्वुत्ताणं उक्कोसं उक्कोससंकिलिसेणं तिरियगइहुडसेवट्टसहियं बंधंति, तओ विसुद्धतरा वामणकीलिय-

---

तिर्यञ्चो मनुष्याश्च नरकगतावेव बध्यमानायामासां षट्पञ्चाशतो मतिज्ञानावरणादीनां प्रकृतीनामुत्कृष्टसंक्लेशबन्धनीयोत्कृ-ष्टाऽनुभागानां नरकगतेरेवोत्कृष्टस्थितेः विंशतेर्वाष्टादशकोटीकोटयस्तावदुत्कृष्टमनुभाग 卐 बध्नन्ति । अष्टादशकोटिकोटि-बन्धप्रस्ताव एव तिर्यग्गतियोग्यबन्धसम्भवेन मनागध्यवसायमान्द्यात्सर्वासामप्युत्कृष्टानुभागबन्धसद्भावादिति ।

卐 टिप्पनकृदाशयं वयं न विद्मः, यतोऽशुभप्रकृतीनामुत्कृष्टरसबन्ध उत्कृष्टस्थितेरेव बन्धेन सह प्राप्यत इति कर्मप्रकृतिबन्धनकरणस्या-नुकृष्टयधिकारेण ज्ञायते ।

कोडाकोडीओ बंधंति । तओ विसुद्धतरा एगिंदियजाइसुहुमअपज्जत्तगसाहारणतिगसहियं तिरियगइणामं अट्ठारससागरोवम-कोडाकोडीओ बंधंति । तओ विसुद्धतरा बेइंदियजाइं सेवट्टसहियं अट्ठारस किंचूणं । तओ विसुद्धतरा तेइंदियजाइसहियं अट्ठारससागरोवमं किंचूणं । तओ चउरिंदियसहियं अट्ठारससागरोवमं । तओ वामणं कीलियं च पंचिंदियजाइसहियं अट्ठारस-सागरा किंचूणा बंधंति, एवं जाव सोलससागरोवमकोडाकोडीओ बंधंति । तओ विसुद्धतरो खुज्जअद्धनारायसहियं तिरियगइपाओग्गं सोलससागरोवमकोडाकोडीओ बंधइ जाव पन्नरस त्ति । तओ विसुद्धतरो अतीयसंठाणसंघयणसहियं मणुस्सगइपाओग्गं पन्न-रससागरोवमकोडाकोडीओ बंधन्ति, तओ विसुद्धतरो साइणारायसहियं चोद्दससागरोवमकोडाकोडीओ बंधन्ति, तओ विसुद्धतरो निग्गोहसंठाणवज्जणारायसंघयणसहियं बारससागरोवमकोडाकोडी बंधन्ति, एएसिं पंचण्हं संठाणसंघयणाणं अप्पप्पणो उक्कोसठिइबंधे उक्कोसाणुभागसंभवो होज्जा, असुभत्ताओ, तम्हा आइअंतिमवज्जाणं तप्पाओग्गसंकिलिट्ठो त्ति वत्तव्वं । जइ देवणेरइया तो पुव्वुत्ताणं उक्कोसं, उक्कोससंकिलिसेणं तिरियगइहुंडसेवट्टसहियं बंधंति, तओ विसुद्धतरा वामणकीलिय-

---

तिर्यञ्चो मनुष्याश्च नरकगतावेव बध्यमानायामासां षट्पञ्चाशतो मतिज्ञानावरणादीनां प्रकृतीनामुत्कृष्टसक्लेशबन्धनोयोत्कृ-ष्टाऽनुभागानां नरकगतेरेवोत्कृष्टस्थितेः विंशतेर्यावदष्टादशकोटीकोटयस्तावदुत्कृष्टमनुभाग 卐 बध्नन्ति । अष्टादशकोटिकोटि-बन्धप्रस्ताव एव तिर्यग्गतियोग्यबन्धसम्भवेन मनागध्यवसायमान्द्यात्सर्वासामप्यनुत्कृष्टानुभागबन्धसद्भावादिति ।

卐 टिप्पनकृदाशय वय न विद्मः, यतोऽशुभप्रकृतीनामुत्कृष्टरसबन्ध उत्कृष्टस्थितेरेव बन्धेन सह प्राप्यत इति कर्मप्रकृतिबन्धनकरणस्या-नुकृष्टयधिकारेण ज्ञायते ।

सहियं, तत्तो विसुद्धतरा खुज्जअद्धणारायसहियं, तओ विसुद्धयरा साइणारायसहियं, ततो विसुद्धतरा णिग्गोहसंठाणवज्ज-णारायसहियं उक्कोसं बंधंति । जइ ईसाणंता देवा तो पुव्वुत्ताणं उक्कोसं वीसं सागरोवमकोडाकोडी थावरएगिंदियजाइसहियं बंधंति । ततो विसुद्धतरा पंचिंदियजाइतमसेवट्टसहियं अट्ठारस, तओ विसुद्धयरा वामणखीलियसहियं किंचूणं अट्ठारस-सागरोवमकोडाकोडी बंधंति । तओ विसुद्धयरा खुज्जद्धणारायसहियं सोलसागरोवमकोडाकोडीओ । तओ विसुद्धतरा मणुस्सगइ सहियाणि ताणि चेव अईयसंठाणसंघयणाणि पन्नरससागरोवमकोडाकोडी । तओ विसुद्धतरा सादिणारायसहियं चोद्दस-सागरोवमकोडाकोडी । तओ विसुद्धतरा णिग्गोहवज्जणारायसहियं बारससागरोवमकोडाकोडी । तम्हा एएसिं तप्पाओग्ग-संकिलिट्ठो त्ति वत्तव्वं, एत्थ सम्मदिट्ठिमिच्छदिट्ठि त्ति जं नामग्गहणं कयं,त तेसु चेव सम्मद्दिट्ठिमिच्छद्दिट्ठिसु उक्को-साणुभागपाओग्गाणं पयडीणं जाणावणत्थं । 'तिव्वकसाउक्कड' त्ति जं भणियं; तत्थ इगविगलअसण्णिपंचेंदियअपज्जत्तगनरति-रियअसंखेज्जवासाउयमणुसोववायदेवा य एएसिं सव्वाणणुक्कोससंकिलिट्ठ त्ति उक्कोसाणुभागबंधप्पाउग्गा न भवन्ति त्ति तेसिं पडिसेहणत्थं भणियं॥७२॥ उक्कोसाणुभागबंधो भणितो, इयाणिं जहन्नाणुभागबंधो भन्नइ ।

चोद्दस सरागचरिमे पंचगमनियट्टि नियट्टिएक्कार । सोलस मंदणुभागं संजमगुणपत्थिओ जयइ ॥७३॥

व्याख्या—'**चोद्दस सरागचरिमे**' त्ति पंचणाणावरणं चउदंसणावरणं पंचण्हमंतराइगाणं एतेसिं चोद्दसण्हं कम्माणं सुहुमसंपरायखवगो चरिमसमए वट्टमाणो जहन्नाणुभागं करेइ, कहं ? तब्बंधकेसु अच्चंतविसुद्धो त्ति काउ, एगं

॥ १४७ ॥

समयं लभति । 'पंचगमनियट्टि' त्ति पुरिसवेयस्स चउण्ह संजलणाणं य, अणियट्टिखवगो अप्पप्पणो बंधवोच्छेदसमए वट्टमाणो जहन्नाणुभागं करेइ एक्केक्कं समयं । कहं ? तब्बंधकेसु विसुद्धो त्ति काउं । 'नियट्टि एक्कारं' ति णिद्दापयला-अप्पसत्थवन्नगंधरसफासउवघातहासरतिभयदुगुंछाणं एतेसिं एक्कारसण्हं अपुव्वकरणखवगो एएसिं अप्पप्पणो बंधवोच्छेदसमए वट्टमाणो जहन्नाणुभागं करेइ एक्केक्कं समयं, तब्बंधकेसु सव्वविसुद्धो त्ति । 'सोलस मंदणुभागं संजमगुणपत्थिओ जयति' त्ति थीणगिद्धितिगं मिच्छत्तं संजलणवज्जबारसकसाया एएसिं सोलसण्हं कम्माणं संजमं से काले पडिवज्जत्ति त्ति तस्स जहन्नं भवति । कहं ? थीणगिद्धितिगमिच्छत्ताणंताणुबंधीणं एतेसिं अट्ठण्हं कम्माणं चरिमसमयमिच्छद्दिट्ठी से काले संमत्तं संजमं च जुगवं पडिवज्जिउकामो जहन्नाणुभागं करेइ । अपच्चक्खाणावरणाणं असंजयसम्मद्दिट्ठी से काले संजमं पडिवज्जिउकामो जहन्नं करेइ, कारण भणियं । पच्चक्खाणावरणाणं देसविरयस्स से काले संजमं पडिवज्जिउकामस्स जहन्नं भवति, कारणं भणियं ॥७३॥

आहारमप्पमत्तो पमत्तसुद्धो उ अरइसोगाणं । सोलस माणुसतिरिया सुरनारगतमतमा तिन्नि ॥७४॥

व्याख्या—'**आहारमप्पमत्तो**' त्ति आहारदुगस्स अप्पमत्तसंजओ से काले पमत्तभावं पडिवज्जिउकामो मंदाणुभावं करेति । कहं ? तब्बंधकेसु अच्चंतसंकिलिट्ठो त्ति काउं । '**पमत्तसुद्धो उ अरतिसोगाणं**' ति अरतिसोगाणं पमत्तसंजओ से काले अप्पमत्तभावं पडिवज्जिउकामो जहन्न करेइ । कहं ? तब्बंधकेसु अच्चंतविसुद्धो त्ति काउं । '**सोलस**

माणुसतिरिय' त्ति चत्तारि आउगाणि णिरयदेवगतितदाणुव्वीओ वेउव्वियसरीरं वेउव्वियंगोवंगं विगलतिगं सुहुमं अपज्जत्तकं साहारणं ति एतेसि सोलसण्हं कम्माणं तिरियमणुया जहन्नाणुभागं करेति । कहं ? भन्नइ, णिरयाउगस्स जहन्नाणुभागं दसवाससहस्सियं ठिति णिव्वत्तेतो तप्पाओग्गविसुद्धो बंधइ, विसुद्धस्स बंधो णत्थि त्ति । सेसाणं तिण्हमायुगाणं अप्पप्पणो जहन्नकं ठितिं णिव्वत्तेंतो तप्पाओग्गसंकिलिट्ठो जहन्नाणुभागं करेइ, अइसंकिलिट्ठस्स बंधो णत्थि त्ति काउं । देवणेरइगा तिरियमणुयाउगाणं जहन्नियं ठितिं ण णिव्वत्तेंति, तेसु ण उववज्जंति त्ति काउं । निरयदुगस्स अप्पप्पणो जहन्नठिइं बंधमाणो तप्पाओग्गविसुद्धो जहन्नाणुभागं करेइ, तब्बंधकेसु अच्चंतविसुद्धो त्ति काउं । विसुद्धयरा तिरियगइयाइं[1] बंधंति त्ति तप्पाओग्गगहणं । वेउव्वियदुगस्स जहन्नाणुभागं निरयगइसहियं वीसं सागरोवमकोडाकोडिं बंधमाणो बंधति । कहं ? भन्नइ, तब्बंधकेसु अच्चंतसंकिलिट्ठो त्ति काउं । देवदुगस्स अप्पप्पणो उक्कोसठितिं बंधमाणो तप्पाओग्गसंकिलिट्ठो जहन्न करेइ, तब्बंधकेसु अच्चंतसंकिलिट्ठो त्ति काउं । तओ संकिलिट्ठतरो मणुस्सगतिआदि बधति त्ति तप्पाओग्गगहण । विगलतिगसुहुमतिगाणं तप्पाओग्गविसुद्धो जहन्न करेइ, जइ विसुद्धो तो पचेंदियजाइं बंधइ त्ति तेण तप्पाओग्गगहणं, एयाओ भवपच्चयाओ देवणेरइका ण बंधंति त्ति । '**सुरणारगतमतमा तिन्नि**' त्ति सुरणारगा तिन्नि तमतमा तिन्नि त्ति ओरालियसरीरं ओरालियंगोवगं उज्जोवमिति एतासि तिण्हं जहन्नाणुभागं देवा णेरइगा तिरियगतिसहियं वीसंसागरोवमकोडा-

---

1 'तिरियगइ' इति जे० ।

||१४९||

कोडिं बंधमाणा, तत्थवि उक्कोसे संकिलेसे वट्टमाणा बंधंति, तव्बंधकेसु अच्चंतसंकिलिट्ठा त्ति काउं । तिरियमणुया अच्चंतसंकिलिट्ठा णिरयगइपाओग्गं बंधंति त्ति तेण तेसु ण लब्भति, ओरालियअंगोवंगस्स ईसाणंतेसु देवेसु जहन्नं ण लब्भइ । कहं ? ते अच्चंतसंकिलिट्ठा एगिंदियजातिं बंधंति त्ति । **'तमतमा तिन्नि'** त्ति तिरियगतितिरियाणुपुव्विणीयागोत्ताणं अहे सत्तमपुढविणेरइको सम्मत्ताहिमुहो करणाइं करेत्तु चरिमसमए मिच्छद्दिट्ठी भवपच्चएण ते तिन्निवि बंधइ, जाव मिच्छत्तभावो, तस्स सव्वजहन्नो अणुभागो भवति । कहं ? तव्बंधकेसु अच्चंतविसुद्धो त्ति ॥ ७४ ॥

एगिंदियथावरयं मंदणुभागं करेंति तिगईया । परियत्तमाणमज्झिमपरिणामा नेरइयवज्जा ॥ ७५ ॥

व्याख्या—**'एगिंदियथावरयं'** ति एगिंदियजातिथावरणामाणं जहन्नाणुभागं णेरइगे मोत्तूण सेसा तिगतिगावि परियत्तमाणमज्झिमपरिणामा बंधति, परावृत्य परावृत्य पगतीओ बंधंति त्ति परियत्तमाणं, जहा एगिंदियं थावरयं, पंचिंदियं तसमिति । तेसु वि जे मज्झिमपरिणामो, जइ विसुद्धो तो पंचिंदियजातितसणामाणं तिव्वाणुभागं करेति, अह संकिलिट्ठो तो एगिंदियजातिथावरणामाणं अणुभागं तिव्वं करेति, तम्हा मज्झिमपरिणामो तुलादंडवत् । णेरइका भवपच्चएण ण बंधति त्ति ॥ ७५ ॥

आसोहम्मायावं अविरइमणुओ य जयइ तित्थयरं । चउगइउक्कडमिच्छो पन्नरस दुवे विसोहीए ॥ ७६ ॥

व्याख्या—**'आसोहम्मायावं'** ति आसोहम्मो त्ति सोहम्मग्गहणात् ईसाणोवि गहिओ, एकश्रेणित्वात् आसोह-

म्मा देवा आतवनामस्स सव्वसंकिलिट्ठा एगिंदियजातिं वीसं सागरोवमकोडाकोडिं बंधमाणा आतपस्स जहन्नं अणुभागं बंधंति, तव्वंधकेसु अच्चंतसंकिलिट्ठ त्ति काउं । '**अविरइमणुओ य जयति तित्थकरं**' ति असंजतसम्मद्दिट्ठी मणुओ णरके बद्धायुगो णिरयाहिमुहो मिच्छत्तं से काले पडिवज्जिहि त्ति तित्थकरणामस्स जहन्नाणुभागं करेइ, तव्वंधकेसु अच्चंत-संकिलिट्ठो त्ति काउं । '**चउगतिउक्कडमिच्छो**', **पन्नरस**' त्ति पंचिंदियजातितेजडककम्मइकसरीरं वन्नगंधरसफासा पसत्था अगुरुलघुपराघायउस्सासतसबायरपज्जत्तगपत्तेगणिम्माणमिति । एतासिं पन्नरसण्हं पगतीणं जहन्नाणुभागं चउगतिगावि मिच्छद्दिट्ठी सव्वसंकिलिट्ठा बंधंति । कहं ? भन्नइ, तिरियमणुया णिरयगतिसहियं उक्कोसं ठितिं बंधमाणा अतिसंकि-लिट्ठा एतासिं जहन्नाणुभागं बंधति, सुहाओ त्ति काउं । ईसाणंतवज्जा देवा णेरइगा तिरियगइपंचिंदियजाइसहियं बंधमाणा जहन्नाणुभागं करेंति, पंचेंदियजातितसणामवज्जाणं ईसाणंता देवा एगिंदियजातिसहिय बंधमाणा सव्वसंकिलिट्ठा जहन्नं बंधंति, पंचिंदियजातितसणामाणं तत्थ जहन्नं ण लब्भति । कह ? विसुद्धतरो बधति त्ति काउं । '**दुवे विसोहिए(य)**' त्ति णपुंसगइत्थिवेदाणं जहन्नगं चउगतिगा मिच्छद्दिट्ठी तप्पाओग्गविसुद्धा बंधंति, तओ विसुद्धतरो पुरिसवेदं बंधंति त्ति काउं । तत्थवि णपुंसगवेदस्स जहन्नं संकिलिट्ठतरो बंधइ, तओ विसुद्धतरो इत्थिवेदस्स ॥ ७६ ॥

सम्मद्दिट्ठी मिच्छो व अट्ठपरियत्तमज्झिमो जयति । परियत्तमाणमज्झिममिच्छद्दिट्ठीओ(उ) तेवीसं ॥७७॥

व्याख्या—'**सम्मद्दिट्ठी मिच्छो व अट्ठपरियत्तमज्झिमो जयति**' त्ति सातासात थिराथिर सुहासुहं जस-

॥ १५१ ॥

कित्तिअजसकित्ति एतेसिं अट्ठण्हं कम्माणं जहन्नाणुभागं सम्मद्दिट्ठी वा मिच्छाद्दिट्ठी वा बंधति। कहं? सातावेदणीतस्स उक्कोसिया ठिती पन्नरससागरोवमकोडाकोडीओ तप्पाओग्गसंकिलिट्ठो बंधइ, [118] तओ पभिति जाव असातस्स उक्कोसिता ठिति त्ति ताव संकिलिट्ठो संकिलिठ्ठतरो संकिकिट्ठतमो य उत्तरुत्तरं बंधति, तेण एतेसु ठितिट्ठाणेसु जहन्नयं ण लब्भति, संकिलिट्ठो त्ति काउं। [119]समयूणाओ[1] उक्कोसठितिओ आढवेत्तु जाव असातस्स सम्मद्दिट्ठि जोग्गा जहन्नठिती ताव एतेसु ठितिठाणेसु सम्मद्दिट्ठिमिच्छद्दिट्ठिजोग्गेसु सव्वेसुवि सव्वजहन्नगो परिणामो [120]तत्तुल्लो लब्भति,

(११८) जघन्यानुभागबन्धाधिकारे 'सम्मद्दिट्ठी' इत्यादिगाथाचूर्णौ "*तप्पभिइ*" त्ति। सा सातोत्कृष्टास्थितिः प्रभृतिरादिर्यत्र तत्तथा। क्रियाविशेषणमेतत्। अत्र च प्रभृतिशब्दस्योपलक्षणार्थत्वेनातद्‌गुणसंविज्ञानो बहुव्रीहिर्द्रष्टव्यो, यथा–पर्वतादिकं क्षेत्रं नद्यादिकं वनमिति। यतः समयोत्तरसातोत्कृष्टस्थितेरेव प्रारभ्य सजातीयप्रकृत्यन्तरबन्धाऽसम्भवेनाऽपरावृत्तपरिणामभावादेकान्तसक्लेश सम्भव इति।

(११९) '*समयूणा सा उक्कोसठिइ*' त्ति अत्राऽपरावृत्तबन्धार्हाऽसातस्थितिप्रथमस्थानापेक्षया समयोना पञ्चदश कोटीकोटिप्रमाणत्वेन या सातस्योत्कृष्टास्थितिस्तत आरभ्य यावत्प्रमत्तसयतरूपसम्यग्दृष्टिबन्धार्हाऽन्त.कोटीकोटिरूपाऽसातस्य जघन्या स्थितिस्तावत्सातासातयोर्बन्धपरावृत्तिसम्भवेन सर्वत्र जघन्यानुभागबन्धस्तत्तुल्यो लभ्यत इति।

(१२०) '*तत्तुल्लो*' इति च। स एवैक. पर तुल्यः सदृश इति। तत्र प्रमत्तासयताद्यावदविरतसम्यग्दृष्टिस्तावत्सम्यग्दृष्टिबन्धार्हाण्येव सातासातयोर्जघन्यानुभागबन्धयोग्यस्थितिस्थानानि। तदुपरि तु यावत्पञ्चदशसागरोपमकोटीकोटयस्तावन्मिथ्या-

1 टिप्पनानुसारिपाठ एव सम्भाव्यते-'तप्पभिइ' इति। 1 'समऊणाओ' इति मु०।

परियत्तिय परियत्तिय ठिइं बंधमाणस्स सम्मद्दिट्ठिजोग्गअसायजहन्नठितिओ आढवेत्तु जाव मातस्स सम्मद्दिट्ठिजोग्गा जहन्निया ठिति त्ति ताव विसुद्धो विसुद्धतरो विसुद्धतमो य ऊणूणं ठितिं बंधति त्ति-एतेसु ठितिठाणेसु जहन्नयं न लब्भति, जो एक्कं चेव पगति बंधइ सो संकिलिट्ठो वा विसुद्धो वा भवति त्ति, तेण परियत्तमाणमज्झिमपरिणामग्गहणं, पगतिओ पगतिसंकमणे मंदो परिणामो लब्भति त्ति । एवं थिराथिरसुभासुहजसकित्तिअजसकित्तिणं भावेयव्वं । **'परियत्तमाणमज्झिममिच्छद्दिट्ठीओ तेवीसं'** ति मणुयगती तयाणुपुव्वी छसंठाणं छसंघयणं विहायगतिदुगं सुभगदुभगं सुस्सरदुस्सर आएज्जअणाएज्ज उच्चागोत्तमिति एतासि तेवीसाए पगडीणं चउगतिगावि मिच्छद्दिट्ठी परियत्तिय परियत्तिय ते बंधमाणा मज्झिमपरिणामे जहन्नाणुभागं बंधति । कहं ? भन्नइ, सम्मद्दिट्ठीसु एतासि परिवत्तणं णत्थि त्ति काउं । कथं नास्ति? इति चेत् , भन्नइ, सम्मद्दिट्ठी जो मणुयदुगवज्जरिसभाणं बंधको सो देवदुगं ण बंधति, देवदुगबंधको मणुयदुगवज्जरिसभ ण बंधति । समचउरंसपसत्थविहायगतिसुभगसुस्सरआदेज्जउच्चागोत्ताणं पडिवक्खा सम्मद्दिट्ठिसु णत्थित्ति तेण ण लब्भति ।

दृष्टिरेव । तत ऊर्ध्वं तु परावृत्यसम्भवेनासातस्यैवैकान्तसक्लिष्टबन्धप्रायोग्यानि स्थितिस्थानानि यावत् त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोटयस्तावल्लभ्यन्ते । अप्रमत्तसंयतप्रभृति तु यावत्सूक्ष्मसपरायस्तावदेकान्तशुद्धबन्धप्रायोग्याण्युत्कृष्टानुभागभाञ्जि सातस्यैव स्थितिस्थानानीति । अत्र चौर्णे पदे यथाश्रुत व्याख्यायमाने कर्मप्रकृतिसग्रहण्या अत्रैव स्थिराऽस्थिरादिपरिवर्तमानप्रकृतिजघन्यानुभागमार्गणानुसारेण च सह महान्विरोध संपद्यते, अत इत्थ संवाह्य व्याख्यायत इति ।

[121]सुभपगतीणं अप्पप्पणो उक्कोसठितिओ आढवेत्तु जाव असुभपगतीणं अप्पप्पणो सव्वजहन्निया ठिइ त्ति ताव एत्थंतरेसु सव्वठितिठाणेसु ण विसुद्धो णाधमो सकिलेसो, पगतीओ पगतिमक्कमे लब्भति त्ति तेण एत्थ सव्वजहन्नाणुभागो तेत्तीसाए पगतीणं । [122]छसंठाणछसंघयणाणावि हुंडासंपत्तवज्जाणं अप्पप्पणो उक्कोसठितीओ आढवेत्तु समचउरंसवज्जरिसभनाराय-वज्जाणं जाव अप्पप्पणो जहन्निया ठिति त्ति एत्थतरे सव्वजहन्नाणुभागो लब्भति । हुंडासंपत्ताणं वामणखीलियसठाण-संघयणाणं उक्कोसप्पभिति जाव अप्पप्पणो जहन्नगो ठितिबंधो ताव एतेसु ठितिठाणेसु जहन्नगं लब्भति । समचउरस-वज्जरिसभाणं अप्पप्पणो उक्कोसठितीओ जाव णिग्गोहं वज्जनारायं जहन्निया ठिती ताव एतेसु ठितिठाणेसु जहन्नगं लब्भइ, हेट्ठओ विपक्खाभावात् विसुद्धत्वाच्च जहन्नाणुभागो ण लब्भति, जाओ तप्पाओग्गविसुद्धस्स संकिलिट्ठस्स वा अक्खाताओ पगतीओ तासि सव्वासि एस कमो ॥ ७७ ॥

---

(१२१) 'सुभपगईण' मित्यादि । शुभप्रकृतयो मनुष्यद्विक-आद्यसंस्थान-संहनन-शुभविहायोगत्यादयो नव त्रयोविंश-त्यन्तर्गताः । उत्कृष्टाऽवस्थितिर्मनुष्यद्विकस्य पञ्चदशसागरोपमकोटीकोटय, शेष सप्तकस्य दशेति । अशुभप्रकृतयश्च यथास्व तिर्यग्द्विकादयश्चतुर्दशेति ।

(१२२) 'छसठाण' इत्यादिना तु विशेषापेक्षित्वात् संस्थानसंहननयोः पृथग्भावनामाह–इह प्रथमादिकयोर्द्वयोः संस्था-नसंहननयोर्दशादयो द्वि-द्विवा-विंशतिपर्यन्ताः सागरोपमकोटीकोटय परास्थिति । तत्र च वामनकीलिकाख्ययो सस्थानसहन-नयोरुत्कृष्टस्थितेरुपरि, अपरावृत्त्यैव बन्धाज्जघन्यानुभागबन्धाऽसम्भवेन हुण्डासंप्राप्तयोर्वर्जनमिति । अत एवानयो. पञ्चम-सस्थानसंहननोत्कृष्टस्थितिप्रभृत्येवाधस्ताज्जघन्यानुभागमाह–'हुण्डासंपत्ताण' मित्यादिना ।

सामित्तं भणितं, इयाणिं घातिसुभासुभठाणपच्चयविपाका य पदंसिज्जति, अणुभागसभाव त्ति काउं पढमं घाति संज्ञा, सव्वाओ पगतीओ सामन्नेणं तिप्पगाराओ हवंति, त० सव्वघातीदेसघाती अघाती त्ति। तत्थ सव्वघातिनिरूवणत्थं भन्नइ–

केवलनाणावरणं दंसणछक्कं च मोहबारसगं । ता सव्वघाइसन्ना हवंति मिच्छत्त वीसइमं ॥ ७८ ॥

व्याख्या—'**केवलनाणावरणं**' ति केवलणाणावरणं चक्खुअचक्खुओहिदंसणवज्जाणि छावि दंसणाणि संजलणवज्जा बारसकसाया एते सव्वघातिणामा भवंति, '**मिच्छत्त वीसइम**' ति। कहं? णाणदंसणसद्दहणचारित्ताणि सव्वं घातेति त्ति सव्वघाइणो, केवलणाणावरणं सव्वावरणावरणं, सेसचउण्ण णेसएसु तस्स आवरणविसयो णत्थि, जइ होज्ज अचेयणा जीवा होज्जा। "**सुट्ठुवि मेहसमुदए होंति पभा चंदसूराणं**" ति तेसिं मेघाणं सभावादेव तारिसी सत्ती णत्थि, जहा सव्वं न किंचि दीसति, एवं केवलणाणावरणस्सवि सहावादेव तारिसी सत्ती णत्थि जहा ण किंचि जाणइ त्ति। मेघावरियसेसपहाए अन्ने पुणो वाघायकरा कडकुडादयो तत्तमेण जहा ण किंचिवि दीसति तेहिंपि तस्सत्ताभावं अत्थि, एवं केवलणाणावरणेणावरियसेसस्स णेयविसयस्स तस्स य चत्तारि वाघातकरा मतिणाणावरणादयो, तेसिं खयोवसमतरतमेण विन्नाणविवुड्ढी भवति, एगिंदियादि जाव सव्वक्खओवसमलद्धिसपन्नोत्ति। एवं सव्वत्थ सव्वदेसघातिम्मि जोएज्जा। '**दसणछक्कं**' ति णिद्दापणग केवलदंसणावरणं च एतंसि उदए वट्टमाणो सव्वंपि पेक्खियव्वं ण पेक्खइ सव्वस्स दंसणभावरेंति ण देसस्स, जओ णिद्दावत्थायामवि केत्तियोवि अचक्खुदंसणविसयो अत्थि, एत्थवि पुव्वुत्तमेहदिट्ठंतो

¹दट्ठव्वो । अहवा को वि राया कम्मवि रुट्ठो सव्वस्स हरणादि अवराहाणुरूवं दंडं करेइ, एवं सव्वघातितम्मत्ते ठाति. दंडियसेपस्स दव्वस्स सरीरादिस्स वा अणो दाणगहादयो विणासकरा तरतमेण उट्ठेज्ज, जाव सरीरविणासो त्ति । एवं सव्वघाति अणावारए दरिसणविसए अन्ने चक्खुदंसणावरणादिणो निद्दानिद्दादउ जे ति ते वि सव्वपरमतरतमेण दरिसणवुड्डी भवति एमादियादि आत्र सव्वरायोवसमलद्धिसपन्नो त्ति । चक्खुअचक्खुओहिदंसणपाओग्गे अत्थे ण पेक्खइ त्ति केवलदंसणावरणोदयो ण भवति, किंतु तेसिं चेव तिण्णमावरणाण ण पेक्खइ, एतेसिं जे अणाओग्गे अत्थे ण पेक्खति त्ति सो केवलदंसणावरणोदयो । केवलिस्स तदावरणक्खए छद्मस्थविषयाऽनवबोध, विषयभेदात् ? इति चेत् तन्न, सर्वज्ञेयावबोधलाभे देशज्ञानानुप्रवेशात्, ग्रामलाभे क्षेत्रलाभादिवत् । चरित्त मोह वारसगं पि भगवया "²पणीतं पंचमहव्वयमहियं" अट्ठारससीलंगसहस्सकलियं चारित्तं घाएंति त्ति सव्वघाइणो, ण देस[विरइ]घाइणो, ⁴तेसिं खओवसमविसेसेण मंसनिरयादि [123]जाव चरिमाणुमति त्ति विरतिविसेसो न भवति । जइवि अचंतोदओ तहावि अयोग्गाहारादिविरति भवति, एत्थवि सेवादिट्ठंतो । मिच्छत्तं सव्वन्नु

(१२३) जाव चरिमाणुमइ' त्ति । इह त्रिधानुमतिः–परिभोगानुमतिः प्रतिश्रवणानुमति, संवासानुमतिश्चेति । तत्र परिभोगानुमतिराधाकर्मोपभोक्तुरिव षट्कायवधे । प्रतिश्रवणानुमतिस्तदामन्त्रितप्रतिपत्तुरिव । संवासानुमतिस्तद्भोगिगृहवासिन इव । यदुक्तम्–"सावज्जसंकिलिट्ठेसु ममत्तभावो संवासानुमइ ।" [कर्मप्रकृतिचूर्णि–उपशमनाकरण गा २९] 'चरमाचैवैव ।

1 'वत्तव्वो' 2 'पभणिय' इति मु. प्रतौ पाठ० । 3 'मतिग' इति जे. प्रतौ । 4 'जओ न तेसिं' इति जे. ।

वीयरागोपदिट्ठतच्चपदत्थरुचिपडिघातं करेति त्ति सव्वघाति, तस्स खओवसमविसेसेण माणुस्ससद्दहणादि जाव जीवादीणं च सद्दहणता । अच्चंतोदएवि केसिंचि दव्वविसेसाणं सद्दहणता भवति, एत्थवि मेघदिट्ठंतो ॥ ७८ ॥

इयाणिं देसघातीओ भन्नति—

नाणावरणचउक्कं दंसणतिगमंतराइए पंच । पणुवीस देसघाई संजलणा नोकसाया य ॥ ७९ ॥

व्याख्या—'**नाणावरणचउक्कं**' ति केवलणाणावरणवज्जाणि चत्तारि णाणावरणाणि, चक्खुअचक्खुओहिदंसणावरणाणि तिन्नि, पंचवि अंतराइगाणि, चत्तारि वि संजलणा, णव णोकसाया एते देसं घायंति देसघाइणो, कहं ? भन्नइ आभिणिबोहियणाणावरणादीणि चत्तारिवि केवलणाणावरणीएण अणावरियणेयविसयदेसो तं घाएंति त्ति देसघातिणो, पवण्हमिंदियाणं मणोछट्ठाणं जे विसया ते आवरेति त्ति आभिणिबोहियणाणावरणं, तव्विसयातीते अत्थे न जाणति त्ति तस्सोदयो ण भवति । एवं सुयणाणविसया जे अत्था ते आवरेइ त्ति सुयणाणावरणं । रूविदव्वाणि ण जाणइ त्ति ओहिणाणावरणं, अरूवीणि ण जाणइ त्ति तस्सोदयो ण भवति । अणंताणंतपएसियखंधविसए अत्थे आवरेइ त्ति मणपज्जवणाणावरणीयं तव्विसयअतीए पोग्गले अरूविदव्वे य ण जाणइ त्ति तदुदयो ण भवति त्ति । चक्खुदंसणादीणि तिन्निवि दंसणाणि केवलदंसणावरणीयेण अणावरियदंसणविसयदेसो तं घाएंति त्ति देसघातिणो । गुरुलघुकाणंतपदेसियाणि खंधाणि आवरेंति त्ति चक्खुदंसणावरणं, सेसे पोग्गले अरूविदव्वाणि य ण पेक्खति त्ति च तस्सोदयो ण भवति । सेसिंदियमणोविसए अत्थे आवरेंति

त्ति अचक्खुदंसणावरणं, तव्विसयातीते अत्थे ण पेक्खति त्ति तस्सोदओ ण भवति । ओहिदंसणं ओहिणाणवत् । दाणतराइयादीणि पंचवि देसं घाएंति । कहं भन्नइ—गहणधारणजोग्गाणि पोग्गलदव्वाणि ताणि ण देइ, ण लहइ, ण भुंजइ, ण परिभुंजइ त्ति, दाणलाभभोगपरिभोगंतरायिकाणि सव्वदव्वाणमणंतिमे भागे तेसिं विसयो, तमेव उवघातंति त्ति देसघाइणो, सव्वदव्वाइं ण देति, ण लहति, न भुंजति त्ति, न परिभुंजइ त्ति, तेसिं उदओ ण भवइ, अशक्यत्वात् ग्रहणधारणस्य । एतेसि खयोवसमविसेसाओ अणेगा लद्धिविसेसा उप्पज्जंति । वीरियंतराइस्स देसघातित्तं कहं ? भन्नइ—सव्वं वीरियं आवरेइ त्ति (सव्वघाई), एवं णत्थि. जओ एगिंदियस्स वीरियंतराइयस्स कम्मस्स अच्चुदए वट्टमाणस्सवि आहारपरिणामणकम्मगहणगत्यन्तरगमणादि अत्थि, तओ पभिति वीरियविसेसं घातेति त्ति देसघाती, देसघाइयस्स खओवसमविसेसेण एगिंदियादि उत्तरुत्तरं वीरियवुड्ढी अणेगभेयभिन्ना जाव केवलि त्ति । केवलिंमि खयसंभूयं सव्ववीरियं, सव्वं वीरियं ण घातेति त्ति देसघाति । 'संजलणा णोकसाया य' त्ति लद्धस्स चारित्तस्स देसघाते वट्टंति । कहं ? भन्नई—मूलुत्तरगुणातियारो एतेसिं उदयाओ भवति त्ति । उक्तं च—

"सव्वेवि य अतियारा संजलणाणं तु उदयओ होंति । मूलच्छेज्जं पुण होइ बारसण्हं कसायाणं ॥१।"

कसायसहवत्तिणो णोकसाया ॥१॥

अवसेसा पयडीओ अघाइया घाइयाहिं पडिभागा । ता एव पुन्नपावा सेसा पावा मुणेयव्वा ॥८०॥

व्याख्या–**'अवसेसा पयडीओ अघाइया घाइयाहि पलिभाग'** त्ति सेसाओ वेयणियायुगणामगोत्तपगईओ अघाइयाओ । कहं ? णाणदसणचरित्तादिगुणे ण घातेंति त्ति । **'घाइयाहि पलिभाग'** त्ति घाइकसदृशा इत्यर्थः । तेहिं सहिया तत्तुल्ला भवति, जहा अचोरो स्वभावात् चोरसहयोगेन चोरो भवति, एवं अघातिणोवि घातिसहिता तग्गुणा भवंति, दोषकरा इत्यर्थः । इदाणिं सुभासुभ त्ति **'ता एव पुन्नपावा सेसा पावा मुणेयव्व'** त्ति **'ता एव'** त्ति अघाइणो 'पुन्न पाव' त्ति बायालीसं पसत्थपगतीओ पुन्नं सुभमित्यर्थः । वेयणियाउगनामगोत्तेसु जाओ अपसत्थपगतीओ ताओ पाव अशुभमित्यर्थः । **'सेसा पव'** त्ति सेसाणि घाति कम्माणि पावाणि असुभानीत्यर्थः ॥८०॥

इदाणिं ठाण त्ति—

आवरणदेसघायंतरायसंजलणपुरिससत्तरस । चउविहभावपरिणया तिविहपरिणया भवे सेसा ॥८१॥

व्याख्या–**'आवरणदेसघायंतरायसंजलणपुरिससत्तरस'** त्ति चत्तारि णाणावरणाणि, तिण्णिदंसणावरणाणि पंच अंतराइगा, चत्तारिवि संजलणा पुरिसवेद इति एयाओ सत्तरस कम्मपगतीओ **'चउविहभावपरिणय'** त्ति एगठाणदुगठाणतिठाणचउठाणभावसंजुत्ता । कहं ? अणियट्टिअद्धाए संखेज्जेसु भागेसु गएसु एतेसिं कम्माणं एगट्ठाणिगो अणुभागबंधो भवति । सेसाणि तिन्निवि ट्ठाणाणि संसारत्थाणं, तत्थ पव्वयराइसमाणकोहस्स चउट्ठाणिगो रसो भवति, भूमिराइसमाणकोहस्स

तिठाणिओ, वालुगउदगराइसमाणकोहस्स दुट्ठाणिओ; घोसातकि-णिबादीणं[124] जातिरसतुल्लो एगठाणिओ रसो, तस्सवि अणेगा भेदा, [125]जहा पाणीयदुभागतिभागचउब्भागसंमिस्सादि जाव अंतिमो जातिरसलवो बहुपाणीयमिस्सो वा। दो भागा कढिज्जमाणा २ एगभागावट्ठितो एरिसो दुट्ठाणिओ रसो, तस्सवि अणेगभेया पूर्ववत्। तिन्नि भागा कढिज्जमाणा २ एगो भागो अवट्ठिओ एरिसो तिठाणिओ रसो, तस्सवि अणेगभेया पूर्ववद्। चत्तारि भागा कढिज्जमाणा २ एगभागावट्ठिओ एरिसो चउट्ठाणिको, तस्सवि अणेगभेदा पूर्ववत्, एवं सव्वाऽसुभाण। सुभाण तु कम्माणं दगवालुगराइसमाणेणं कोहोदएण चउट्ठाणिओ रसो बज्झति, भूमिराइ-समाणेणं कोहोदएण[1] तिठाणिगो रसो भवति, पव्वयराइसमाणेणं कोहोदएणं

(१२४) 'जाइरसे' त्यादि] जात्यादि-क्वाथादिविशेषाधानमन्तरेण जन्मनैव रसो विपाकदानशक्तिलक्षणो जातिरस स्वाभाविक इत्यर्थः।

(१२५) 'जहे' त्यादि। द्वितीयो भागो द्विभागोऽर्धमित्यर्थः। एवं त्रिभाग-चतुर्भागावपि, पश्चात् पदत्रयस्य द्वन्द्वः। पानीयस्य जलस्य द्विभाग-त्रिभाग-चतुर्भागास्तैः संमिश्रो व्याप्त इति विग्रहः। स आदिर्यस्य स तदादिः। आदिशब्दात् पञ्चम-षष्ठभागादिसम्मिश्रग्रहः। तथा द्वि-त्रि-चतुःप्रभृतिभिः पानीयभागैश्च सन्मिश्रैकरसभागग्रहः। अत एवाह–'जाव अंतिमो जाइरसलवो' त्ति। अत्र रसोदाहरणश्लोक –

"सुभानुभागास्तुल्या स्युः, गुडखण्डसिताऽमृतैः। इतरे निम्ब कञ्जीर-विषहालाहलैः समा ॥[ ]

तथा– "घोसाडइनिंबुवमो, असुहाण सुहाण खीरक(ख)ण्डुवमो। एगट्ठाणो उ रसो, अणंतगुणिया कमेणेत्तो ॥"

[पञ्चस० द्वा० ३ गा. ३३]

1 'कोहेणं' इति जे.

दुट्ठाणिओ रसो भवति, एत्थ क्षीरेक्षुविकारादिदृष्टान्ता योज्याः इति । 'तिविधपरिणया भवे सेस' त्ति जाओ मत्तरसपगतीओ भणिताओ ताओ मोत्तूण सेसाणं सुभाणमसुभाणं च सव्वपयडीणं तिन्नि ठाणाणि भवंति कहं तं–चउट्ठाणिओ तिट्ठाणिओ बिट्ठाणिओ त्ति । एगट्ठाणिओ ण संभवति; कहं ? भन्नइ– [126]अणियट्टिपभितीसु [127]सेसाणं असुभपगतीणं बंधो णत्थि त्ति, तेण सेसअसुभाणं एगठाणिओ रसो नत्थि । सुभपगतीणं कहं ? भन्नइ–जाणि चेव संकिलेसठाणाणि ताणि चेव विसोहिठाणाणि पव्वयातिचडणोयरणपदवत् । संकिलेसठाणेहिंतो विसोहिठाणाणि विसेसाहियाणि । कहं ? भन्नइ, जो खवगसेढिं पडिवज्जति सो ण णियट्टति, तेहिं विसोहिठाणेहिं विसोहिठाणाणि अधिकाणीति । सेढि वज्जिएसु[1]जाणि विसोहिसंकिलेसठाणाणि तेसु एगठाणियरसभावो णत्थि । जो असुभपगतीणं चउठाणबंधको सो सुभपगतीणं दुठाणियं रसं बधति । जो सुभपगतीणं चउट्ठाणबंधको सो असुभपगतीणं दुठाणबंधको, खवगसेढि (उवसमसेढिं च)[2] पडुच्च एगठाणबंधको वा, तेण सुभपगतीणं एगठाणिओ रसो ण संभवति ॥८१॥

इदाणिं पगतीणं पच्चयणिरूवणत्थ भन्नइ—

(१२६) 'अनियट्टी' इत्यादि । केवलज्ञानकेवलदर्शनावरणयोर्द्विस्थानिकरसबन्धि(धे)ऽप्यनिवृत्तिबादर-सूक्ष्मसम्परायचोरविवक्षयोक्तम् ।

(१२७) 'सेसाणं असुभपगईण बधो नत्थि' त्ति स्वभाव एव तयो. सर्वघातिनोर्द्विस्थानिकरसस्य तत्र बन्धात् ।

1 'खवगसेढिवज्जेसु' इति मु.। 2 'उवसमसेढिं च' इति पाठोऽत्रावश्यकः प्रतिभाति, कर्मप्रकृतावुपशमनाकरणे उपशमकस्यैकस्थानिकरसप्रतिपादनात्।

चउपच्चय एग मिच्छत्त सोलस दुपच्चया य पणतीसं । सेसा तिपच्चया खलु तित्थयराहारवज्जाओ ॥८२॥

व्याख्या—'चउपच्चय एग' त्ति एगा पगती मिच्छत्तादिचउपच्चइका । कहं ? सातावेदणीयं मिच्छद्दिट्ठिम्मि बंधं एति त्ति मिच्छत्तपच्चइकं, सेसा पच्चया तदंतग्गया, सासणादि जाव असंजओ त्ति एतेसु मिच्छत्तअभावे वि बंधो अत्थि त्ति असंजम पच्चओ, सेसपच्चयदुगं तदंतग्गतं, पमत्तादि जाव सुहुमरागो एतेसु मिच्छत्ताऽसंजमाभावे वि बंधो अत्थि त्ति कसाय-पच्चयओ, उवसंत कसायादिसु तिसु एतेसु मिच्छत्ताऽसंजमकसायाऽभावेऽवि बंधो अत्थि त्ति जोगपच्चइगो त्ति । 'मिच्छत्त सोलस' त्ति जाओ मिच्छत्तंताओ सोलसपगतीओ ताओ मिच्छत्तपच्चयाओ, कहं ? मिच्छत्ताभावे बंधं ण एंति त्ति । 'दुपच्चया य पणतीसं' ति सासणसम्माद्दिट्ठी असंजमसम्माद्दिट्ठीअंताओ पंचतीसं पगईओ मिच्छत्तअसंजयपच्चयाओ । कहं ? एतेसिं मिच्छद्दिट्ठिम्मि बंधो अत्थि त्ति मिच्छत्तपच्चइकाओ, सासणादिसु वि तीसु बंधो अत्थि त्ति असंजमपच्चतिकाओ । 'सेसा तिपच्चया खलु' त्ति 'सेसाओ' तित्थकराऽऽहारगवज्जाओ सव्वपगतीओ जाओ संजयाऽसंजयपमत्ताऽपमत्तअपुव्वाऽणियट्टिसुहुमरागंताओ ताओ मिच्छत्ताऽसंजमकसायपच्चइकाओ । कहं ? मिच्छाद्दिट्ठिम्मि बंधं एंति त्ति मिच्छत्तपच्चइकाओ, असंजएसुवि बंधं एंति त्ति असंजमपच्चइकाओ, कसायसहिएसुवि बंधं एंति त्ति कसायपच्चइयाओ त्ति । तित्थकराऽऽहारणामाणं पच्चओ पुव्वुत्तो ॥८२॥

इयाणिं विवाकनिरूवणत्थं भन्नइ—

पंच य छत्तिन्नि छ पंच दोन्नि पंच य हवंति अट्ठेव । सरिराई फासंता पयडीओ आणुपुव्वीए ॥८३॥

व्याख्या–पंच छ तिन्नि छ पंच दोन्नि पत्र अट्ठ त्ति सरीरातिफासंता पगतीओ 'आणुपुव्वीए' त्ति सरीरा ५ संठाणा ६ अंगोवंगा ३ संघयणा ६ वन्न ५ गंध २ रस ५ फासा ८ यथासंखेण घेतव्वाणि, पंच सरीराणि छसठाणाणि त्ति (एवमाइ) ॥८३॥

अगुरुलहुग उवघायं परघा उज्जोय आयव निम्मेणं । पत्तेयथिरसुभेयरनामाणि य पोग्गलविगागा ॥८४॥

व्याख्या–अगुरुलहुगं उववायं पराघात उज्जोयं आतवणाम णिम्मेण 'पत्तेयथिरसुभेतरणामाणि य' त्ति पत्तेग साहारणं थिराथिरसुभासुभणामाणि य एताणि सव्वाणि पोग्गलविवागाणि । कहं ? भन्नइ–卐 पोग्गलो विवागो अस्सेति, 卐 पोग्गलेसु वा विवागो अस्सेति पोग्गलविवागा, पंचण्ह सरीरकम्माणं उदए वट्टमाणो तप्पाओग्गपोग्गले घेत्तूण सरीरत्ताए परिणामेइ त्ति सरीराणि पोग्गलविवागाणि । एवं गहिएसु चेव पोग्गलेसु संठाणअंगोवंगसघयणवन्नगंधरसफासअगुरुलहुपराघायउवघायआयवउज्जोयनिम्मेणनामपत्तेगथिरसुभाणि सेयराणि नामाणि विवाग गच्छंति त्ति पोग्गलविवागिणो पोग्गलधम्मा सव्वे त्ति करेत्तु ॥ ८४ ॥

आऊणि भवविवागा खित्तविवागा य आणुपुव्वीओ । अवसेसा पयडीओ जीवविवागा मुणेयव्वा ॥८५॥

卐 · 卐 स्वस्तिक द्वयान्तर्गत पाठो जे. प्रतो नास्ति ।

व्याख्या—'आऊणि भवविवाग' त्ति देहो भवो त्ति वुच्चइ देहमाश्रित्य आऊणि विवागं देंति । आह—अंतरगतीए वट्टमाणस्स णिरयसरीरं णत्थि त्ति तत्थ आउगोदयो कहं ? भन्नइ—णिरयपाओग्गोदयमहिओ कम्मइगसरीरोदयो णिरयभवो वुच्चइ तम्हा ण दोसो, एवं सव्वत्थ । 'खेत्तविवागा य आणुपुव्वीओ' त्ति खेत्तमागासं तम्मि उदओ जेसिं ते खित्तविवागिणो, अंतरगतीए वट्टमाणस्स चउण्हमाणुपुव्वीणं उदओ तदुपग्रहत्वात्, मीणस्स जलवत् । 'अवसेसा पगतीओ जीवविवागा मुणेयव्व' त्ति पोग्गलविवागि आउग आणुपुव्वीओ य मोत्तूण सेसाओ सव्वपगतीओ जीवविवागाओ । कहं ? भन्नइ—णाणावरणोदयपरिणओ जीवो अन्नाणी भवति जीवम्मि अस्स विवागो त्ति जीवविवागी, मद्यपीतपुरुषपरिणामवत् । दंसणावरणोदएणं अदंसणी, साताऽसायोदएणं सुही दुक्खी, मोहोदया दंसणं चारित्तं च प्रति व्यामोहं गच्छति; गतिजातिऊसासविहायगतितसथावरबादरसुहुमपज्जत्ताऽपज्जत्तसुभगदुभगसुस्सरदुस्सरआएज्जअणाएज्जजसाऽजसतित्थकरउच्चाणीयपंचअंतराइगमिति, एतेसिं उदए वट्टमाणो जीवो तं तं भावं परिणमति, द्रव्याश्रयं प्रतीत्य स्फटिकपरिणामवत् । पोग्गलविवागिआयुगाणुपुव्वीणं जीवविपाकत्ता जीवविपाकाओ कहं ण भवंति ? इति चेदुच्यते, तत्प्रधाननिर्देशात् जीवस्स होंतमवि पुद्गलमाश्रित्य विपाको, नारकतिर्यग्मनुष्याऽमरभवमाश्रित्य विपाकः, विग्रहगतावन्यत्रोदयाभावात् (तमाश्रित्य विपाकः), पोग्गलभवखेत्तविवागिणो वुच्चंति त्ति । उत्तरपयडिहिंतो सव्वत्थवि सव्वमूलपयडीणं समं परूवियव्वा सुभासुभपरूवणादीया ॥८५॥ अणुभागबंधो भणिओ ।

इयाणि पएसबंधस्स जहक्कमं पत्तस्स परूवणा किज्जइ । पुव्वं ताव ताइं पोग्गलदव्वाइं कहिं ठियाइं ? कहं गेण्हइ ? केरिसाइं ? केरिसगुणोववेताइ ? केत्तियाइं ति ? तं णिरूवणत्थं भन्नइ—

एगपएसोगाढं सव्वपएसेहिं कम्मणो जोगं । बंधइ जहुत्तहेउ साईयमणाइयं वावि ॥८६॥

व्याख्या–'**एगपदेसोगाढं**' ति एगम्मि पएसे ओगाढं एगपएसोगाढं, केण समं ? भन्नइ–जीवपएसेहिं समं, एगम्मि आकासपएसे ठिए पोग्गलदव्वे '**सव्वपएसेहिं**' त्ति सर्वात्मप्रदेशैः जीवपएसाणं अन्नोन्न सह संबंधो शृंखलावत्, तेण अन्नोन्नोपकारे वट्टति त्ति, सव्वजीवपदेसेहिं सव्वजीवपदेसत्थं '**कम्मणो जोग्गं**' ति कम्मणो जोगे पोग्गले घेत्तूण कम्मत्ताए परिणामेइ, जीवपएसबाहिरखेत्तट्ठिए पोग्गले ण गेण्हइ, किं कारणं ? अनाश्रितस्य तत्परिणामाभावात्, जहा अग्गी तव्विसयट्ठीए तप्पाओग्गे दव्वे अग्गित्ताए परिणामेइ त्ति, ण अविसयगए इति, तहा जीवो वि तप्पएसट्ठिए गेण्हइ, ण परतो, कम्मणो जोग्गं ति वुत्तं । केरिसा कम्मजोग्गा ? केरिसा वा अजोग्ग त्ति जोग्गाजोग्गवियारणत्थं वग्गणाओ परूविज्जंति–परमाणुवग्गणा अग्गहणवग्गणा, दुपएसियवग्गणा अग्गहणवग्गणा, तिपदेसियवग्गणा अग्गहणवग्गणा, एवं चउपएसियपंचछजावसंखेज्जाऽसंखेज्जपदेसियवग्गणा अग्गहणवग्गणा, अणतपएसियवग्गणा अग्गहणवग्गणा, अणंताणंतपदेसियवग्गणाणं केइ गहणपाओग्गा, केइ अग्गहणपाओग्गा, जे गहणपाओग्गा ते तिण्हं ओरालियवेउव्वियआहारगसरीराणं [१२८]आहारगवग्गणा जहन्ना, जहन्नाओ

(१२८) 'आहारकवग्गणा जहन्न' त्ति। आहार एव आहारक स्वार्थे कन्, तस्य आहारकस्य वा जन्तो. कावलिका-

उक्कोसो केवइओ ? विसेसाहिओ, को विसेसो ? तस्सेवाणन्तिमो भागो, तस्सुवरिं एक्के रूवे छूढे अग्गहणवग्गणा जहन्ना,

द्यन्यतरमाहारमाहारयतो योग्यत्वेन वर्गणा दलिकक्रमप्रचयरूपा आहारवर्गणाः । आद्यतनुत्रययोग्य दलिकमित्यर्थः । यस्मादेतदनुपादाने विग्रहगत्यादौ तदन्यतैजसादिद्रव्यग्रहणेऽपि जीवोऽनाहारक इति व्यपदिश्यते आसां चाद्या जघन्येति । तदिहेदमवबुध्यते-यदुत ग्रहणप्रायोग्यवर्गणा आदिवर्गणायाः प्रभृति आ उत्कृष्टवर्गणाया अविशेषेण सर्वा निरन्तरतया यथोत्तरमादिशरीरत्र[य] प्रायोग्यद्रव्या इति । यत्पुनरन्यत्रौदारिकवक्रियाहारकवर्गणाः पृथगधस्तादुपरि चाऽयोग्यवर्गणा समनुगताः प्रतिपाद्यन्ते—'एवमजोग्गा जोग्गा पुणो अजोग्गाओ वग्गणाणंता । ओरालियाइयाणं[1] नेयं तिविगप्पमेक्केक्कं' ॥ इति वचनात् तन्मतान्तरं बीजं च सर्वविद्वेद्यमिति । तैजसशरीरवर्गणा आहारपरिपाकादिगुणस्य तैजसशरीरस्य योग्यद्रव्या इति । भाषावर्गणाश्च चतसृणां भाषाणां पटह भेरी काहला-जलदशब्दादिपरिणामस्य च योग्यद्रव्या इति । आनप्राणवर्गणाश्चोच्छ्वासनिःश्वासतया ग्राह्यद्रव्या इति । एतत्परूपणा च पृथक् कर्म प्र[कृ] ति प्राभृते [त]त्संग्रहण्याञ्च न दृश्यते ।

यदाह सग्रहणिकारः—

"परमाणु १ संख २ सखा ३ ऽणंतपएसा अभव्वणंतगुणा । सिद्धाणणंतभागो, आहारगवग्गणा तितणू ४ ॥"

[कर्मप्र० बं० क० १८]

'तितणु' त्ति तिस्रस्तनवः औदारिकाद्याः कार्यतया यासां सन्ति तास्त्रितनव इति ।

'अग्गहणंतरियाओ तेयग ५ भासा ६ मण ७ य कम्मे ८ य त्ति'

1 'वेउव्वियाइयाण' इति विशेषावश्यके, स च शुद्धपाठ इति ।

जहन्नाओ उक्कोसो केवइओ ? तो अणंतगुणो, को गुणकारो ? अभव्वसिद्धिएहिं अणंतगुणो सिद्धाणं अणंतइमो भागो, तस्सुवरि-एक्के रूवे छूढे तेजइकसरीरवग्गणाजहन्ना, जहन्नाओ उक्कोसो केवइओ ? तो विसेसाहिओ, को विसेसो ? तस्सेव अणंतिमो भागो, तस्सुवरिं एक्के रूवे छूढे अग्गहणवग्गणा जहन्ना, जहन्नाओ उक्कोसो केवइओ ? अणंतगुणो, को गुणकारो ? अभव्वसिद्धि-केहिं अणंतगुणो सिद्धाणमणंतइमो भागो। तस्सुवरिं एक्के रूवे छूढे भासादव्ववग्गणा जहन्ना, जहन्नाओ उक्कोसो केवतिओ ? विसेसाहिओ, को विसेसो ? तस्सेव अणंतिमो भागो। तस्सुवरिं एक्के रूवे छूढे अग्गहणवग्गणा जहन्ना, जहन्नाओ उक्कोसो केत्तिओ ? अणंतगुणो, को गुणकारो ? अभव्वसिद्धिएहिं अणंतगुणो सिद्धाणमणंतइमो भागो। तस्सुवरिं एक्के रूवे छूढे आणापाणुवग्गणा जहन्ना, जहन्नाओ उक्कोसो केवतिओ ? विसेसाहिओ, को विसेसो ? तस्सेव अणंतिमो भागो। तस्सुवरिं एगे रूवे छूढे अग्गहणवग्गणा जहन्ना, जहन्नाओ उक्कोसो केवतिओ ? अणंतगुणो, को गुणकारो ? अभव्वसिद्धिएहिं अणंत-गुणो सिद्धाणमणंतिमो भागो। तस्सुवरिं एगे रूवे छूढे मणोदव्ववग्गणा जहन्ना, जहन्नाओ उक्कोसो केवतिओ ? विसे-साहिओ, को विसेसो ? तस्सेव अणंतइमो भागो। तस्सुवरिं एगे रूवे छूढे अग्गहणवग्गणा जहन्ना, जहन्नाओ उक्कोसो केव-तिओ ? अणंतको गुणो, को गुणकारो ? अभव्वसिद्धिकेहिं अणंतगुणो सिद्धाणं अणंतिमो भागो। तस्सुवरिं एगे रूवे छूढे कम्मइगसरीरवग्गणा जहन्ना, जहन्नाओ उक्कोसो केवइओ ? विसेसो, को विसेसो ? तस्सेव अणंतिमो भागो। तस्सुवरिं एगे रूवे छूढे धुवाचित्त [१२९]वग्गणा जहन्ना, जहन्नाओ उक्कोसो केत्तिओ ? अणंतगुणो, को गुणकारो ? सव्वजीवाणं अणंतगुणो।

(१२९) 'धुवाऽचित्तवग्गणा' त्ति। ध्रुवाश्च नैरन्तर्येण कृतावस्थाना, अचित्ताश्च जीवग्रहणाऽविषयत्वात्, ध्रुवाऽचित्ताः।

तस्सुवरिं एक्के रूवे छूढे [130]अधुवाचित्तवग्गणा जहन्ना, जहन्नाओ उक्कोसो केवइओ ? अणंतगुणो, को गुणकारो ? सव्वजीवाणं अणंतगुणो । तस्सुवरि एक्के रूवे छूढे पढमसुन्नवग्गणा जहन्ना, जहन्नाओ उक्कोसो केवइओ ? अणंतगुणो, को गुणकारो ? सव्वजीवाणमणंतगुणो । तस्सुवरिं एक्के रूवे छूढे पत्तेगसरीरवग्गणा जहन्ना, जहन्नाओ उक्कोसो केत्तिओ ? असंखेज्जगुणो, को ? गुणकारो ! पलिओवमस्स असंखेज्जइमो भागो । तस्सुवरि एगे रूवे छूढे बिया सुन्नवग्गणा जहन्ना,

---

अत्र ध्रुवशब्दोऽन्तदीपक । तेन एतदन्ता प्राग्वर्गणा परमाणुवर्गणाप्रभृतय. सर्वापि सामान्येन निरन्तरव्यवस्थानात् ध्रुवा, अचित्तध्वनिश्चादिदीपक । तेन एतदादय आ महास्कन्धात् वर्गणा जीवेनाग्रहणादचित्ता इति ।

(१३०) 'अधुवाऽचित्तवग्गण' त्ति । अध्रुवाश्चाऽनिरन्तराः, एकोत्तरवृद्ध्या कदाचित्कासाञ्चिदवश्यमासां मध्येऽभावात् । अचित्ताश्चेति प्राग्वदध्रुवाचित्ताः । ताश्च ता वर्गणाश्चेति विग्रह. । सर्वा अपि शून्यवर्गणाः पुनः प्रत्नवर्गणानामवसानस्थानादुपरि एकोत्तरवृद्ध्या उपरितनाशून्यवर्गणा प्रथमस्थानादधस्तात्तथाक्रमवद्दलिकविकलान्येवानतानि संख्यास्थानानि तल्लक्षणाः । प्ररूपणा पुनरासा उपरितनवर्गणानां दलिकस्य बाहुल्यख्यापनार्थमिति । प्रत्येकशरीरवर्गणाश्च प्रत्येकशरीरिणा साधारणविलक्षणाना पृथिवीकायादीनां यानि यथासभवमौदारिकवैक्रियाहारकतैजसकार्मणानि शरीरनामकर्माणि तेषामेकैकप्रदेशस्य जीवव्यापारमन्तरेणैव विश्रसापरिणामोपचिताः स्वजघन्यस्थानात् सर्वजीवानन्तगुणोत्तरवृद्धय आवेष्टनपरिवेष्टनकारिण्यः पुद्गलश्रेणय इति । बादरसूक्ष्मनिगोदवर्गणाअप्येवं रूपा एव बादरसूक्ष्माणां बादरसूक्ष्मनामकर्मोदयवतामनन्तकायिकाना यान्यौदारिकतैजसकार्मणशरीरनामकर्माणि तत्प्रदेशाश्रयेण वक्तव्याः ।

जहन्नाओ उक्कोसो केवइओ ? असंखेज्जगुणो, को गुणकारो ? असंखेज्जाणं लोगाणं असंखेज्जइमो भागो, सोवि भागो असंखेज्जालोगा। तस्सुवरिं एक्के रूवे छूढे बायरनिगोयवग्गणा जहन्ना, जहन्नाओ उक्कोसो केवत्तिओ ? असखेज्जगुणो, को गुणकारो ? पलिओवमस्स असखेज्जइभागो। तस्सुवरिं एगे रूवे छूढे ततिता सुन्नवग्गणा जहन्ना, जहन्नाओ उक्कोसो केवत्तिओ ? भन्नइ, असंखेज्जगुणो, को गुणकारो ? अगुलस्स असंखेज्जतिभागमेतस्स खेत्तस्स जावइया आवलियाऽसंखेज्जइभागे समया तावइयाइं वग्गमूलाइ घेप्पंति तत्थ चरिमवग्गमूलस्स असखेज्जइभागे जावइया आगासपएसा तेसिं असंखेज्जइभागो गुणकारो। तस्सुवरिं एक्के रूवे छूढे सुहुमणिगोदवग्गणा जहन्ना, जहन्नाओ उक्कोसो केत्तिओ ? असंखेज्जगुणो, को गुणकारो ? आवलियाए असंखेज्जइभागो। तस्सुवरिं एगे रूवे छूढे चउत्थ सुन्नवग्गणा जहन्ना, जहन्नाओ उक्कोसो केत्तिओ ? असंखेज्जगुणो, को गुणकारो ? असंखेज्जाओ सेढीओ पतरस्स असंखेज्जतिभागो। तस्सुवरिं एगे रूवे छूढे महाखंधवग्गणा जहन्ना, जहन्नाओ उक्कोसो केवतिओ ? असंखेज्जगुणो, को गुणकारो ? पलिओवमस्स सखेज्जइभागो [१३१]'असंखेज्जइभागो त्ति वा पाठः।

(१३१) 'असखेज्जभागो त्ति वा पाठ' इति। अत्राभिलाप 'जहण्णाए महाखंधवग्गणाए उक्कोसो केवत्तिओ ? विसेसाहिओ, को विसेसो ? तीए चेव असखेज्जदिभागो'। यदुक्त कर्मप्रकृतिप्राभृते ''जहण्णाओ महाखधदव्ववग्गणाओ उक्कोसा विसेसाहिया, केत्तियमेत्तो विसेसो ? सव्वजहण्णमहाखंधवग्गणाए पलिओवमस्स असखेज्जतिभागेण अवहरिहाए ज भागलद्धं तत्तियमेत्तो विसेसो त्ति। एतच्च मतान्तर। एताश्च महास्कन्धवर्गणा टंककूटादिप्रतिष्ठिता, विस्रसापरिणामोपचिता, अतिसूक्ष्मपरिणतय पुद्गलप्रचया इति।

एतासिं अत्थो जहा कम्मपगडिसंगहणीए, जाओ अग्गहणवग्गणाओ ताओ सव्वओ हेट्ठिल्लोवरिल्ललक्खणाओ त्ति दुविहाओ हवंति। एतासु कम्मइगसरीरवग्गणाओ जाओ ताओ कम्मपाओग्गाओ ताओ कम्मत्ताए बंधंति 'जहुत्तहेउं' ति सामन्न-विसेसपच्चता पुव्वुत्ता तेहिं बंधंति। 'साईयमणाइयं वावि' त्ति बंधवोच्छेदकाउं बंधंतस्स सातिओ बंधो, तम्मि वा अन्नंमि वा काले बंधवोच्छेदमकरेत्तु बंधंतस्स अणादिओ बंधो संतत्या, अपिशब्दाद् ध्रुवाऽध्रुवावपि द्रष्टव्यौ, कम्मइगसरीरवग्गणा-पाओग्गा कम्मस्स सेसाओ अजोग्गाओ ॥८६॥

कम्मजोग्गाणं दव्वाणं वण्णादिणिरूवणत्थं भन्नइ—

पंचरसपंचवन्नेहिं संजुयं दुविहगंधचउफासं। दवियमणंतपएसं सिद्धेहि[1] अणंतगुणहीणं ॥ ८७ ॥

व्याख्या—'**पंचरस**' ताइं एक्केक्काइं खंधदव्वाइं पंचवन्नाइं, दुगंधाइं, पंचरसाइं, निद्धुण्हं णिद्धसीयलं, लुक्खुण्हं लुक्खसीयलं [132]मउयं लहुयमिति चउ फासाइं, '**दवियं**' ति एगदव्वं '**अणंतपदेसं**' ति अणंताणंतपरमाणूणं सघातो, तं कियत्परिमाणं इति चेत्? '**जीवेहिं अणंतगुहीणं**', जीवा सिद्धाः, शुद्धज्ञानदर्शनसहितत्वात्, संपूर्णजीवलक्षणा इति, तेहि

(१३२) 'मउय लहुय' इति। यदत्र मृदुलघुस्पर्शाभ्यामवस्थायिभ्यां युक्तत्वेन स्निग्धमुष्णमित्यादिभिश्चतुर्भिश्च द्विक-संयोगैश्चतुःस्पर्शत्वमुक्तं यद्व्याख्याप्रज्ञप्त्यादिभिः सह विरुद्धमिव भाति तत्र स्निग्ध रुक्ष-शितोष्णरूपाणामेव चतुर्णां स्पर्शानां कर्म-द्रव्येष्वभिधानात्।

1'जीवेहिं' इति पाठ एव चूर्ण्यनुसारीति।

अणंतगुणहीणाणं परमाणूणं अभविएहि अणंतगुणब्भहियाणं समुदाएणं एक्को खंधो, सव्वेऽवि तल्लक्खणा खंधा जहा भणिता । केत्तिया ते ? अभविताणं अणंतगुणा सिद्धाणमणंतभागमेत्ता खंधा एगसमएणं गहणं एंति कम्मत्ताए । ते य बंधगा मूलपगतीणं चउव्विहा, तं० एगविहबंधगा, छव्विहबंधगा, सत्तविहबंधगा, अट्ठविहबंधगा य । जो एकविहं बंधति तस्स तम्मि समए जहन्नेण वा उक्कोसेण वा अजहन्नुक्कोसेण वा जोगेण गहियं सव्वमेव एक्कस्स वेयणिज्जस्स कम्मणो भवति । जो छव्विहं बंधति तस्स तमेव दलिय छण्हं कम्माणं छ भागा भवंति । जो सत्तविहं बंधति तस्स तमेव दलियं सत्तण्हं कम्माणं सत्तभेदं भवति । जो अट्ठविहं बधति तस्स तमेव दलियं अट्ठण्हं कम्माणं अट्ठभेदं भवति । एगसमयगहियं दलिय अट्ठविधादिबंधत्ताए किह परिणमति ? इति चेद् , उच्यते, तस्स अज्झवसाणमेव तारिसं हवइ जेण अट्ठविहा[इ] बंधत्ताए परिणमत्ति, जहा कुंभकारो मृत्पिंडे मत्तगसरावादीणि णिव्वत्तेइ, तस्स तारिसो परिणामो, जहा एत्थ एक्करूवाइं अणेगरूवाणि वा एत्तियाइं दव्वाइं णिष्फाएमि त्ति एवं सव्वन्नुदिट्ठो परिणामो, एतेण परिणामेण संजुत्तस्स अट्ठविधादित्ताए दलियं परिणमति ॥८७॥

तहि पि एतस्स कम्मुणो अमुकं अमुकं एत्तियं दलियंति, एवं विभत्तस्स दलियस्स परिमाणणिरूवणत्थं भण्णइ—

आयुगभागो थोवो णामे गोए समो तओ अहिओ । आवरणमंतराए तुल्लो अहिगो य मोहे वि ॥ ८८ ॥
सव्वुवरि वेयणीए भागो अहिगो अ कारणं कि तु । सुहदुक्खकारणत्ता ठिईविसेसेण सेसाणं ॥ ८९ ॥

व्याख्या–'आउगभागो' त्ति जो अट्ठविहबंधको तस्स आउगस्स भागो सव्वत्थोवो, णामगोत्ताणं दोण्हवि भागो तुल्लो, आउगभागाओ विसेसाहिओ। 'आवरणमंतराए तुल्लो अहिगो य' त्ति णाणावरणदंसणावरणअंतराइयाणं भागो तिण्हवि तुल्लो, णामगोत्तेहिं विसेसाहिगो 'मोहे वि' त्ति मोहणिज्जस्स भागो विसेसाहिगो 'सव्वुवरि वेयणीए भागो अहिगो' त्ति मोहणीज्जभागाओ वेयणीयभागो विसेसाहिको त्ति। 'कारणं किं तु' त्ति किं कारणं आउगादिवेदणीयपज्ज-वसाणाणं भागविभागो त्ति भन्नइ 'सुहदुक्खकारणत्त' त्ति वेयणीयस्स सव्वमहंतो भागो सुहदुक्खकारणाति बहूहिं दलि-एहिं सुहदुक्खाइं फुडीभवंति, आहारवत्, जहा आहारे असणपाणखाइमाणं बहूहिं दव्वेहिं तित्ती भवति, साइमेण थोवेणवि, असणाइतुल्लं वेयणीज्जं साइमतुल्लाणि सेसाणि, विपक्खा सेसाणि त्ति स्तोकमपि विषं स्फुटीभवति। 'ठिईविसेसेण सेसाणं' ति सेसाणि आउगादीणि मोहपज्जवसाणाणि ठितिविसेसादेव तेसिं दलियविसेसो। एवं चेव आउगाओ णामगोत्ताणं संखेज्ज-गुणं पावइ ? सच्चं, आउगाधारत्वात् शेषप्रपंचस्य, तम्हा आउगस्स बहुगं दलितं तहावि णामादयो धुवबंधिणो त्ति काउं विसेसाहिकाणि। आह–णाणावरणादिहिंतो मोहणिज्जस्स भागो संखेज्जगुणो पावति ठितिविशेषत्वात् ? सच्चं, चरित्तमोहस्स चत्तालीसंति काउं णाणावरणाओ विसेसाहिय एव, [133]मिच्छत्तदलियं चरित्तमोहस्स अणंतिमो भागो त्ति तं अहिकिच्च ण

---

(१३३) 'मिच्छत्तदलिय' मित्यादि। इह भावनाष्टविधबन्धादौ 'आउयभागो थोवो' इत्यादि क्रमेण मूलप्रकृतीनां प्रदेश-विभागेऽपि उत्तरप्रकृत्यपेक्षया यथास्वं पुनः प्रतिविभाग. प्रवर्तते। तत्रापि केवलज्ञानावरणादीनां सर्वघातिप्रकृतीनां ज्ञानदर्श-नावरणमोहनीयकर्मसु योग्यमनन्ततमं दलिकभागमपनीय शेषस्य देशघातिप्रकृतिसंख्यापेक्षया विभागः प्रवर्तते, तद्यथा–ज्ञानाव-रणे मतिश्रुताऽवधिमनःपर्यायाऽऽवरणापेक्षयाचतुर्धा। दर्शनावरणे चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनावरणवशात् त्रिधा। मोहनीये च कषाय

भणितं ॥ ८८-८९ ॥

इयाणिं सादियणाइयपरूवणत्थं भन्नइ—

छण्हंपि अणुक्कोसो पएसबधो चउव्विहो बंधो । सेसतिगे दुविगप्पो मोहाउ य सव्वहिं चेव ॥ ९० ॥

नोकषाययोर्विभागभावाद् द्विधा। तत्रापि कपायभागलब्ध संज्वलनानामेव भावाच्चतुर्धा। नोकषायलब्धं च पञ्चधा। वेदत्रयेऽन्यतरवेदस्य हास्यरत्यरतिशोकलक्षणयोर्युगलयोरन्यतरयुगलस्य भयकुच्छयोश्च पञ्चानामेव युगपद्बन्धात् । सर्वघातिलब्धं च ज्ञानावरणकर्मणि एकस्यैव केवलज्ञानावरणस्य भागभावादेकधा । दर्शनावरणे निद्रापञ्चकस्य केवलदर्शनावरणस्य च विभागात् षोढा । मोहनीये च दर्शन-चारित्रमोहनीयतया विभागाद् द्विधा। तत्र दर्शनमोहलब्ध भिथ्यात्वस्यैव भवति। चारित्र मोहप्राप्तं च द्वादशधा, द्वादशानामादिकपायाणां सर्वघातित्वात् । शेषकर्मसु च यावत्यो युगपद्बध्यन्ते प्रकृतयस्तावन्तो दलिकविभागा । उक्तं च—

जं सव्वघाइपत्तं, सगकम्मपएसणंतिमो भागो । आवरणाण चउद्धा, तिहा य अह पंचहा विग्घे ॥१॥
मोहे दुहा चउद्धाय, पंचहा वा वि[व]ज्जमाणीणं । वेयणियाउयगोएसु वज्जमाणीण भागो सिं ॥२॥

[कर्मप्र० स० ब० क० २५-२६]

पिंडपगईसु वज्झंतिगाण............। ति

पिण्डप्रकृतयो नामप्रकृतयः। इत्यभिप्रायादुक्तं 'मिच्छत्तदलिय'मित्यादि ।

व्याख्या–¹³⁴'छण्हंपि अणुक्कोसो पदेसबंधे चउव्विहो बंधो' त्ति णाणावरणदंसणावरणवेदणीयणामगोत्त-
मंतराइगाणं एएसिं छण्हं कम्माणं अणुक्कोसगो पदेसबंधो सादियाइचउविगप्पो भवति। कहं ? भन्नइ-एएसिं छण्हं कम्माणं

(१३४) 'छराह पि अरणुक्कोसो पएसबंधे चउव्विहो बंधो' य एष चूर्णौ वेदनीयस्यापि सूक्ष्मसंपरायगुणस्थाने
उत्कृष्टयोगिनः प्रदेशबन्ध उत्कृष्टः प्रतिपाद्यते । स कषायवद्बन्धृ बन्धापेक्षयेति । अन्यथोपशान्तमोहवीतरागादयस्त्रय एव
उत्कृष्टयोगिनो वेद्योत्कृष्टप्रदेशबन्धका ; यतः सकलमपि कर्मदलिकमेषा केवलवेद्यकर्मत्वयैव परिणमतीति प्राग्गुणस्थानकाऽपे-
क्षया एषामेतस्य प्रदेशबन्धः सङ्ख्येयगुण इति । यदुक्तम्—
अप्पं बायर मउयं, बहुं च ल(लु)क्खं च सुक्किलं चेव । मंदं महव्वयं पि य, सायव्वहियं ज तं कम्मं ॥१॥ [ ]
अस्य व्याख्या-तत्केवलयोगप्रत्ययोपात्तं कर्म सद्वेद्य । किं विशिष्टमित्याह-'अल्पं' स्तोकं कषायाभावेन तत्प्रत्यय-
स्थित्यनुभागापोढतया अल्पस्थित्यनुभागत्वात् । तथाहि–तत्कर्मप्रथमसमये बद्ध द्वितीयसमये वेदितं तृतीयसमये निर्जीर्यत इति ।
अनुभागस्तु सर्वजघन्याऽनुभागस्थानकस्य सर्वजघन्यस्पर्धकादप्यनन्तगुणहीनरसमिति । बादरं स्थूलं, तथात्रिधसूक्ष्मपरिणाम-
विरहात् । मृदु कर्कशादिस्पर्शाऽभावेन । बहु च कषायवज्जीवैकसमयप्रबद्धप्रदेशापेक्षया सङ्ख्येयगुणप्रदेशत्वात् । रूक्ष चिर-
कालावस्थानानुगतत्वात् । 'च'शब्दात् सुगन्धि सुच्छायं च । शुक्लं उत्कटशेषवर्णचतुष्टयाभावेन कुमुदोदरगौरं । चशब्द
समुच्चये, एवशब्दोऽवधारणे, स च सर्वत्र सम्बन्धनीयः। ततोऽल्पमेव बादरमेवेत्येवं सर्वत्र विपक्षक्षेपो द्रष्टव्यः । मन्द्रं मधुरं
शर्कराद्यतिशायिरसत्वात् । महाव्ययं बन्धतृतीयसमये सर्वनिर्जरणाच्छेषकर्मणा गुणश्रेणिनिर्जरणाऽविनाभावित्वात् । वा अपि चेति
समुच्चये । सदेव सातं, शुभप्रकृतिवेद्यं । व्यथन व्यथितं पीडेत्यर्थः, न विद्यते व्यथितं यत्र तदव्यथितं । सातं च तदव्यथितं च साता
ऽव्यथितं । एतद्धि देवमानुषसुखेभ्यो बहुतरसुखोत्पादक बुभुक्षातृषादिव्यथाप्रकर्षप्रमाथि चेति भावः । इति गाथार्थः ।

उक्कोसगो पदेसबंधो मोहणिज्जस्स बंधे वोच्छिन्ने सुहुमसंपराइगस्स उवसामगस्स खवगस्स वा उक्कोसे जोगे वट्टमाणस्स उक्कोसो लब्भति एक्कं वा दो वा समया। हेट्ठिलोवि उक्कोसो जोगो लब्भति, तहिं आउगस्स मोहणिज्जस्स य भागो लब्भति त्ति तहिं उक्कोसो पदेशबंधो ण भवइ। एत्थ दोण्हं विभागा एतेसु छसुवि पविट्ठत्ति काउं उक्कोसो लब्भति, स सादिओ अधुवो य। बंधवोच्छेदं करेत्तु पुणो बंधंतस्स अणुक्कस्स सादिओ, अहवा सुहुमरागस्स आदीए उक्कोसो लद्धो, तओ उक्कोसो फिट्टे अणुक्कोसं बंधतस्स अणुक्कोसस्स सादिओ, तं ठाणमपत्तपुव्वस्स अणादिओ ध्रुवाऽध्रुवो पूर्ववत्। 'सेसतिगे दुविगप्पो' त्ति उक्कोसजहन्नाजहन्नेसु सादिओ अधुवो य, कहं? उक्कोसे कारणं भणित। एतेसिं छण्हं जहन्नको पदेसबंधो सुहुमणिगोयस्स अपज्जत्तगस्स सव्वमदवीरियलद्धिस्स पढमसमए वट्टमाणस्स सत्तविहबंधकस्स लब्भइ एकसमयं, ततो वितियसमयादिसु अजहन्नस्स सादिओ वन्धो, पुणो परिब्भमिय संखेज्जेण वा असंखेज्जेण वा कालेण सुहुमणिगोदअप्पज्जत्तगअप्पलद्धिपढमसमयभावं पत्तस्स जहन्नो, एव जहन्नाजहन्नेसु जोगेसु संसारत्था जीवा परिभमंति त्ति काउ सव्वत्थ सादिओ अधुवो य। 'मोहाउ य सव्वहिं चेव' त्ति मोहाउगाणं उक्कोसाणुक्कोसजहन्नाजहन्नो पएसबंधो साइओ अधुवो य। कहं? आउगस्स अधुवबंधित्तादेव सिद्धं, मोहणिज्जस्स सत्तविहबंधगस्स [1]उक्कोसजोगिस्स उक्कोसो पएसबधो लब्भइ, सो य सम्मद्दिट्ठिमिच्छदिट्ठीणं सामन्नो, तम्हा मिच्छदिट्ठिस्स लब्भइत्ति काउं मिच्छदिट्ठि उक्कोसाणुक्कोसेसु परियत्तणं करेइ त्ति

1 'उक्कोसजोगिस्स' इति मु. प्रतौ नास्ति।

॥ १७५

दोसुवि साईओ अधुवो य । जहन्नाजहन्नभावणा सुहुमनिगोयजीवे, जहा नाणावरणस्स तहा भाणियव्वं, तम्हा मोहणिज्जस्स मूलपगतीपडुच्च चत्तारिवि सादिय अधुवा य ॥९०॥

इदाणिं उत्तरपगतीणं भन्नइ—

तीसण्हमणुक्कोसो उत्तरपयडीसु चउविहो बंधो । सेसतिगे दुविगप्पो सेसासु य चउविगप्पो वि ॥९१॥

व्याख्या—'**तीसण्हमणुक्कोसो उत्तरपगतीसु चोव्विहो बंधो**' त्ति पंचणाणावरणाणि, थीणतिगवज्जाणि छदंसणावरणाणि, अणंताणुबंधिवज्जा बारस कसाया, भयदुगुंछा पंचअंतरायइगमिति एतासिं तीसाए कम्मपगतीणं अणुक्कोसो पदेसबंधो सादिआइचउविगप्पो भवति । कहं ? भन्नइ-पंचण्हं णाणावरणाणं सुहुमसंपराइगस्स छव्विहं बंधगस्स पुव्ववत् भावना, मोहाउगभागोवि लब्भइ त्ति । चउण्हं दंसणावरणाणंपि एमेव मोहाउगभागा लब्भंति, सजातियभागलंभो य । णिद्दादुगस्स सत्तविहबंधगस्स उक्कोसजोगिस्स सम्मद्दिट्ठिस्स थीणगिद्धितिगभागो लब्भति त्ति असंजतादि अपुव्वकरणं तेसु उक्कोसो लब्भति, एक्कं वा दो वा समया, सो य सादिओ अधुवो य । उक्कोसाओ परिवडंतस्स बंधवोच्छेदाओ वा अणुक्कोसस्स सादिओ, सम्मत्तभावे उक्कोसजोगं अपत्तपुव्वस्स अणादियो, ध्रुवाऽध्रुवौ पुर्ववत् , अप्पच्चक्खाणावरणस्स असंजयसम्मद्दिट्ठिस्स उक्कोसजोगिस्स उक्कोसो भवति, मिच्छत्तअणंताणुबंधीणं भागो लब्भइ एक्कं वा दो वा समया । ततो परिवडंतस्स अबंधातो वा अणुक्कोसस्स सादिओ, असंजयसम्मद्दिट्ठिभावे उक्कोसजोगं अपत्तपुव्वस्स अणादियो ध्रुवाऽध्रुवौ पूर्ववत् । पच्चक्खाणावरणस्स

संजतासंजतो उक्कोसजोगी उक्कोसं करेइ त्ति, मिच्छत्तअणंताणुबंधिअप्पच्चक्खाणावरणाणंपि भागो लब्भति त्ति एक्कं वा दो वा समया, सेसं जहा अप्पच्चक्खाणावरणस्स, तहा भाणियव्व । भयदुगुंच्छाणं संमद्दिट्ठिस्स उक्कोसजोगिस्स असंयतादि जाव अपुव्वकरणो त्ति एतेसु उक्कोसो लब्भइ, एक्कं वा दो वा समया, । कहं ? भन्नइ–मिच्छत्तभागो लब्भति त्ति। सेसभावणा जहा निद्दापयलाणं तहा भाणियव्वा । कोहसंजलणाए अणियट्टिस्स चउव्विहबंधगस्स उक्कोसजोगिस्स उक्कोसो लब्भति, एक्कं वा दो वा समया। कहं ? भन्नइ–णोकसायभागो लब्भति त्ति काउ, उक्कोसाओ परिवडंतस्स बंधवोच्छेदाओ वा सादिओ, तं ठाणमपत्तपुव्वस्स अणादिओ, ध्रुवाऽध्रुवौ पुर्ववत् । माणसंजलणाए तस्सेव तिविहं बंधगस्स कोहसंजलणाए भागो लब्भति त्ति । शेषप्रश्नः पुर्ववत् । मायाए दुविहबंधकस्स माणभागो लब्भति त्ति शेषं पुर्ववत् । लोभसंजलणाए तस्सेव एगविहबंधगस्स उक्कस्स जोगिस्स उक्कोसो भवति, सव्वमोहभागो तस्स त्ति । शेषं पुर्ववत् । पंचण्हमंतराइगाणं सुहुमसंपराइगस्स छव्विहबंधगस्स उक्कोसजोगे वट्टमाणस्स उक्कोसो लब्भइ। कहं ? मोहाउग भागो लब्भइ त्ति। शेषं पुर्ववत् । 'सेसतिगे दुविगप्पो' त्ति उक्कोसजहन्नाजहन्नेसु सादिओ अधुवो य । कह ? उक्कोसे कारणं पुव्वुत्तं, जहन्नाजहन्नेसु जहा मूलपगतीणं तहा भणियव्वं । 'सेसासु य चउविगप्पो वि' त्ति थीणगिद्धितिगमिच्छत्तणताणुबंधिणामधुवबंधीणं परियत्तमाणीणं च सव्वासिं उक्कोसोऽणुक्कोसो जहन्नोऽजहन्नो य सादिओ अधुवो य। कहं ? भन्नइ–परियत्तमाणीणं अध्रुवबन्धित्वादेव सिद्धं, थीणगिद्धितिगमिच्छत्ताणंताणुबंधीणं उक्कोसो सत्तविहबंधकस्स मिच्छद्दिट्ठिस्स लब्भइ, एक्कं वा दो वा समया, सम्मद्दिट्ठिस्स एतेसिं बंध एव णत्थि, तओ परिवडतस्स अणुक्कोसस्स सादिओ, तओ पुणो उक्कोसजोगं पत्तस्स

॥ १७७ ॥

उक्कोसो, एव उक्कोसाणुक्कोसेसु परिभमंति त्ति दोसुवि सादिओ अधुवो य । णामधुवाणं णवण्हवि मिच्छद्दिट्ठी, सत्तविहबंधको उक्कोसजोगी णामस्स तेवीसबंधको उक्कोसं बंधति, एक्कं वा दो वा समया, सेसनामाण भागो तहिं लब्भति त्ति, सम्मद्दिट्ठिम्मि एतेसिं उक्कोसो ण लब्भइ, तम्हा मिच्छद्दिट्ठी, उक्कोसाणुक्कोसेसु परिब्भमइ त्ति, दोसुवि सादिओ अधुवो य । एतेसिं धुवबंधीणं अधुवबंधीणं वा सुहुमणिगोदाऽपज्जत्तकस्स अप्पविरियलद्धिजुत्तस्स पढमसमए वट्टमाणस्स सव्वजहन्नो पदेसबंधो, तओ जहन्नाजहन्नेसु परिवत्तइ त्ति दोसुवि सादिओ अधुवो य ॥ ९१ ॥

एवं सादियाऽणादियपरूवणा भणिया, इदाणिं सामित्तं मूलुत्तरपगतीणं भन्नइ–

आउक्कस्स पएसस्स पंच मोहस्स सत्त ठाणाणि । सेसाणि तणुकसाओ बंधइ उक्कोसगे जोगे ॥ ९२ ॥

व्याख्या–'**आउक्कस्स पएसस्स पंच**' त्ति मिच्छद्दिट्ठि असंजतादि जाव अप्पमत्तसंजओ एतेसु पंचसुवि आउगस्स उक्कोसो पदेसबंधो लब्भइ । कहं ? सव्वत्थ उक्कोसो जोगो लब्भइ त्ति काउं ।

अन्ने पढंति 'आउक्कोसस्स पदेसस्स छ' त्ति सासणोवि उक्कोसं बंधति त्ति । तं ण, जेण अणंताणुबंधीणं मिच्छद्दिट्ठिम्मि उक्कोसो पदेसबंधो दिट्ठो त्ति जइ सासणेवि अणंताणुबंधीणं उक्कोसो पदेसबंधो होज्ज, तो अणंताणुबंधीणं अणुक्कोसो सादियादिचउव्विहो बंधो लभेज्ज, मिच्छत्तभागो लब्भइ त्ति । अन्नं च '**सेसपएसुक्कडं मिच्छो**' त्ति उवरिं भणिहिति तेण सासणस्स उक्कोसो जोगो न लब्भति त्ति । तेण पंच जणा उक्कोसं करेंति । '**मोहस्स सत्तठाणाणि**

त्ति सासणसम्मामिच्छदिट्ठिवज्जा मोहणिज्जबंधका सत्तविहबंधकाले [1]सव्वेवि उक्कोसपदेसबंधं बंधंति। कहं? भन्नइ, सव्वेसु-वि उक्कोसो जोगो लब्भति त्ति।

अन्ने पढंति 'मोहस्स णव उ ठाणाणि' त्ति सासणसम्मामिच्छेहि सह। तं ण संभवति। कहं? सासणस्स कारणं पुव्वुत्त, सम्मामिच्छदिट्ठिम्मि जइ उक्कोसो लभेज्ज तो 'अजई बितियकसाए' त्ति उवरिं भणिहिति तं ण भणेज्जा, असंजयसम्मद्दिट्ठिसम्मामिच्छदिट्ठीणं जोगं मोत्तूण अन्नो अप्पतरादिविसेसो मूलुत्तरपगतिबंधे भेदो णत्थि त्ति तेण सत्त मोहणिज्जस्स उक्कोसपदेसबंधं बंधति। सासणसम्मामिच्छेसु उक्कोसो जोगो ण लब्भति त्ति तेण ते ण गहिया। '**सेसाणि तणुकसाओ बंधइ उक्कोसगे जोगे**' त्ति सेसाणि मोहाउवज्जाणि 'तणुकसाओ' सुहुमसरागो उक्कोसजोगे वट्टमाणो उक्कोसं बंधति; कहं? मोहाउगाणं भागो लब्भति त्ति काउं; उक्कोसजोगाऽभावे तस्सवि उक्कोसो ण लब्भइ त्ति ॥ ९२ ॥

इदाणिं जहन्नगसामित्तं भन्नइ—

सुहुमनिगोयाऽपज्जत्तगस्स पढमे जहन्नगे जोगे। सत्तण्हं तु जहन्नं आउगबंधेवि आउस्स ॥ ९३ ॥

व्याख्या—'**सुहुमणिगोयाऽपज्जत्तगस्स पढमे जहन्नगे जोगे। सत्तण्हं तु जहन्न**' ति सुहमस्स णिगोदस्स अणंतकाइगस्स अपज्जत्तकस्स लद्धीए अप्पलद्धिस्स वीरियं पडुच्च पढमसमए वट्टमाणस्स आउगवज्जाणं सत्तण्हं कम्माणं जह-

1 'सव्वेसि' इति जे.।

॥ १७९ ॥

मक्को पदेसबंधो भवति, एक्कं समयं । कहं ? अपज्जत्तका सव्वेवि असंखेज्जगुणेणं जोगेणं समए समए वड्ढन्ति त्ति बितिय-समयाइसु जहन्नगो पदेसबंधो न लब्भइ सव्वजहन्नजोगी पढमसमए लब्भति त्ति काउं । 'आयुगबंधेवि आउस्स' त्ति सो चेव सत्तण्हं जहन्नकसामी अप्पणो आउतिभागपढमसमए वट्टमाणो आउगस्स पदेसबंधं जहन्नगं करेइ, एक्कं समयं । कहं ? बीयसमए असंखेज्जगुणेणं जोगेण वड्ढति त्ति ण लब्भति त्ति ॥ ९३ ॥

मूलपगईणं सामित्तं भणियं, इयाणि उत्तरपगतीणं सामित्तं भन्नइ, तत्थ पुव्वमुक्कोसं भन्नति

सत्तर सुहुमसरागो पंचगमनियट्टि सम्मगो नवगं । अजई बितियकसाए देसजई तइयए जयइ ॥ ९४ ॥

व्याख्या—'**सत्तर सुहुमसरागो**' त्ति पंच णाणावरणाणं चत्तारि दंसणावरणाणं सातावेदणीयं जसकित्तिउच्चागोयं पंचण्हमंतरायिगाणं एतेसिं सत्तरसण्हं कम्माणं सुहुमरागो उक्कोसे जोगे वट्टमाणो उक्कोसं बंधति । कहं ? भन्नइ—सव्वेसिं मोहाउगभागा लब्भंति, त्ति । चउण्हं दंसणावरणीयाणं जसकित्तीए य सजातिभागलंभो अत्थि त्ति हेट्ठओ उक्कोसं ण लब्भति, तदभावात् । '**पंचगमणियट्टि**' त्ति पुरिसवेदस्स चउण्ह संजलणाणं अणियट्टि उक्कोसजोगे वट्टमाणो उक्कोसं पदेसबंधं बंधति । कहं ? भन्नइ—अणियट्टि पंचविहबंधको पुरिसवेदस्स उक्कोसं करेइ, हासरतिभयदुगुंछाणं भागो लब्भइ त्ति काउं । कोहसंजलणाए चउव्विहबंधको उक्कोसजोगी उक्कोसं करेइ, पुरिसवेयस्स भागो लब्भइ त्ति काउं । माणस्स तिविहबंधको उक्कोसं बंधइ, कोहभागो लब्भइ त्ति । मायाए दुविहबंधको उक्कोसजोगी उक्कोसं करेइ, माणभागो लब्भइ त्ति । लोह-

संजलणाए एगविहबंधको उक्कोसं करेइ, सव्व मोहभागो तस्सेति । **'सम्मगो णवगं'** ति णिद्दादुगछणोकसायतित्थ-करणामाणं जो सम्मदिट्ठी उक्कोसजोगी सो उक्कोसं पदेसं बंधति । कहं ? भन्नइ-णिद्दादुगस्स असंजतप्पभिति जाव अपुव्व-करणद्धाए संखेज्जइमो भागो त्ति ताव एतेसु सव्वेसुवि उक्कोसो पदेसो लब्भति, थीणगिद्धितिगभागो लब्भति त्ति काउं, सम्मामिच्छस्स उक्कस्सजोगाभावे तंमि ण लब्भति त्ति । हासरतिअरतिसोकभयदुगुंछाणं जे जे तब्बंधका सम्मद्दिट्ठिणो ते ते उक्कोसजोगे वट्टमाणा उक्कोसं पदेसबंधं करेंति मिच्छत्तभागो लब्भति त्ति काउं सव्वेसिं सामन्नं, विसेसाभावा । तित्थगरणाम-स्स देवगतिपाओग्गं तित्थगरसहितं एगूणतीसं बंधमाणाणं उक्कोसजोगीणं असंजतादिअपुव्वंताणं उक्कोसोपदेसबंधो भवति, सव्वेसिं तप्पाओग्गं ति काउं, तीसएक्कतीसबंधेसु उक्कोसो पदेसबंधो ण लब्भति, बहुगा भागा भवंति त्ति काउं । **'अजई बितियकसाय'** त्ति असंजयसम्मद्दिट्ठी उक्कस्सजोगी अप्पच्चक्खाणावरणीयाणं उक्कोसं पदेसं बंधति त्ति । कहं ? मिच्छत्त-अणंताणुबंधीणं भागो लब्भति त्ति, सम्मामिच्छे योगाऽल्पत्वादेव ण लब्भति । **'देसजई तइयए जयइ'** त्ति संजता-संजओ पच्चक्खाणावरणाण उक्कोसजोगी उक्कोसं पदेसं बंधति त्ति, कहं ? मिच्छत्ताऽणंताणुबंधिअप्पच्चक्खाणावरणाणं भागो लब्भति सेसेसु तदभावा ण लब्भति ॥ ९४ ॥

तेरस बहुप्पएसं सम्मो मिच्छो व कुणइ पयडीओ । आहारमप्पमत्तो सेसपएसुक्कडं मिच्छो ॥ ९५ ॥

व्याख्या–**'तेरस बहुप्पएसं सम्मो मिच्छो व कुणइ पगतीओ'** त्ति असातावेदणीयमणुयदेवाउगदेवदुगवेउ-

॥ १८१ ॥

व्वियदुगसमचउरंसवज्जरिसभणारायपसत्थविहायगतिसुभगसुस्सरादेज्जणामाणं एतेसिं तेरसण्हं पगतीणं सम्मद्दिट्ठिस्स वा मिच्छ द्दिट्ठिस्स वा [134] सत्तविहबंधकस्स उक्कस्सजोगिस्स उक्कोसो पदेसबंधो भवति । कहं ? भन्नइ, जो असातं बंधति सो सम्मद्दिट्ठी मिच्छद्दिट्ठी वा सत्तविह बंधको, तेसिं दोण्हवि अविसिट्ठो उक्कोसो जोग्गो, तेण दोसुवि उक्कोसपदेसबंधो अविरुद्धो । एवं मणुस्सदेवाउगाणि दोण्हवि अविरुद्धाणि । देवदुगवेउव्वियदुगसमचउरंसपसत्थविहायगतिसुभगसुस्सरआएज्जणामाणि देव गतिपाओग्गं अट्ठावीसं बंधमाणस्स बंध एंति, हिट्ठिल्लेसु ण एंति, तेण सम्मद्दिट्ठिमिच्छद्दिट्ठीणं उक्कोसजोगीणं उक्कोसो पदेसबंधो अविरुद्धो, एगूणतीसादिसु एतेसिं उक्कोसो ण लब्भति, बहुगा भाग त्ति काउं । वज्जरिसभणारायसंघयणं मणुयगतिपाओग्गं वज्जरिसभणारायसहियं[1] एगूणतीसं बंधमाणस्स बंधं एति, हेट्ठिल्लेसु ण एति तेण दोण्हवि उक्कोसजोगीणं उक्कोसोपदेस बंधो ण विरुद्धो, मिच्छद्दिट्ठिस्स तिरियगतिएवि समं लब्भति, उज्जोवतित्थगरसहिए य तीसइ बंधे वज्जरिसहस्स उक्कोसो पदेसबंधो ण लब्भति बहुगा भाग त्ति काउ । 'आहारमप्पमत्तो' त्ति आहारकदुगस्स अप्पमत्तो त्ति अप्पमत्ताऽपुव्वकरणा य दोवि गहिता, तेसिं उक्कोसजोगीणं देवगतिपाओग्गं आहारकदुगसहित तीसं बंधमाणाणं उक्कोसो पदेसबंधो भवति, एक्कतीसे उक्कोसो ण लब्भति, बहुगा भागा भवंति त्ति काउं । 'सेसपदेसुक्कडं मिच्छो' त्ति भणिय-

(१३५) 'सत्तविहे' त्यादि । त्रयोदशसु प्रकृतिस्वेकादशापेक्षयैव सप्तविधबन्धकस्वमधिकृतं । द्वयोः पुनर्नराऽमरायुषो रष्टविधबन्धकस्येति द्रष्टव्यः । तच्च सुगमत्वाच्चूर्णिकृता न विवक्षितम् ।

1 'वज्जरिसभसंघयणसहिय' इति जे. ।

सेसाण कम्माणं उक्कोसपदेसबंधं मिच्छद्दिट्ठी बंधइ । कहं ? थीणतिगमिच्छत्ताणंताणुबंधीणपुंसगित्थिवेदनिरयदुगतिरियदुग णिरयतिरियाउगणीयागोत्ताणं समद्दिट्ठिस्स बंधो णत्थि, मिच्छद्दिट्ठी सत्तविहबंधगो उक्कोसं बधति, आउगभागो लब्भति त्ति काउं । अन्नेसिपि सम्मद्दिट्ठिअजोग्गाणं योग्गाणं च पगतीणं सो चेव । णामस्स जाओ तेवीसबंधे बधं एंति तासिं तहिं चेव उक्कोसो, पगतीओ सव्वथोवाओ त्ति आउगबंधकालं मोत्तूण उक्कोसजोगिस्स । जासिं तेवीसे बंधो णत्थि मणुयदुगविग लिंदियपंचिंदियजातिओरालियंगोवगसेवट्टपराघायउस्सासतसपज्जत्तकथिरसुभ[1]णामाणं एतासिं उक्कोसो पदेसबंधो पणुवीसबंधगस्स भवति, हेट्ठओ ण लब्भति उवरिंपि बहुकाओ पगतीओ त्ति उक्कोसो ण लब्भति । आयावुज्जोवाण छव्वीसबंधकेसु, णिरयदुगअप्पसत्थविहायगइदुस्सरणामाणं अट्ठावीसबधगस्स उक्कोसो पदेसबधो, उपरि बहुकाओ त्ति ण लब्भति, मज्झिल्लसंघयणसंठाणाणं एगूणतीसबंधगस्स उक्कोसो पदेसबधो, उवरिं ण लब्भति ॥ ९५ ॥

इयाणि उक्कोसजहन्नपदेसबंधसामीण सरूवणिद्धारणत्थं भन्नइ—

सन्नी उक्कडजोगी पज्जत्तो पयडिबंधमप्पयरो । कुणइ पएसुक्कोसं जहन्नगं जाण विवरीए ॥ ९६ ॥

व्याख्या—'**सन्नी उक्कडजोगी पज्जत्तो पयडिबंधमप्पयरो । कुणइ पदेसुक्कोसं**' ति जो मणोपुव्वं किरियं करेइ तस्स सव्वजीवेहिंतो तिव्वा चेट्ठा भवति त्ति सन्निगहणं । सन्नीसुवि जहन्नुक्कोसजोगिणो अत्थि त्ति तेण जहन्न

1'[जसकित्ति]' इति पाठो मु० प्रतौ कोष्ठके वर्त्तते तथापि जे प्रतौ तस्याभावादघटमानत्वाच्च न लिखितः ।

जोगिवुदासत्थं उक्कोसजोगिगहणं । सन्नि अप्पज्जत्तगस्सवि तप्पाओगो उक्कोसो जोगो अत्थि त्ति तव्वुदासत्थं पज्जत्तगगहणं । सोवि सव्वाहिं पज्जत्तीहिं पज्जत्तगस्स [1]'सव्वुक्कोसो जोगो लब्भइ' त्ति सव्वुक्कोसजोगीसुवि जो पगतिओ बहुकाओ बंधइ तस्स भागा बहुगा हुंति त्ति थोकं दलियं लब्भइ, जहा दस कुंभा पंचण्हं दिन्ना ते चेव दिन्ना दसण्हं अद्धं लब्भति तेण पगतिअप्पतरबंधगगहणं **'कुणइ पएसुक्कोसं'** ति सो तारिसो तब्बंधकेसु उक्कोसं पदेसबंधं बंधति, जहासंभवं एतेण बीजेण जहिं जहिं जस्स जस्स कम्मस्स उक्कोसो लब्भति तस्स तस्स तहिं तहिं चिंतेत्तु भाणियव्वं । **'जहन्नगं जाण विवरीए'** त्ति असन्नीएसुवि जहन्नजोगी, तेसुवि सव्वाऽपज्जत्तको लद्धीए, तेसुवि बहुकाओ पगतीओ बंधमाणो सव्वपगतीणं तब्बंधकेसु जो एरिसो सो सव्वजहन्नं पदेसबंधं करेति । एतेण बीजेण वक्ष्यमाणं जहन्नगं नेतव्वं जहासंभवं ॥ ९६ ॥

घोलणजोगि असन्नी बंधइ चउ दोन्नि अप्पमत्तो उ । पंचासंजयसम्मो भवाइ सुहुमो भवे सेसा ॥९७॥

व्याख्या—**'घोलणजोगि असन्नी बंधइ चउ'** त्ति णिरयदेवाउग णिरयदुगं एतेसिं चउण्हं कम्माणं असन्नि पंचिंदिओ सव्वाहिं पज्जत्तीहिं पज्जत्तको अपज्जत्तगस्स बंधो णत्थि त्ति, **'घोलणजोगि'** त्ति परिवत्तमाणजोगी, वाक्कायचेट्ठा तस्स अच्चंतमप्पा भवति त्ति, अपरिवत्तमाणजोगिस्स तिव्वा चेट्ठा भवति, तत्थवि असन्नी पज्जत्तकपाओग्गे सव्वजहन्ने जोगे वट्टमाणो मूलपगतीणं अट्ठविहं बंधमाणो जहन्नं पदेसबंधं बंधति, हेट्ठिल्ला ण बंधति भवपच्चयाओ । सन्नीसु किं न

1 'पज्जत्तयरो तस्स' इति मु. ।

भवति इति चेत् ? भन्नइ,असन्निपज्जत्तकउक्कोसजोगाओ सन्निपज्जत्तगजहन्नगजोगो असंखेज्जगुणो त्ति तेण ण भवति, **'दोन्नि अप्पमत्तो उ'** त्ति घोलणजोगी अप्पमत्तसंजओ अट्ठविहबंधको णामपगतीणं एक्कतीसं बंधमाणो आहारकदुगस्स जहन्नगं पदेसबंधं बंधति । **'पंचासजयसम्मो भवाइ'** त्ति देवदुग वेउव्वियदुगं तित्थकरणामाणं एएसिं पंचण्हं असंजयसंमद्दिट्ठी भवादिसमए वट्टमाणो जहन्नगं पएसबंध बंधति, कहं ? भन्नइ, देवणेरइयाणं तित्थकरणामबंधकाण तओ चुताणं मणुएसु उववज्जताणं उप्पत्तिपढमसमए चेव देवगतिपाओग्गं तित्थकरणामसहितं एगूणतीसं बंधमाणाण सव्वजहन्नजोगीणं देवदुगवेउव्वियदुगाणं सव्वजहन्नो पदेसबंधो । असन्निसु किं न भवति ? इति चेत् , भन्नइ—असन्नि अपज्जत्तकद्धाए वट्टमाणो देवगतिणेरइयगइपाओग्गे ण बंधइ, सन्निअपज्जत्तगजोगाओ असन्निपज्जत्तगजोगो असंखेज्जगुणो त्ति काउं जहन्नगो पदेसबंधो ण भवति । तित्थकरणामस्स मणुओ तित्थकरणामबंधको कालं काउं देवेसु उववन्नो तस्स पढमसमए मणुयगतिपाओग्गं तित्थकरणामसहितं तीस बंधमाणस्स सव्वजहन्नजोगिस्स सव्वजहन्नो पदेसबंधो, अन्नत्थ ण लब्भति । **'भवाइ सुहुमो भवे सेस'** त्ति भवाइ त्ति दोण्हवि सामन्नं, णिरयदेवाउग देवदुग निरयदुगं वेउव्वियदुगं आहारदुगं तित्थगरणामं च मोत्तूण सेसाणं सव्वपगतीणं सुहुमो अपज्जत्तगो भवादिसमए वट्टमाणो हीणवीरिओ अप्पप्पणो ठाणे सव्वबहुकाओ पगतीओ बंधमाणो सव्वजहन्नजोगी सव्वेसिं जहन्नं पदेसबंधं करेइ । णामे अपज्जत्तकसुहुमसाधारणाणं पणुवीसबंधगो, एगिंदियआयवथावराणं छव्वीसबंधको, मणुयदुगस्स एगूणतीसबंधको, सेसाणं णामपगतीणं तीसबंधको जहन्नग पदेसबंधं करेति, सो चेव आउगाणं दोण्हं आउगतिभागादिसमए वट्टमाणो सव्वजहन्नं करेइ । कारणं पुव्वुत्तं । आदिशब्दात् गहितं सामित्तं

भणितं ॥ ९७ ॥

इदाणिं पगतिठितिअणुभागपदेसाणं बंधकारणणिरूवणत्थं भन्नइ—

जोगा पयडिपएसं ठिइअणुभागं कसायओ कुणइ । कालभवखित्तपेक्खो उदओ सविवागअविवागो॥९८॥

व्याख्या—'**जोगा पयडिपएसं ठिइअणुभागं कसायओ कुणइ**' त्ति जोगाओ पगतिबंधो पदेसबंधो य भवति, कहं ? भन्नइ, जोगाओ पएसगहण पदेसविरहिओ पगतीणं बंधो णत्थि, तेण जोगा पगतिपदेसबंधो । ठितिबंधं अणुभागबंधं च कसायतो करेइ । कहं ? भन्नइ, कम्मस्स [1]ठिइ णिद्धता रसभावो य कसायतो भवति, ते चेव ठितिअणुभागा । एत्थ अद्दहणतंदुलदिट्ठंतो, अद्दहणतुल्लो अणुभागो, तंदुलत्थाणीया पदेसा, जो रद्धो सो चिरकालठाति, इतरोवा पगतीवलातिकरणं । एवं बद्धस्स कम्मस्स विपाकणिरूवणत्थं भन्नइ '**कालभवखेत्तपेक्खो उदओ सविवागअविवागो**' त्ति पच णाणावरणा, उवरिल्ला चत्तारि दंसणावरणा, मिच्छत्तं तेजइककम्मइगसरीरं वन्नगंधरसफासा अगुरुलहुगथिराथिरसुभासुभणिम्मेणं पंच अंतराइगमिति एताओ सत्तावीसं पगतीओ धुवोदयाओ सव्वकालं सव्वजीवाणं अत्थि । एआओ मोत्तूण सेसाओ कालं भवं खेत्तं च पडुच्च उदयं देंति । णिद्दापणगकसायणोकसायादयो कालाइ पेक्खिणो । णेरइगतिरियमणुयदेवाणं जाणि एक्कंतप्पाओग्गाणि ताणि तं तं भवं पडुच्च उदयं देंति त्ति भवापेक्खाओ । आकासं खेत्तं तं पप्प आणुपुव्वि-

[1] 'णिबद्धस्स ठिई रसभावो इति मु. ।

मादीणं उदयोमंखेवेणं एत्तिओ उदयभावो विभागतो अणेगमेयभिन्नो। 'उदओ सविवाग अविपागो' त्ति, अप्पणो सभावेण उदेति जो सो सविपाको, जहा मणुयस्स मणुयगति अन्नपगतीभावेणं उदये न देति त्ति । अविपाकी जहा तस्सेव मणुयस्स सेसाओ तिन्नि गतीओ थिवुगसंकमेणं मणुस्सगतिउदयसमए मणुयगतिभावेण परिणता वेदिज्जंति त्ति । अविपाकिणो जचिया ते सव्वेवि अप्पप्पणो जातिए वेदिज्जमाणम्मि परिणता तब्भावेण वेदिज्जति अणुदिन्नस्स खयो नत्थि त्ति ॥९९॥

इयाणिं जोगठितिवधज्झवसाणठाणाणं अणुभागवंधज्झवसाणट्ठाणाणं च एतेसिं बंधकारणाणं कज्जाणं च पगतिठिति-अणुभावपदेसाणं अप्पबहुगणिरूवणत्थ भन्नइ--

सेढिअसंखेज्जइमे जोगट्ठाणाणि होंति सव्वाणि । तेसिमसंखिज्जगुणो पयडीणं संगहो सव्वो ॥ ॥९९॥
ताणि मसंखिज्जगुणा ठिईविसेसा हवंति नायव्वा । ठिइबधज्झवसायाणिऽसंखगुणियाणि एत्तो उ ॥१००॥
तेसिमसंखिज्जगुणा अणुभागे होंति बंधठाणाणि । एत्तो अणंतगुणिया कम्मपएसा मुणेयव्वा ॥ १०१ ॥
अविभागपल्लिछेया अणंतगुणिया भवंति एत्तो उ । सुयपवरदिट्ठिवाए विसिट्ठमतओ परिकहिंति ॥१०२॥

व्याख्या--'सेढिअसंखेज्जइमे जोगट्ठाणाणि होंति सव्वाणि' त्ति 'जोगो' त्ति जोगो वीरियं थामो उच्छाहो परक्कमो चेट्ठा सत्ती सामत्थमिति एगट्ठं, तेसिं ठाणाणि जोगट्ठाणाणि । सव्वजहन्नाओ जोगट्ठाणाओ आढवेत्तु अणंतराऽणंतरं विसेसाहियं जोगट्ठाणं एताए जोगवुड्ढीए ताव गंतव्वं जाव उक्कोसं जोगट्ठाणं ति । 'सेढिअसंखे

अइमे' त्ति ताणि सव्वाणि जोगट्ठाणाणि केत्तियाणि ? भन्नइ, लोकसेढिए असंखेज्जतिभागे जत्तिया आकासपदेसा तत्तियाणि जोगट्ठाणाणि सव्वाणिवि । '**तेसिमसंखेज्जगुणो पगतीणं संगहो सव्वो**' त्ति तेहिं जोगट्ठाणेहिंतो असंखेज्जगुणो पगतीणं समुदयो । कहं ? भन्नइ, ओहिणाणओहिदंसणावरणाणं पगतीओ असंखेज्जलोकाकासपदेसमेत्ताओ, तेसिं खयोवसमभेदा वि तत्तिया चेव । चउण्हमाणुपुव्विणामाणं असंखेज्जाओ पगतीओ, लोगस्स वि संखेज्जतिमे भागे जत्तिया आकासपदेसा तत्तियाओ । सेसा पसिद्धा । एते अहिकिच्च जोगट्ठाणेहिंतो असंखेज्जगुणाओ पगतीओ एक्केक्के जोगट्ठाणे वट्टमाणाणं एताओ सव्वाओ बंधंति त्ति । '**तासिमसंखेज्जगुणा ठिईविसेसा हवंति नायव्व**' त्ति तासिं पगतीणं असंखेज्जगुणा ठितिविसेसा ठितिभेदा इत्यर्थः । कहं ? भन्नइ, एक्केक्काए पगतीए जहन्नकठितीओ आढवेत्तु ताव जाव उक्कोसठिती एतासिं मज्झे जत्तियाणि तरतमजोगेणं समयोत्तरवड्ढिताणि ठितिठाणाणि (ठिइविसेसाणि) ताणि पगतिसमूहेहिंतो असंखेज्जगुणाणि, एक्केक्कंमि असंखेज्जभेदा लब्भंति त्ति काउं । '**ठिइबंधअज्झवसाणाणि असंखेज्जगुणाणि एत्तो उ**' त्ति ठिइविसेसेहिंतो ठिइबंधज्झवसाणाणि असंखेज्जगुणाणि । कहं ! भन्नइ, ठितिं निव्वत्तेंति जाणि अज्झवसाणठाणाणि ताणि ठितिबंधज्झवसाणठाणाणि [136]कसायोदयाति वुच्चंति, ताणि अंतोमुहुत्तमेत्तकालपरिमाणाणि ताइं च जहन्नके ठितिठाणे

(१३६) 'ठितिबंधज्जवसाणे' त्यादि । स्थितिर्जीवप्रदेशाऽविभागेन कर्मणोऽवस्थानशक्तिस्तस्याबाधाविधानं स्थितिबन्धः । अध्यवसायः कषायोदयपरिणामः । स एव स्थानं, तिष्ठति जीवोऽस्मिन्नितिकृत्वाऽध्यवसायस्थानं । स्थितिबन्धस्याध्य-

असंखेज्जलोयागासपदेसमेत्ताणि जहन्नगाओ आढवेत्तु उवरिमाणि छट्ठाणवड्डियाणि, तओ समउत्तराए ठितिए ठितिबंधज्झवसाणठाणाणि अन्नाणि, असखेज्जलोगागासपदेसमेत्ताणि, तओ विसेसाहिकाणि, तओवि समउत्तराए ठितिए ठितिबंधज्झवसाणठाणाणि अपुव्वाणि असंखेज्जलोगागासपदेसमेत्ताणि तेहिंतो विसेसाहिकाणि एव सव्वाए नेयव्व जाव उक्कोसिया ठिति त्ति । एक्केक्के ठितिठाणे असंखेज्जलोगागासपदेसमेत्ताणि ठितिबंधज्झवसाणठाणाणि लब्भंति त्ति ठितिविसेसेहिंतो ठितिअज्झवसाणठाणाणि असंखेज्जगुणाणि । '**तेसिमसंखेज्जगुणा अणुभागे होंति बंधठाणाणि**' त्ति तेसिं ठितिबंधज्झवसाणठाणाणं असंखेज्जगुणाणि अणुभागबंधज्झवसाणठाणाणि । कहं ? भन्नइ, ठितिबंधज्झवसाणठाणाणि णाम कसायोदयपरिणामो गामणगरादिपरिणामवत्, तेसिं उच्चणीयमज्झिमकुड्डवग्गिहविशेषवत् तेषु ठितिबंधज्झवसाणेसु तिव्वमंदमज्झिम-

---

वसायस्थान स्थितिबन्धाऽध्यवसायस्थान । एवमनुभागबन्धाध्यवसायस्थानमपि । परमनुभागो रसोऽनु पश्चात् बन्धस्य भज्यते सेव्यत इति कृत्वा । तत्रानेकैरपि स्थितिबन्धाध्यवसायस्थानैरेकमेव स्थितिबन्धस्थानमुत्पद्यते । अनुभागबन्धाध्यवसायस्थानानि तु स्वस्वयथाऽनुभागस्थानानामुत्पादकानि । अनुभागस्थान नाम एकसमयगृहीतस्य ज्ञानावरणादिकर्मप्रदेशप्रचयस्य रस । उक्तं च-

"कि ठाणं णाम ? एगसमये जो दीसति कम्माणुभागो त ठाण णाम" [ ]

स्थितिबन्धाध्यवसायस्थानानामनुभागबन्धाध्यवसायस्थानानां च कः प्रतिविशेषः ? इति चेत्, उच्यते-न कश्चिदेकान्तिकः. तथा ह्येकैकस्य स्थितिबन्धाध्यवसायस्थानस्याऽसंख्यलोकाकाशप्रदेशप्रमाणानि द्रव्यक्षेत्रकालभावभेदलक्षणानि सहकारिकारणानि सन्ति । ततः तदेकमपि द्रव्यतया एकमपि स्थितिबन्धविशेष कुर्वाण तत् तत् सहकारिकारणवशादाविर्भूततत्तच्छक्तिविशेष तत्रैवस्थितो तावतोऽनुभागबन्धः स्थानविशेषाण(विशेषा)नुत्पादयतीति । न चैतदनुपपन्न नाम, अनेकशक्ति-

परिणामाणि अणंगभेदभिन्नाणि जहन्नेणेक्कसमयपरिणामपरिमाणाणि, उक्कोसेणऽट्ठसमयपरिणामपरिमाणाणि अणुभागबंधज्झवसाणठाणाणि असंखेज्जगुणाणि वुच्चंति, ताणि असंखेज्जलोकाकासपदेसमेत्ताणि एक्केक्कंमि ठितिबंधज्झवसाणठाणे, तेण अणुभागबंधज्झवसाणठाणाणि असंखेज्जगुणाणि भवन्ति । 'एत्तो अणंतगुणिया कम्मपदेसा मुणेयव्व' त्ति 'एत्तो'

प्रचितस्य वस्तुनस्तत्तत्सहकारिकारणवशेन उपाधा (धि)भेदात् स्फटिकप्रतिच्छायावत् । सा सा क्रिया शक्तिरभिव्यक्तीर्भवति । उक्तं चैतदर्थानुपाति कर्मप्रकृतिप्राभृते—"सव्वविसुद्धसंजमाभिमुहचरमसमयमिच्छाइट्ठिस्स णाणावरणजहन्नठिइबंधपाउग्गाणि असंखेज्जलोगमेत्तविसोहिठाणाणि होन्ति । पुणो तेसिं उक्कस्सचरमविसोहिए असंखेज्जलोगउत्तरकारण [1][सहायाए वज्झमाणाणुभागट्ठाणाणि असंखेज्जलोगमेत्ताणि अत्थि एवंद्विचरमादिविशुद्धस्थानेष्वपि वाच्यम् ।" एवं च तदेकमपि स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान] तत्तत्सहकारिकारणवशात् तत्तदनुभागबन्धाध्यवसायमितिव्यपदिश्यत इति नात्यन्तिकोऽमीषां भेद इति । न चैतानि कश्चिदेको युगपद् बध्नाति, समयबद्धानुभागस्यैकस्थानकत्वात् । यदुक्तं 'किं स्थानं ? समयबद्धोऽनुभाग' इति । यच्चूर्णि [कृ] ताऽनुभागस्थानप्ररूपणायां ग्रामनगरादिसमयेषु स्थितिबन्धाद्यध्यवसायस्थानेषूच्चनीचादिकुलकल्पत्वकल्पनयाऽनुभागबन्धाध्यवसायस्थानाविभागो वृत.(कृत) स यद्यपि यो (यौ) गपद्यभावभ्रममुत्पादयति तथाप्येकस्यानेके विशेषा इति ख्यापनपरतयाऽत्र बोद्धव्यो, न तु यो(यौ)गपद्यप्रवृत्तिप्रतिपादनपरतया यद्वा भिन्न तत्सहकारिकारणसहायमेकं स्थितिबन्धाध्यवसायस्थानमाश्रितान् नानाजीवानपेक्ष्य यौगपद्येनाप्येतान्यनुभागबन्धाध्यवसायस्थानानि स्युरिति ॥छ॥ शतकचूर्णिविषमकतिपयपदविवरणं समाप्तम् ॥छ।

[1]बृहत्कोष्ठद्वयान्तरगतपाठ. कर्मप्रकृतिचूर्णिटिप्पनतो योजितः ।

त्ति अणुभागबंधज्झवसाणठाणेहिंतो कम्मपोग्गला ते अणतगुणा, कहं? भन्नइ, कम्मपोग्गलगहणसमए जो परिणामो सो अणुभागबंधज्झवसाणठाणपरिणामो वुच्चति । किं कारणं ? भन्नइ, तओ परिणामविसेसाओ तेसु पोग्गलेसु रसविसेसो भवति त्ति । ते च कम्मपोग्गला अभव्वसिद्धिकेहिं अणंतगुणा सिद्धाणमणंतभागमेत्ता एक्केक्कंमि समए गहणं एंति । एवमणुसमयं एक्केक्कंमि परिणामम्मि अणंताणंतकम्मपोग्गला लब्भति त्ति काउं अज्झवसाणठाणेहिंतो कम्मपोग्गला अणंतगुणा । **अविभागपलिच्छेदा अणंतगुणिया हवंति एत्तो उ'** त्ति 'एत्तो उ' त्ति कम्मपोग्गलेहिंतो अविभागपलिच्छेदा अणंतगुणिता । कहं ? भन्नइ, जहा अद्दहणविसेसाओ सित्थेसु रसविसेसो दिट्ठो तहा अज्झवसाणविसेसाओ कम्मखंधेसु रसविसेसो भवति, अज्झवसाणाइं अद्दहणतुल्लाइं तंदुलत्थाणीया कम्मप्पदेसा । जो एक्कंमि सित्थे रसो सो विभज्जमाणो २ भागं ण देइ सो अविभागपलिच्छेदो । एव कम्मखंधेसु जो अणुभागरसो सो केवलणाणेण विभज्जमाणो विभज्जमाणा भागं ण देति सो अविभागपलिच्छेदो वुच्चति, तारिसा अविभागा पलिच्छेदा एक्केक्कंमि कम्मपदेसम्मि सव्वजीवाण अणंतगुणा लब्भंति, उक्तं च-

"गहणसमयंमि जीवो उप्पाएउ गुणे सपच्चयतो । सव्वजियाणतगुणो कम्मपदेसेसु सव्वेसु ॥ १ ॥" त्ति [कर्मप्र० व० २९]

तेण कम्मपदेसेहितो अविभागपलिच्छेदा अणतगुणिता । **सुयपवरदिट्ठिवाए विसिट्ठमतयो परिकहेति'** त्ति सुयं दुवालसंगं-प्रवरं प्रधानं सुए पवरं सुयपवरं, किं तत् ? उच्यते दिट्ठिवादो, तम्मि दिट्ठिवाए दिट्ठवादत्थे विशिष्टा प्रधाना प्रकृष्टा मतिर्बुद्धिर्येषां ते विशिष्टमतयो दृष्टिवादार्थज्ञा इत्यर्थः, ते एवं दिट्ठिवायत्थं तु परिकहति ॥९९॥१००॥१०१॥१०२॥

इदाणिं उवसंहरणणिमित्तं भन्नइ—

एसो बंधसमासो बिंदुक्खेवेण वन्निओ कोइ । कम्मप्पवायसुयसागरस्स णिस्संदमेत्ताओ ॥ १०३ ॥

व्याख्या—'**एसो**' त्ति जो भणिओ '**बंधसमासो**' त्ति बंधाणं पगतिठितिअणुभागपदेसाणं संखेवो '**बिंदुक्खेवेण वन्निओ**' त्ति पिंडोत्क्षेपेण पिंडेणेव उद्धरिय कम्मपवाए जहा ठितं तहा उद्धरिय '**वन्निओ**' भणिओ '**कोइ**' त्ति किंचिमेत्तं, '**कम्मप्पवायसुत्तं**' त्ति कम्मविवागं जं भणइ सत्थं तं कम्मप्पवादं कर्मप्रकृतिरित्यर्थः, कम्मप्पवादसुतमेव सागरो कम्मप्पवादसुतसागरो, तस्स कम्मप्पवादसुतसागरस्स णिस्संदमेत्तको जहा घतघडादीणं णिस्संदो तुच्छो, तहा कम्मप्पवादसुतसागरस्स णिस्संदमेत्तो अत्यन्ताऽल्प इति भणियं भवति ॥ १०३ ॥

इयाणिं आयरिओ अप्पणो गारवणिरहरणत्थं अन्नेसिं च बुद्धिपकरिसदरिसणत्थं छउमत्थबुद्धिलक्खणं च दरिसेंतो भन्नति—

बंधविहाणसमासो रइओ अप्पसुयमंदमइणा उ । तं बंधमोक्खणिउणा पूरेऊणं परिकहेंति ॥ १०४ ॥

व्याख्या—'**बंधविहाणसमासो**' त्ति बंधस्स विहाणं-भेदो तस्स समासो-संखेवो '**रइओ**' गहियो '**अप्पसुयमंदमइणा**' मंदं-तुच्छं मति-बुद्धि, अल्पश्रुतेन मंदमतिना, रतितो त्ति एवं ज्ञात्वा सिद्धान्तविरुद्ध-विपरीतं वा '**तं बंधमोक्खणिउणा पूरेऊण परिकहेंति**' ति त-विरुद्धं विपरीतं वा बंधमोक्खणिपुणा-बंधमोक्खकुसला इत्यर्थः '**पूरेऊणं परिकहेंति**' त्ति पडिपुन्नं करेत्तु भणेज्जा ॥१०४॥

इय कम्मपयडिपगयं संखेवुद्दिट्ठं णिच्छियमहत्थं । जो उवजुज्जइ बहुसो सो णाहिति बंधमोक्खट्ठं ॥१०॥

व्याख्या–'**इय**' त्ति एवं **कम्मपगडीगयं** कम्मप्पगडिअहिगारं '**संखेवुद्दिट्ठ**' संखेवेण कहियं; '**णिच्छियमहत्थं**' ति परिच्छिन्नमहत्थं महार्थता कथमितिचेत् ? भन्नइ, एतेण वीएण सेमोवि महग्गंथो सुहमहिगम्मइ त्ति, जो पुरिसो **उवजुज्जइ**' भुज्जो भुज्जो चिंतेइ, सो पुरिसो 'णाहिति' जाणिहिति '**बंधमोक्खट्ठ**' बंधमोक्खसरूवं बन्धमोक्षार्थमिति ॥ १०५ ॥

[चूर्णिटिप्पनकृत्प्रशस्ति.–]

किञ्चिच्चूर्णिगिरां व्यधायि व्यशद् (विलसद्) प्रज्ञाप्रकर्षाहृते
ऽप्येतच्चर्चनमर्चितक्रमगुरुप्रौढप्रसादोदयात् ।
सगृह्णन्तु विशोधयन्तु विदुषामाख्यान्तु तत्साम्प्रतम् ,
धीमन्त. सुजना. यतोऽञ्जलिमह बद्ध्वा वा समभ्यर्थये ॥१॥

(शार्दूलविक्रीडितम्)

श्रीमच्चन्द्रकुलीनेन, मुनिचन्द्रेण सूरिणा ।
गुणचन्द्राभिधश्राव(श्राद्ध)–प्रार्थितेन सता कृतम् ॥२॥

(अनुष्टुब)

कि(वि)क्रमात् समतिक्रान्तै–रेकपञ्चाशताधिकै ।
एकादशवर्षशतै.(११५१)टिप्पनं निर्मित गतम् ॥३॥

(अनुष्टुब्)

यदत्र मतिमोहेन किञ्चिदागमवर्जितम् ।
बद्धं वस्तु मया तत्र, मिथ्यादुष्कृतमस्तु मे ॥४॥

(अनुष्टुब्)

इति शिताम्बरश्रीमुनिचन्द्रसूरिविरचितं शतकटिप्पनकं समाप्तम् ।

प्रत्यक्षर निरूप्य तस्य, ग्रन्थमानं विनिश्चितम् ॥
शतानि नव पञ्चाश-दधिका पञ्चभिस्तथा ॥ १ ॥

॥ ग्रन्थाग्रं ९५५ ॥

यदक्षरं परिभ्रष्टं, मात्राहीनं च यद्भवेत् ॥
क्षन्तव्य तद्बुधैः सर्वं, कस्य न स्खलते मन. ॥ २ ॥

संवत् १३३४ वर्षे द्वि फागुणवदी ११ शनावद्येह श्रीमत्पत्तने महाराजश्रीसारंगदेवराज्ये श्री सङ्घेन शतकटिप्पनक लिखापितं ॥छ॥ लाखणेन लिखितं ॥छा॥ ॥छा॥ ॥छा॥
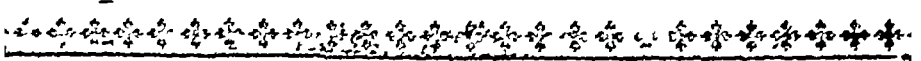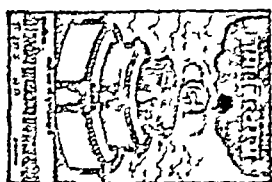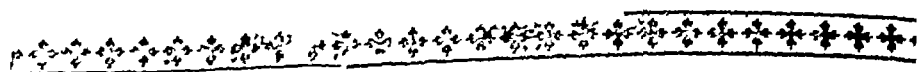
卐

इति श्रीमद्मुनिचन्द्रसूरिभिर्विरचितविषमपदटीप्पनकममलङ्कृतया

चिरंतनाचार्यकृतचूर्ण्या विभूषितं

पूर्वधरवाचकवरश्रीशिवशर्मसूरीश्वरप्रणीतम्

बन्धशतकम्

॥ समाप्तम् ॥

卐

अर्हम्

श्रीउदयप्रभसूरिविरचितटिप्पनयुतं पूर्वधराचक्रवरश्रीशिवशर्मसूरीश्वरप्रणितं

बन्धशतकम्

प्रणम्य श्रीमहावीरं श्रीशतकस्य टिप्पक[न]म् । श्रीउदयप्रभसूरि कुरुते बुद्धिवृद्धये ॥ १ ॥

अरहंते भगवंते अणुत्तरपरक्कमे पणमिऊणं । बंधसयगे निबद्धं संगहमिणमो पवक्खामि ॥ १ ॥

प्रक्षेपगाथेयम् सुगमा ॥

सुणह इह जीवगुणसन्निएसु ठाणेसु सारजुत्ताओ । वोच्छं कइवइयाओ गाहाओ दिट्ठिवायाओ ॥ २ ॥

श्रृणुत, अत्र प्रकरणे जीवगुणनामस्थानयोः सारः कर्मविचारप्रधानस्तेन युक्ता । वक्ष्ये शिवशर्मसूरिरह कियत्यो [तीर]पि शतमानाः । गीयन्ते प्रतिपाद्यन्तेऽर्था आभिरिति गाथा. । दृष्टिवादे द्वितीयमग्रायणीयाख्यं पूर्वमस्ति तत्र प्रणिधिफलाख्य पञ्चम वस्तु । तत्राऽपि कर्मप्रकृतिप्राभृत नाम, प्राभृत श्रत विशेषरूपम् । (तत्रापि यत्कर्मप्रकृतिलक्षण द्वारं) तस्मादुद्धृत्यैता गाथा वक्ष्ये इति भावार्थ । एतेन शास्त्रगौरवमापादित मगल च । अभिधायकमिद शास्त्रम् । शास्त्रार्थो अभिधेय । ताभ्यां सबधः । प्रयोजन श्रोतृकर्त्रोरैहिकामुष्मिकफलमिति ॥२॥ द्वारगाथाद्वयमाहः--

उवयोगा-जोगविहा जेसु य ठाणेसु जत्तिया अत्थि । जप्पच्चईउ बंधो होइ जहा जेसु ठाणेसु ॥ ३ ॥

बधं उदयोदीरणविहिं च तिण्हं पि तेसि सजोग । बंधविहाणा य तहा किंचि समासं पवक्खामि ॥ ४ ॥

उपयोगयोगयोर्भिधयो-भेदा' ययोर्जीवगुणस्थानयोर्यावन्त सन्ति तेऽत्राभिधास्यन्ते । चकारो भिन्नक्रमो, यत्प्रत्ययश्च बंध. सामान्यतो मिथ्यात्वादिहेतुभिः कर्मणां तच्चाभिधास्यते । 'होइ जह' त्ति. स एव बन्ध प्रत्येक ज्ञानावरणादिकर्मणा ज्ञान-प्रत्यनीकतादिभिर्विशेषहेतुभिर्यथा तदप्यभिधास्ये, येषु गुणस्थानेषु बन्धोदयोदीरणाभेदास्तान्भणिष्यामि । तेषां सयोगं च-एतावती प्रकृतीर्बध्नन्नेतावतीर्वेदयत्युदीरयति च समं । बंधविधाने (बन्ध)भेदे च प्रकृतिस्थित्यनुभावप्रदेशलक्षणे समास सक्षेप किंचि त्प्रवक्ष्यामीति योग' । 'तथा'यथा कर्मप्राभृतमुक्त । **भावार्थस्त्वयम्**-उपयोगो जीवस्वतत्त्वभूतो बोधः । स द्वेधा ज्ञानपञ्चकम-ज्ञानत्रिकं च । विशेषविषय. साकारः ।१। दर्शनचतुष्कं सामान्यविषयोऽनाकार. ।२। एव द्वादशधा ॥ योगो जीवस्य वीर्यं स मनोवाक्कायभेदात् त्रिधा, त्रिविधोऽपि पंचदशधा यथा-सत्यम्, असत्य, सत्यासत्यम्, असत्यामृषेति चतुर्धा मनो वाक् च, काय औदारिक १ औदारिकमिश्र २ वैक्रिय ३ वैक्रियमिश्र ४ आहारक ५ आहारकमिश्र ६ कार्मण ७ कायाः एवं १५ ॥ बंधविधान-भेदः प्रकृत्यादि ( ) मोदकवत् । वाताद्यपहारिणी प्रकृति । पक्षादिका स्थितिः । अनुभावः-स्निग्धमधुर एकगुणो द्विगुणो वा रसः । प्रदेश -कणिक्काप्रभृतिमानकमानः । एवं कर्मापि, ज्ञानाद्यावारिका प्रकृतिः । त्रिंशत्सागरकोटाकोटिका स्थितिः । एकस्थानादि-तीव्रमन्दादिको रसः । अल्पबहुः प्रदेश । एष चतुर्विधोऽपि कर्मण उपादानकाल एव बध्यते ॥३-४। जीवस्थानान्याह—

एगिंदिएसु चत्तारि हुंति विगलिंदिएसु छच्चेव । पंचिंदिएसु य तहा चत्तारि हवन्ति ठाणाइं ॥ ५ ॥

जीवन्ति जीविष्यन्ति जीवितवन्त इति जीवाः, तेषां स्थानानि सूक्ष्मैकेन्द्रियादीनि चतुर्दशैव । तत्र एकेन्द्रियेषु सूक्ष्मोपि पर्याप्तापर्याप्तो बादरोपि पर्याप्तापर्याप्त इति चत्वारि जीवस्थानानि । विकलेन्द्रियेषु द्वित्रिचतुरिन्द्रियेषु पर्याप्तापर्याप्तभेदात् षडेव पचेन्द्रियेषु संज्ञ्यसज्ञिरूपेषु पर्याप्तापर्याप्तभेदाच्चत्वारि, एव सर्वाण्यपि चतुर्दश ।।५।। मार्गणास्थानेषु जीवस्थानान्याह—

तिरिय गईए चउदस हवन्ति सेसाओ जाण दो दो उ । मग्गणठाणेसेवं नेयाणि समासठाणाणि ॥ ६ ॥

तत्र — गई १ इन्दिय २ काये ३ जोए ४ वेए ५ कसाय ६ नाणे ७ य ।
सजम ८ दसण ९ लेसा १० भव ११ सम्मे १२ सन्नि १३ आहारे १४ ॥ ७ ॥

इति चतुर्दशमार्गणास्थानानि । मृग्यन्ते जीवादय एष्विति । तत्र तिर्यग्गतौ चतुर्दशापि जीवस्थानानि भवन्ति । शेषासु नारकनरदेवगतिषु द्वे द्वे सज्ञिपर्याप्तापर्याप्तरूपे । अपर्याप्तो लब्ध्या करणेन द्विधापि । तत्र योऽपर्याप्त एव म्रियते स लब्ध्यपर्याप्त । यस्तु करणादीनि नाद्यापि पूरयति, पर पूरयिष्यति स करणाऽपर्याप्तः । नरेषूभयथापि भवति । नारकदेवयो' करणाऽपर्याप्त एव । असज्ञ्यपर्याप्तो नरस्तु तिर्यग्गतौ ज्ञेयोऽल्पकालिकत्वाद्वा न तृतीय प्रोक्तः । मार्गणास्थानेष्वेव सक्षेपजीवस्थानानि ज्ञेयानि । 'इन्दिय' त्ति स्पर्शने सर्वाणि । रसने एकेन्द्रियसभवीनि चत्वारि वर्जयित्वा शेषाणि दश । घ्राणे एक-द्वीन्द्रियसभवीनि षड्वर्जयित्वा शेषाण्यष्टौ । चक्षुषि चतु पचेन्द्रियसबधीनि षट् । श्रवणे पचेन्द्रियसबधीनि चत्वारि । 'काय' त्ति-पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतिष्वेकेन्द्रियसंबधीनि चत्वारि । त्रसेष्वेतानि वर्जयित्वा शेषाणि दश । 'जोए' त्ति मनोयोगे सज्ञिपर्याप्तरूप एक, वाग्योगे पर्याप्तद्वित्रिचतुरसज्ञिसज्ञिरूपाणि पच, काये चतुर्दशापि । 'वेए' त्ति-स्त्रीपु वेदयो पर्याप्त-करणापर्याप्तसज्ञ्यसज्ञिरूपाणि चत्वारि । लब्ध्यपर्याप्त. सर्वोऽपि नपुसक एव । यच्चात्रासज्ञिनि स्त्रीपु साभिधान तत्कार्मग्रथिकमतेन न सैद्धान्तिकेन । नरासज्ञिनस्तु लब्ध्यपर्याप्त एव । नपुंसके चतुर्दशापि । वेदाभावे सज्ञिपर्याप्तरूपमेकम् । 'कसाय' त्ति-तेषु चतुर्दशापि, अभावे सज्ञिपर्याप्त. । 'नाणे' त्ति-मतिश्रुतावधिषु सज्ञिपर्याप्तकरणापर्याप्तरूपे द्वे । लब्ध्यपर्याप्तस्तु मिथ्यादृगेव । ननु सासादनः समतिश्रुत. पृथिव्यादिषूत्पद्यते, कथ द्वे एव ? आह अशुद्धत्वान्न विवक्षित । मन.पर्यायकेवलयो. सज्ञिपर्याप्त एक., द्रव्यमनसा केवली सज्ञी । मतिश्रुताज्ञानयो. सर्वाणि, विभगे सज्ञिपर्याप्त. करणापर्याप्तश्च । 'संजम' त्ति-सामायिक १ छेद २ परिहार ३ सूक्ष्म ४ यथाख्यात ५ देश-

विरतेषु ६ पर्याप्तसञ्ज्ञी एक । असजमे चतुर्दश। 'दंसण' त्ति–चक्षुर्दर्शने पर्याप्तचतुरसञ्ज्ञि सञ्ज्ञिरूपाणि त्रीणि, करणापर्याप्तत्वे पञ्चेत्येके । अचक्षुःषि चतुर्दश। अवधौ–अवधिज्ञानवत् । केवले केवलज्ञानवत् । लेस' त्ति–कृष्णनीलकापोतासु चतुर्दश। तेजःपद्मशुक्लासु सञ्ज्ञिपर्याप्त करणापर्याप्तश्च । देवच्युत. करणापर्याप्त एकेन्द्रियश्चूर्णिकृताल्पकालिकत्वान्न विवक्षित. । 'भव' त्ति–भव्याभव्ययोश्चतुर्दशापि । 'सम्म' त्ति: क्षायिक-वेदक क्षयोपशमिकेषु सञ्ज्ञिपर्याप्त करणापर्याप्तश्च । कथं ? कश्चित् बद्धायुष्कः क्षायिकं कश्चित् क्षप्यमाणक्षायोपशमिकश्चरमग्रासरूपं वेदक चोत्पाद्य गतिचतुष्केष्वपर्याप्त क्षायिको वेदकश्च लभ्यते क्षायोपशमिकस्तु देवेभ्यश्च्युतस्तीर्थकरादिः । औपशमिके पर्याप्त संज्ञी अपर्याप्तमपि केचित् । सासादने लब्धिपर्याप्ताः करणेन त्वपर्याप्ताः बादरैकद्वित्रिचतुरसंज्ञिनो लभ्यन्ते, संज्ञी लब्ध्या पर्याप्त एव, करणेन त्वपर्याप्तः पर्याप्तश्च । मिश्रे करणपर्याप्त संज्ञी । मिथ्यात्वे चतुर्दश । 'सन्नि' त्ति सञ्ज्ञिनि पर्याप्तापर्याप्तरूपे द्वे, असंज्ञिनि-द्वादश । 'आहारे' त्ति–आहारके चतुर्दश, अनाहारके [अपर्याप्त] सूक्ष्मबादरैकेन्द्रियद्वित्रिचतुरसञ्ज्ञिसञ्ज्ञिरूपाणिविग्रहगतौ सप्त; [पर्याप्तः] संज्ञी केवलिसमुद्घाते ॥७॥ जीवस्थानेषूपयोगानाह—

एक्कारसेसु तिगतिग दोसु चउक्कं च बारसेगंमि । जीवसमासेसेवं उवओगविही मुणेयव्वा ॥ ८ ॥

पर्याप्तचतुरसञ्ज्ञिसंज्ञिवर्जेष्वेकादशसु मतिश्रुताज्ञानाचक्षुर्दर्शनरूपास्त्रयः । द्वयोश्चतुरसञ्ज्ञिनोस्तु त एव चक्षुर्दर्शनेन सह चत्वारः । एकस्मिन्सञ्ज्ञिपर्याप्ते द्वादश करणापर्याप्तस्(तीर्थंकरः) पर्याप्तत्वेन गृहीत ॥८॥ जीवस्थानेषु योगानाह—

नवसु चउक्के एक्के योगा एक्को य दुन्नि पन्नरस । तब्भवगएसु एए भवंतरगएसु काओगो ॥ ९ ॥

यथासंख्यं सूक्ष्मबादरपर्याप्तापर्याप्तैकेन्द्रिय ४ द्वित्रिचतुरसञ्ज्ञिसंज्ञ्यपर्याप्ता ५ एषु नवस्वेकः काययोगः सामान्यतः । विशेषतस्तु लब्ध्या करणेन चापर्याप्तेषु सप्तस्वप्यौदारिकमिश्रः ॥ पर्याप्तस्य सूक्ष्मबादरैकेन्द्रियस्य वायुवर्जस्यौदारिकः । वायोस्तु

वादरपर्याप्तस्य वैक्रिय' २ मिश्रौदारिकश्च लभ्यते । चतुष्के करणपर्याप्तद्वित्रिचतुरसञ्ज्ञिरूवे द्वौ औदारिक १ असत्यामृपावाक् च २ एकस्मिन् पर्याप्तसञ्ज्ञिनि पचदशापि । तद्भवगतेष्वेते । भवान्तरगतेषु तु विग्रहगतौ एक कार्मणकाययोग' ॥९॥

उवओगा योगविही जीवसमासेसु वण्णिया एए। एत्तो गुणेहि सह परिगयाणि ठाणाणि मे सुणह॥ १०॥

कण्ठ्या ॥१०॥

मिच्छद्दिट्ठी सासण मिस्से अजए य देशविरए य । नव संजएसु एए चउदसगुणनामठाणाणि ॥११॥

मिथ्या-विपर्यस्त दर्शनम्-सम्यक्त्व यत्र स मिथ्यादृष्टि' तस्य गुणस्थानम् किंचिद् ज्ञानसद्भावादन्यथा जीवस्याजीवत्व स्यात्। अनाद्यनन्तमभव्यानाम्, अनादिसान्त भव्यानाम् सादिसान्त [सम्यक्त्वपतितानाम्] ज० अतर्मुहूर्तम् [उ० अपार्धपुद्गल-परावर्तम् ,] ॥१॥ आयम्—औपशमिकलाभ सादयति आसादनम्, नैरुक्तो यलोप, सह आसादनेन वर्तते १ सह आसातनया अनन्तानुवधिरूपया वा वर्तते सासादनः २ सह सम्यक्त्वरसास्वादनेन वर्तते सास्वादन. ३ स चासौ सम्यग्दृष्टिश्च तस्य, गु० ज० समयः । उ० षडावलिकाः । कथ ? ग्रन्थिभेदानन्तर जन्तु' स्थितित्रयमित्थ करोति ॥

△△△
अन्तरकर०
अनिवृत्ति०
अपूर्वकर०
यथाप्रवृत्त०

प्रथमान्तर्मुहूर्तं मिथ्यात्वे तत्रापूर्वानिवृत्यन्तेऽन्तरकरणाद्यसमये औपशमिकस्तस्यान्तर्मुहूर्तान्त्य-समये षडावलिकासु वा औपशमिक [स्य]जन् उपशमश्रेणिप्रतिपतितो वा सासादने वर्तते ॥२॥

सम्यक् च मिथ्या च दृष्टिर्यस्य स सम्यग्मिथ्यादृष्टिस्तस्य गु० औपशमिकादित्थ △△△ शुद्धार्ध विशुद्धाशुद्धत्रिपजीव [पुञ्जी]करणादेतस्मिन् कश्चिद्गच्छति अन्तर्मुहूर्तम् । ततो मिथ्यात्व सम्यक्त्व वा । सैद्धान्तिकाः सम्यक्त्वान् मिथ्यात्व याति न मिश्रमित्याहु ॥३॥

विरमति स्म सावद्यात् विरत, गत्यर्थेति कर्तरि क्तः । न विरतो [ऽविरत'] स चासौसम्यग्

॥ २०१ ॥

आगच्छपि द्वितीयकषायोदयाद् विरतिं न लाति । ज० अन्तर्मुहूर्तं, उ० सागरास्त्रयस्त्रिंशत्साधिका ॥४॥
देशे विरत यस्य स देशविरतः । तृतीयकषायोदयात् सर्वविरतिं नाप्नोति । ज० अन्तर्मुहूर्तं उ० देशोनपूर्वकोटि. ॥५॥
प्रमाद्यति स्म प्रमत्त स चासौ संयतश्च प्र० तस्य गु० ज० समय उ० अन्तर्मुहूर्तम्, (६) ।
न प्रमत्त अस्य अस्ति अप्रमत्त, अर्शादिर्मत्वर्थीयोऽच् । अन्तमुहूर्तम् ।।७।।

अपूर्वकरणकाल [लान्ते]एव निधत्तनिकाचने गते । अपूर्व करण स्थितिघात [1]रसघात [2]गुणश्रेणि [3]गुणसंक्रम [4] स्थितिवंधेषु [5]यस्य सो अपूर्वकरण. । तत्र द्वय सुगमम्। १-२। उपरितनस्थितेर्विशुद्धितोऽवतारितस्य दलिकस्यान्तर्मुहूर्तम् उदयक्षणादुपरि क्षिप्रतरक्षपणाय प्रतिक्षणमसख्येयगुणवृद्धया विरचन गुणश्रेणिः।३। स्थापना △▽ एषा पूर्वगुणेषु कालतो दीर्घा दलिकैरपृथ्वी । अत्र अ[च] कालतो ह्रस्वा दलिकै पृथुतरा। वध्यमानशुभाशुभप्रकृतिषु अवध्यमानाशुभप्रकृतिदलिकस्य प्रतिक्षणमसख्येयगुणवृद्धया विशुद्धिवशान्नयन गुणसक्रमः ।४। कर्मणामशुद्धत्वात्पूर्वं दीर्घां स्थितिमत्र तु ह्रस्वां वध्नाति स्थितिबन्धः ।५। उदयोद्वर्तने अप्यत्रापूर्वे। अयं च द्विधा क्षपक उपशमको वा, अर्हत्वात् । न त्वसौ क्षपयति उपशमयति वा । अत्र च प्रविष्टानामसख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणान्यध्यवसायस्थानानि स्यु., अध्यवसायनिवर्तनान्निवृत्तिरप्येतत् ॥८॥

युगपदिदं प्रविष्टाना शुद्धाध्यवसायनिवृत्तिर्नास्ति इति अनिवृत्तिः । बादर स्थूल. संपराय. कषायोदयो यत्रासौ वादरसंपरायः, अनिवृत्तिश्चासौ बादरसंपरायश्च अनिवृत्तिबादरसंपरायः, तस्य गु० ९ ।।अ०।। अन्तर्मुहूर्तमानेऽस्मिन् यावन्तः समया तावन्त्यध्यवसायस्थानानि । एकसमये प्रविष्टा[ना] मेकमेवाध्यवसायस्थान ।। अत्र क्षपक उपशमको वा । अथ क्रोधमानमायासम्बन्धिनी किट्टीर्लोभस्य तु बादरा किट्टी. क्षपयति । लोभस्य तु सूक्ष्मा सूक्ष्मसपराये । तत्र सर्वजीवानन्तगुणरसयुक्तस्तावदेकोपि परमाणुरतं सिद्धानन्त (भ्व)भागवर्तिभिरभव्येभ्योऽनन्तगुणै समरसै परमाणुभि कर्मस्कन्धास्तैर्वर्गणास्ततः स्पर्द्धकानि तेषामनन्तरसक्षयेऽतराणकिट्टीष्यन्ते ।।९।।

सूक्ष्मसम्पराय किट्टीकृतलोभोदयो यस्य स सूक्ष्मसपराय (ज०) क्ष० उ० अन्तर्मुहूर्तम् ॥१०॥

छाद्यते केवल ज्ञानम् दर्शन चात्मनो[ऽने]नेति छद्म तत्र तिष्ठति छद्मस्थ । वीतरागो मायालोभोदयरहित । स क्षीणकषायोऽपि स्यात् अत उपशा.तकषायवितरागछद्मस्थ., तस्य गु. । अत्रोपशमश्रेणिक्रमोवाच्य । ज० स० उ० अन्तर्मुहूर्तम् ॥११॥ ॥१२॥

योगो वीर्यम् सह योगेन वर्तते सयोग । सयोगी वा सर्वधनादेमत्वर्थीयेन० । स त्रिधा केवली मन पर्यायैरनुत्तरसुरैश्च मनसा पृष्टा[ष्टो] मनसैवोत्तर दत्ते, वाचा देशना विधत्ते, कायेन क्रामति । देशोना पूर्वकोटि । ज० अन्तर्मुहूर्तम् ॥१३। नास्ति योगो अस्य असौ अयोगो अयोगी वा त्रिधापि योग ॥१४॥११॥

卐 [सुरनारएसु चत्तारि हुंति तिरिएसु जाण पंचेव । मुणयगईए वि तहा चोद्दसगुणनामठाणाणि ॥१२॥

गाथा कण्ठचा । गतिमार्गणासु गाथायामेवदर्शितत्वात् शेषेन्द्रियादिमार्गणासु गुणस्थानानि दश्यन्ते] इन्द्रियमार्गणा तत्रैकद्वित्रिचतु पञ्चेन्द्रियेषु पर्याप्तापर्याप्तेषु मिथ्यादृष्टिर्लभ्यते । तेजोवायुवर्जप्रत्येकबादरैकेन्द्रिय-द्वित्रिचतुरसंज्ञिषु लब्ध्या पर्याप्तेषु करणेन त्वपर्याप्तेषु संज्ञिषु लब्ध्या पर्याप्तेषु करणेन तु पर्याप्ताऽपर्याप्तेषु सासादन । शेषाणि मिश्रादीनि संज्ञिनि करणपर्याप्ते लभ्यन्ते । पर अविरते करणापर्याप्तोऽपि ॥२॥ काये-पृथ्व्यादौ षड्विधेऽपि मिथ्यादृष्टिर्लभ्यते । बादरपृथ्व्यप्प्रत्येकवनस्पतिषु लब्ध्या पर्याप्तेषु करणेनापर्याप्तेषु, त्रसेषु लब्ध्या पर्याप्तेषु करणेन त्वपर्याप्तपर्याप्तकेषु सासादन । शेषाणि मिश्रादीनि १२ करणपर्याप्तेषु परमविरत करणाऽपर्याप्तपर्याप्तेषु च ॥३॥ योगेत्रिविधेऽपि अयोगिवर्जाणि(नि) त्रयोदश ॥४॥ वेदे, निवृत्यन्तानि अष्टौ, अनिवृत्तिस्तु यावद् वेदान् न क्षपयति उपशमयति वा त.वद्गुणस्थानसख्येयभागान् यावल्लभ्यते । तत ऊर्ध्वं सर्वेऽपि अवेदका ॥५॥ आद्यकषायेषु त्रिषु निवृत्यन्तान्यष्टौ अनिवृत्तिरपि यावन्न क्षपयति उपशमयति वा । लोभे तु सूक्ष्मान्तानि दश ।

卐 कोष्ठद्वयान्तरगतो गाथायुक्तपाठ, प्रतौ नास्ति तथाप्यत्र सभाव्यतेऽतो लिखित. ।

उपर्यकषाया ॥६॥ मतिश्रुतावधिष्वविरतादीनि क्षीणमोहान्तानि नव । मनःपर्याये प्रमत्तादीनिक्षीणमोहान्तानि सप्त । केवले सयोग्ययोगिद्वयं । अज्ञानत्रये मिथ्यात्व-सासादने ॥७॥ सामायिकछेदयो. प्रमत्तादीनि चत्वारि । परिहारे प्रमत्ताप्रमत्ताद्वयं । सूक्ष्मे सूक्ष्ममेकम् । यथाख्याते तूपशान्तादीनि चत्वारि । असयमे मिथ्यात्वादीनि चत्वारि । सयमासयमे देशविरतमेकम् ॥८॥ चक्षुरचक्षुर्दर्शनयोर्मिथ्यात्वादीनि द्वादश । अवधिदर्शने त्वविरतादीनि नव, प्रज्ञप्तौ तु मिथ्यादृष्ट्यादीनामप्यवधिदर्शनमुक्तम् । एवं यदा सासादने मिश्रे वा विभङ्गज्ञानी तदा अवधिदर्शनमपि इत्यत्र क्षीणमोहान्तानि द्वादश । ये तु मिथ्यादृष्ट्यादीनामवधिदर्शनं न मन्यन्ते तत्र कारणं न विद्मः । केवलदर्शने सयोग्ययोगिद्वय ॥९॥ षडपिलेश्या आद्यगुणस्थानचतुष्के केचिद्देशयतप्रमत्तयोरपि मन्यन्ते । यतः कृष्णनीलकापोतानामप्यसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणान्यध्यवसायस्थानानि, मन्दक्लेशेषु च तेषु विरतेरपि भावात् । देशयतप्रमत्ताप्रमत्तास्तूपरितनलेश्यात्रये । निवृत्त्यादय. सयोग्यन्ता शुक्लायामेव । अयोगित्वलेश्य ॥१०॥ भवेषु (भव्येषु) चतुर्दशापि । अभव्येषु मिथ्यादृष्टिरेकम् ॥११॥ क्षायिकेऽविरतादयोऽयोग्यन्ताः । क्षायोपशमिकेऽविरतदेशप्रमत्ताप्रमत्ता. । औपशमिकेऽविरतादय उपशान्तान्ताः । मिथ्यादृष्टिर्मिथ्यात्वे । सासादनः सासादने । मिश्रो मिश्रे ॥१२॥ संज्ञ्यसंज्ञिषु मिथ्यादृक्सासादने । मिश्रादय क्षीणान्ता संज्ञिष्वेव । सयोग्ययोगी च न संज्ञी नाऽप्यसंज्ञी ॥१३॥ मिथ्यादृक्सासादनाविरतसयोगिन आहारकेष्वनाहारकेषु च । अनाहारत्व केवलिन. समुद्घाते । शेषाणां विग्रहगतौ । अन्ये त्वयोगिवर्जा मिश्रादय आहारका एव विग्रहाभावात् ॥१२॥ गुणेषूपयोगानाह—

दुण्हं पंचउ छच्चेव दोसु एकंमि होंति वा मिस्सा । सत्त वउगा [सत्तुवओगा] सत्तसु दो चेव य दोसु ठाणेसु ॥१३॥

द्वयो मिथ्यात्वसासादनयो. पञ्चैवोपयोगा अज्ञानत्रय चक्षुरचक्षुर्दर्शने च, केचिदवधिदर्शनमपीच्छन्ति षष्ठम् । अविरत-

देशविरतद्वये षड़ेव । मतिश्रुतावधिज्ञानानि ३ चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनानि ३ एकस्मिन्मिश्रे षडेवेति सबध्यते, अज्ञानत्रय चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनत्रय च ६ व्यामिश्रा सम्यक्त्वमिथ्यात्वसवलितत्वात् । सप्तोपयोगा सप्तसु प्रमत्तादिक्षीणान्तेषु आद्यज्ञानत्रय दर्शनत्रय मनःपर्यय च ॥७। द्वयो सयोग्ययोगिनो. स्थानयो. केवलज्ञानकेवलदर्शने द्वे एव ॥१३॥ गुणेषु योगा एकमतेनाह-

तिसु तेरस एगे दस नव योगा हुन्ति सत्तसु गुणेसु । एक्कारस य पमत्ते सत्त सयोगे अयोगिक्कं ॥१४॥

त्रिषु मिथ्यात्वसासादनाविरतेषु मनश्चतुर्वाक् च ॥८॥ औदारिकवैक्रियौ पर्याप्तेषु औदारिकवैक्रियमिश्रौ अपर्याप्तेषु कार्मणो विग्रहे त्रयोदश । अत्र मते वैक्रियोऽविरतान्तानामेव न देशविरतादीनां लब्ध्याभावात् । एकस्मिन्मिश्रे अष्टौ मनोवाक्योगा औदारिकवैक्रियौ च दश । नन्वस्य कालकरणाभावात् मा भूत् कार्मणम् लब्धिप्रत्ययौदारिकवैक्रियमिश्रौ कस्मान्न भवत ? सत्य, किन्तु कुतोऽपि कारणान्नोक्ताविति न विद्म । सप्तसु देशविरताप्रमत्तक्षीणान्तेषु नव २ अष्टौ मनोवाक्योगा औदारिकश्चेति, तद्भावे नैषाम् जन्मान्तरमिति न कार्मणऔदारिकमिश्रौ आहारकमप्रमत्तस्य किमिति न ? चेदुच्यते । अत्र मते आहारकस्यारम्भे समाप्तौ वा प्रमत्त एव लब्ध्युपजीवनात् । एकादश प्रमत्ते नव पूर्वोक्ता एव आहारकद्विक च । सयोगि[नि] सप्त । सत्य मनो असयात्मृष मनो, वाक् च ४, औदारिक तन्मिश्रकार्मणौ समुद्घाते ७, अयोगमेक अयोगिस्थानं लुप्तविभक्तिकम् ॥१४॥ ये तु देशविरतादीनामपि वैक्रियं, आहारकसमाप्त्युत्तर सयतस्याप्रमत्तत्वमिच्छन्ति ते इत्थ पठन्ति—

तेरस चउसु दसेगे पंचसु नव दोसु होंति एक्कारा । एकमि सत्त योगा अयोगिठाणं हवइ एक्कं ॥१५॥

तत्र चतुर्थः प्रमत्तः । एकादश पूर्वोक्ता एव वैक्रियद्विकेन सह त्रयोदश, अत्र मते देशताविरदीनामपि वैक्रियाभ्युपगम. । 'दसेगेति' पूर्ववत् । अन्यच्च पूर्वमते नव २ योगा उक्ता अत्र तु देशविरताप्रमत्तवर्जेषु पञ्चसु, तयोस्तु 'दोसु होंति एक्कारा'

तत्र देशविरतस्य वैक्रियद्विकेन सहोक्ता एव । अप्रमत्तस्य नव पूर्वं , आहारकवैक्रिययुता एकादश । अनयोरारम्भे प्रमत्तस्ततोऽप्रमत्तः, ननु पूर्वमतेऽवडादीनां श्रुत्वा वैक्रियमनयोः किं नोक्तम् ? अल्पत्वात् । शेष कण्ठयम् ॥१५॥

'जप्पच्चईउ' इत्याह—

चउपच्चइओ बंधो पढमे उवरिमतिगे तिपच्चइउ । मीसग बीओ उवरिमदुगं च देसेक्कदेसम्मि ॥१६॥

उवरिल्लपंचगे पुण दुपच्चओ जोगपच्चओ तिण्हं । सामन्नपच्चया खलु अट्ठण्हं होंति कम्माणं ॥ १७ ॥

प्रत्ययाः बन्धहेतव, ते सामान्यतश्चत्वारः, मिथ्यात्वमविरतिः कषाया योगाश्चेति । तत्र मिथ्यात्वं पञ्चधा–एकान्त १ वैनयिक २ साशयिक ३ मूढ ४ विपरीत ५, तत्र अनन्तधर्माध्यासितेवस्तुन्येकांशावधारणमेकान्तं, यथा अस्ति नास्ति एव वा जीव इति ॥१॥ ऐहिकामुष्मिकं सुख विनयवानेव लभते न ज्ञानोपवासब्रह्मचर्यकष्टादित्यभिनिवेशो वैनयिकम् ।२। अर्हता जीवादितत्त्वमुक्तं किं स्यात् न वेति सांशयिकं ।३। पृथ्व्यादीना मूढं ।४। हिंसादीनां दुःखरूपत्वेऽपि सुखाभिनिवेशो विपरीतम् ॥५॥ यथा–

सत्यं वच्मि हित वच्मि सारं वच्मि पुन पुनः । असारेऽस्मिन्[अस्मिन्नपार]संसारे सारं सारङ्गलोचना ॥
क्रियादर्शनमेवास्तु किमन्यैर्दर्शनान्तरैः । निर्वाण प्राप्यते येन सरागेनाऽपि चेतसा ॥

अविरतिर्द्वादशधा । इन्द्रियमनसामनियन्त्रण षोढा, षड्जीववधश्च १२ ॥२॥ कषायाः षोडश नोकषायनवकं च । २५ ॥३॥ योगा. पूर्वोक्ताः पञ्चदश ॥४॥ सर्वेऽपि सप्तपञ्चाशत् । तत्र चतुः प्रत्ययोऽपि बन्ध. प्रथमे मिथ्यादृष्टौ चतुर्भिरपि सोत्तरभेदैर्ज्ञानावरणादिकं स कर्म बध्नाति, परं संयमाभावात् आहारकद्विकाऽपगमे पञ्चपञ्चाशदुत्तरभेदा । उपरितनत्रिके सासादनमिश्राविरतिरूपे त्रिप्रत्ययो मिथ्यात्वाभावात् तत्पञ्चकापगमे सासादनस्य पञ्चाशत् , मिश्रस्य मृत्योरभावात् कार्मणमौदा-

रिकवैक्रियमिश्रे अनन्तानुबन्धिचतुष्क च नास्ति, तदपगमे त्रिचत्वारिंशत् । अविरतस्यमृत्योर्भावात् कार्मणमौदारिक-वैक्रियमिश्रे च क्षिप्यन्ते, षट्चत्वारिंशत् भेदा । 'मीसग बीउ' त्ति द्वितीयोऽविरतिर्हेतु समिश्रकोऽसपूर्ण त्रसवधान्निवृत्तत्वान्न द्वादशधा। उपरितनद्विक च कषाययोगरूपम् । देशविर[त'] तत्राऽप्रत्याख्यानाश्चत्वारो विग्रहेऽपर्याप्तत्वे देशविरतेरभावान्न कार्मणौदारिकमिश्रे ६ त्रससयमश्चास्येति सप्तकापगमे एकोनचत्वारिंशद् । ग्र[गृ]हिणः सनप्पारभजत्रसासंजमो न विवक्षितोऽशक्यपरिहारत्वात् । सकलपजस्त्वगीकृतो बृहच्चूर्णौ । 'उवरिल्ल' त्ति, उपरितनपञ्चके प्रमत्तादौ सूक्ष्मान्ते द्विः, कषाय १ योग २ प्रत्ययः । तत्र प्रमत्तस्य सज्वलनाः ४ नोकषायाः ९ योगाः कार्म्मणौदारिकमिश्रवर्जाः १३ सर्वे २६ ।

पणमिच्छबारअविरयदुवालसकसायरुम्मुरलमिस्से । एवमिगतीसरहिया छव्वीस पमत्तगुणठाणे ।। उत्तरभेदा ।।

अप्रमत्तस्य वैक्रियमिश्राहारकमिश्रापगमे २४ । निवृत्तेः शुद्धत्वाद् वैक्रियाहारकापगमे २२ । अनिवृत्तौ हास्यषट्कापगमे १६ । वेदत्रयकषायत्रयापगमे तु १० सूक्ष्मे । सूक्ष्मलोभक्षयान्नव, योगप्रत्ययस्त्रयाणामुपशान्तक्षीणसयोगिनाम् । तत्राऽष्टौ मनोवाग्योगा औदारिकश्चेति, प्रत्येकमुपशान्तक्षीणयोर्नव । सयोगे त्वाद्यन्त मनो वाक् च ४ औदारिक२०मिश्रकार्मणानि सप्त । अयोगी त्वबन्धक. । अर्थ कण्ठयम् ।।१६-१७।। विशेषहेतुमाह–

पडणीयमंतराइय उवघाए तप्पओसनिन्हवणे । आवरणदुगं भूओ बंधइ अच्चासणाए य ।।१८।।

आवरणद्विक ज्ञानदर्शनावरणरूप तच्च ज्ञानस्य ज्ञानिनां पुस्तकादीनां च प्रत्यनीकतया अनिष्टाचरणेन भूयोऽतितीव्रं बध्नाति कर्म । तथाऽन्तरायेण भक्तपानवस्त्रोपाश्रयलाभादिवारणेन । उपघातेन मूलतो विनाशेन । तत्प्रद्वेषेण अप्रीत्या । निह्नवेन न मया तत्समीपेऽधीतमित्यादिरूपेण । अच्चासातनया जात्याद्युद्‌घट्टनादिहीलनया । ज्ञान्यवर्णवादाकालस्वाध्यायादिभिः पञ्चाश्रवैरप्येतद्‌बध्यते । एव दर्शनावरणेऽपि तदभिलापेन वाच्यम् । तथाहि–दर्शनस्य चक्षुर्दर्शनादेर्दर्शनिना साध्वादीना तत्साधनस्य श्रोत्रादेः प्रत्यनीकतयेत्यादि ।।१८।।

।। २०७ ।।

वेदनीयहेतूनाह—

भूयाणुकंपवयजोग उज्जुओ खंतिदाणगुरुभत्तो । बंधइ भूओ सायं विवरीए बंधई (ए) इयरं ॥ १९ ॥

भूतानुकंपी. व्रते महाव्रतादिषु, योगेषु सामाचार्यादिषूद्यतः । मत्वर्थीयलोपात् क्षान्तिदानवान् । गुरुभक्तश्च, किं बध्नाति भूयस्तीव्रं सातम् । विपरीते त्वसातम् ॥१९॥ दर्शनमोहहेतूनाह—

अरिहन्तसिद्धचेइयतवसुयगुरुसाहुसंघपडणीओ । बंधइ दंसणमोहं अणंतसंसारिओ जेण ॥ २० ॥

अर्हत्सिद्धचैत्यतपःश्रुतगुरुसाधुसंघानां प्रत्यनीकोऽवर्णवादी बध्नाति दर्शनमोहम् , येन बद्धेनाऽनंतसंसारिको भवति जीवः । उन्मार्गदेशनया चैत्यमुनिद्रव्यलोपेन तत्त्वनिह्नवेन ॥२०॥

चारित्रमोहमाह—

तिव्वकसाओ बहुमोहपरिणओ रागदोससंजुत्तो । बंधइ चरित्तमोहं दुविहं पि चरित्तगुणघाई ॥ २१ ॥

तीव्रकषायो यमेव कषायं तीव्रं करोति तमेव बध्नाति नोकषायांश्च । तथाहि–कोपनो ऽहंकारी, परदाररतो-ऽलीकभाषी, ईर्ष्यालुर्मायावान् स्त्रीवेदम् । ऋजुर्मन्दकोपो मार्दवी, स्वदारतुष्टो-ऽमायावी पुंस्त्वम् । पिशुनो निर्लञ्छन-वध-ताडनरतः स्त्रीपुमंग(ल)सेवी [स्त्रीपुमनंगसेवी] धर्मध्वंसी तीव्रविषयरतिर्नपुंसकत्वमर्जयति ।

हसनहासनशीलो, विह्वलकन्दर्पपरि[र]तिप्रियो हास्यमोहम् । क्रीडति क्रीडयति सुखोत्पादको रतिम् । रतिहन्ता पापरतिररतिम् । शोचति शोचयति व्यसनशोकाभिनंदी शोकम् । बिभेति भीषयतेभयम् । जुगुप्सते जुगुप्सां जनयति परिवादशीलो जुगुप्सा रचयति । बहुमोहपरिणतो विषयगृद्धिविभ्रमितमतिः । रागो हास्यरत्यादय. । द्वेषो जुगुप्सादय. ताभ्यां सयुक्तः ।

बध्नाति चारित्रमोहम् । 'चारित्रगुणघाति' लब्धमपि चारित्रगुणं हन्ति । यद् द्विविधनपि कषायनोकषायरूपम् ॥२१॥ नरकादि-हेतूनाह-

मिच्छादिट्ठिमहारम्भ परिग्गहो तिव्वलोह नीसोलो । नरयाउयं निबंधइ पावमई रुद्दपरिणामो ॥२२॥

मिथ्यादृष्टिः सद्धर्मत्यक्तः । माहारम्भपरिग्रहस्तीव्रलोभो निःशीलो नरकायुर्नितरां बध्नाति पापमती रौद्रपरिणामश्च, पर्वतराजिकषाय ॥२२॥

उम्मग्गदेसओ मग्गनासओ गूढहिययमाइल्लो । सढसीलो य ससल्लो तिरियाउं बंधए जीवो ॥ २३ ॥

मार्गो ज्ञानादिकस्तमतिक्रम्य देशकोऽत एव मार्गनाशकः । गूढहृदय-उदायिनृपमारकादिवत् । माइल्लोवहिश्चेष्ठः । शठशीलो-मुखमृष्टश्चित्तदुष्ट । सशल्योऽनालोचिताप्रतिक्रान्तः । क्षितिभेदकषायस्तिर्यगायुर्बध्नाति जीवः ॥२३॥

पयईइ तणुकसाओ दाणरओ सीलसजमविहूणो । मज्झिमगुणेहि जुत्तो मणुयाउं बंधए जीवो ॥ २४ ॥

रेणुराजितनुकषाय । भद्रको विनीतो दानरतश्च शीलसंयमरहितस्तद्वान्हि देवायुर्बध्नाति । मध्यमगुणैः क्षान्त्यादिभिर्युक्तो मनुष्यायुर्बध्नाति जीव ॥२४॥

अणुवयमहव्वएहिं बालतवाकामनिज्जराए य । देवाउयं निबंधइ सम्मद्दिट्ठी य जो जीवो ॥ २५ ॥

अणुव्रतोऽविराधितश्रावकः । महाव्रत. सरागसयत । वीतरागस्तु शुद्धत्वान्नायुर्बध्नाति बालतपोऽज्ञानकृततपाः कष्टेन मिथ्यादृष्टयोऽपि देवेषु यान्ति । अकामस्यानिच्छतो निर्जरा-क्षुत्तृष्णाब्रह्मसी[शी] तातपदशमलपकरोगबन्धसहनेन गिरितरूद्बालन पातादिभिरुवकराजिसमकषायो देवायुर्निबध्नाति । सम्यग्दृष्टिरविरतोऽविराधितव्रतश्च यो जीवः ॥२५॥ नामकम्मनिकधाऽपि शुभाशुभभेदाद् द्वेधा तद्धेतूनाह—

मणवयणकायवंको माइल्लो गारवेहि पडिबद्धो । असुहं बंधइ नामं तप्पडिवक्खेहि सुहनामं ॥ २६ ॥

मनोवचनकायैर्वक्रः क्रोधाविष्टः प्राण्यंगोपांगादिनाशकः, मायावान्, ऋद्धिरससातरूपैर्गौरवैः प्रतिबद्धः । शेषं कण्ठ्यम् ॥२६॥ गोत्रयोर्हेतूनाह—

अरहंताइसु भत्तो सुत्तरुई पयणुमाण गुणपेही । बंधइ उच्चागोयं विवरीए बंधए नीयं ॥ २७ ॥

अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसाधुचैत्यानां भक्तः, सूत्रमागमस्तद्रुचिः, पठति पाठयति च । प्रतनुमानो जात्याद्यनहंकारः । गुणप्रेक्षी गुणं पुरस्करोति न दोषम् । समस्तं विभक्तिलोपो वा । शेषं कण्ठ्यम् ॥२७॥

अन्तरायहेतूनाह—

पाणिवहाईसु रओ जिणपूया मोक्खमग्गविग्घयरो । अज्जेइ अंतरायं न लहइ जेणच्छियं लाहं ॥ २८ ॥

प्राणिवधादिषु रतः 'तथा'पुष्पाद्यं सावद्यं वा त्यज' इति कुदेशनया गृहिणां जिनपूजा निषेधकः । मोक्षमार्गस्य ज्ञानादेः साधूनां वा लाभान्तरायं करोति । तथाऽन्यसत्त्वानां दानलाभभोगोपभोगविघ्नं करोति मन्त्रादिभिर्वीर्यं हन्ति सोऽर्जयत्यन्तरायम्, न लभते येनेप्सितं लाभम् ॥२८॥

येषु स्थानेषु बधोदयोदीरणाविधिमाह—

बंधट्ठाणा(णि) चउरो ७।८।६।१। तिन्निय उदयस्स ८।७।४। हुन्ति ठाणाणि ।

पंच य उदीरणाए ७।८।६।५।२। संजोयमओ परं वुच्छं ॥२९॥ प्रक्षेपगाथा

यथोद्देश निर्देश इति बन्धस्थानानि गुणेष्वाह—

छसु ठाणगेसु सत्तट्ठविहं बंधंति तिसु य सत्तविहं । छव्विहमेगो तिन्नेग बंधगाऽबंधगो एगो ॥३०॥

षट्सु मिथ्यात्वसासादनाविरतदेशप्रमत्ताप्रमत्तेषु जीवा आयुर्बन्धकालादन्यत्र सप्तधा आयुर्बन्धे त्वष्टधा बध्नन्ति । त्रिषु तु मिश्रनिवृत्यनिवृत्तिषु सप्तधा आयुर्बन्धाऽभावात् । एक सूक्ष्मो मोहायुर्वर्जा, षडेव, मोहनीयं बादरसंपरायहेतुकमिति । त्रय उपशान्तक्षीणसयोगिन एक सातम् । एकोऽयोगीत्वबन्धक ॥३०॥ उदयविधिमाह—

सत्तट्ठविह छ[विह]बधगावि वेयंति अट्ठगं नियमा । एगविह बंधगो उण चत्तारि व सत्त वेयंति ॥३१॥

यथासभव ये सप्ताष्टषड्विधबन्धका सूक्ष्मान्ता उक्तास्ते नियमादष्टधा वेदयन्ति । एकविधबन्धका उपशान्तक्षीण-सयोगिन· पुनश्चत्वारि सप्त वा २ । सयोगो भवोपग्राहीणि चत्वारि । उपशान्तक्षीणास्तु मोहाऽभावात् सप्त । वाशब्दा-दयोगी भवोपग्राहीणि चत्वारि वेदयति ॥३१॥

उदीरणाभेदान्नाह—

मिच्छादिट्ठिप्पभिई अट्ठ उईरंति जा पमत्तो त्ति । अद्धावलिया सेसे तहेव सत्तेवुईरंति ॥ ३२ ॥

मिथ्यादृष्ट्यादय प्रमत्तान्ता यावदद्याप्यावलिकाशेषमायुर्न भवति तावदष्टावुदीरयन्ति । तदुदीरणाध्यवसायस्य सर्वे-ष्वपि भावात् । अद्धाकालस्तदावलिकाशेषे त्वायुष्यायुर्वर्जाः सप्तैव । यथा पूर्वम् , आवलिकाशेषस्यायुष उदीरणा प्रतिषिद्धा । अत्रा-विशेषोक्तावपि मिश्रोऽष्टौ [ष्टा ए] वोदीरयति । स ह्यायुष्यन्तर्मुहूर्ताऽवशेष एव मिश्रत्वं परित्यज्य सम्यक्त्व मिथ्यात्व वा याति ततो ना(म)वलिकाशेषत्वम् ॥३२॥

वेयणियाऊवज्जे छक्कम्म उईरयंति चत्तारि । अद्धावलिया सेसे सुहुमु उईरेइ पंचेव ॥ ३३ ॥

वेदनी[य]आयुर्वर्जानि षट्कर्म्माणि उदीरयन्ति अप्रमत्तापूर्वानिवृत्तिसूक्ष्माश्चत्वार । अद्धावलिकाशेषे तु मोहे सूक्ष्म-तद्वर्जानि पञ्चैवोदीरयन्ति यतस्तच्छेषस्य मोहस्योदीरणा नास्ति ॥३३॥

वेयणियाउयमोहे वज्ज उईरंति पंचेव । अद्धावलिया सेसे नामं गोयं च अकसायी ॥ ३४ ॥

वेदनी [य] आयुर्मोहवर्जानि पञ्च । द्वौ उपशान्तक्षीणावुदीरयतः । किं सदा, नेत्याह, अद्धावलिकाप्रविष्टे ज्ञान-दर्शनावरणान्तरायकर्म्मणीति शेष । नामगोत्रे द्वे एव उदीरयति । '[अ] कषायी' क्षीणमोहः, अयं ज्ञानदर्शनावरणान्तरायाणि क्षपयन् तावदुदीरयति यावत्केवलोत्पत्त्या सत्तावावलिकाशेषाणि भवन्ति तत ऊर्ध्वमनुदीरयन्नेव क्षपयति । तदा नामगोत्रयोरे-वोदीरणा । उपशान्तस्तु सदा पञ्चैव । क्षपया[णा]भावेनावलिकाप्रवेशाभावात् ॥३४॥

उईरेइ नामगोए छकम्मविवज्जिया सजोगी उ । वट्टंतो उ अजोगी न किंचि कम्मं उईरेसि ॥ ३५ ॥

सयोगी तु षट्कर्माणि वर्जयित्वा नामगोत्रे एवोदीरयति । घातिचतुष्कं क्षीणम् वेद[नी] यायुषोस्तूदीरणा प्रागेवो-परता [तद्योग्या] ध्यवसायाभावात् । अयोगी तु वर्तमानेऽपि कर्मचतुष्टये न किंचित्कर्मोदीरयति, योगसव्यपेक्षत्वादुदीर-णाया. ॥३५॥

इयतीर्बध्नन्नियतीर्वेदयत्युदीरयति चेति संयोगन्तं पश्चानुपूर्व्याह—

अणुईरं उ अयोगी अणुहवइ चउव्विहं गुणविसालो । इरियावहं न बंधइ आसन्नपुरक्ख [क्ख]डो संतो ॥३६॥

अयोगी गुणैर्ज्ञानादिभिर्विशालोऽनुदीरयन्नेवाघातिचतुष्क'मनुभवति' वेदयति । ईर्या-योगव्यापारः स एव जीवगृहप्रवेशे पन्था यस्य तदीर्यापथं-सातम् , तदुपशान्तादिभिर्बद्धम् , अय तु न बध्नाति योगाभावात् । सन् मोक्षः तत्त्वतः स एव चतुर्गत्य-पेक्षया सन्निद्यमानः, स आसन्नपुरस्कृतो येन स आसन्नपुरस्कृतः सन् । 'उ' अलं(प)क्षणिक. ॥३६॥

बंधो दयो-दीरणा स्थानानि तत्संवेधश्च

॥ २१२ ॥

इरियावहमाउत्तो चत्तारि व सत्त चेव वेयति । उईरंति दुन्नि पचय संसा[र] गयम्मि भयणिज्जो ॥३७॥

'म'अलक्षण । 'ईर्यापथायुक्ता.' सातयुक्ता उपशान्तक्षीणसयोगा सात बध्नन्तश्चत्वारि सप्त वेदयन्ति। नत्र सयोग्यघातिचतुष्कम्। अमोहे[हो]दयौ सप्त। उदीरयन्ति तु द्वे पञ्च वा, तत्र[स]योगी नामगोत्रे। क्षीणस्तु ज्ञानदर्शनान्तरायेष्वावलिकाऽप्रविष्टेषु पञ्च, अन्यथा तु द्वे। उपशान्तस्तु सदा पञ्चैव। संसारगते विषये उपशान्तो भजनीय कस्याप्यस्ति कस्यापि नास्ति। क्षीणसयोगिनोर्नास्त्येव ससार ॥३७॥

छप्पच उईरंतो बंधइ सो छव्विहं तणुकसाओ। अट्ठविहमणुहवन्तो सुक्कज्झाणे दहइ कम्मं॥ ३८ ॥

तनुकषाय सूक्ष्म' पूर्वयुक्त्या षड्विध पञ्चधा च उदीरयन्नष्टधा चानुभवन् षड्विधमुक्तस्वरूपं बध्नाति। स तस्यामवस्थाया शुक्लध्यानेनानतगुण कर्म्म दहति, श्रेणिस्थितस्य जन्तो धर्मशुक्लध्यानद्वय लघुवूर्ण्यभिप्रायेणाविरुद्धम्। बृहच्चूर्णौ तु धर्मध्यानमेवास्य, उक्तञ्च–'वीतरागत्वस्यासन्नत्वेनोपचारात्' ॥३८॥

अट्ठविह वेयंता छव्विहमुईरंति सत्त बंधति । अनियट्टी य नियट्टी अपमत्तजई य ते तिन्नि ॥ ३९ ॥

अनिवृत्तिनिवृत्यप्रमत्ता अष्टधा वेदयन्त आयुर्वेदनीयवर्जं षड्विधमुदीरयन्ति। आयुर्वर्जानि सप्त बध्नन्ति, नन्वप्रमत्तस्यायुर्बन्धोऽस्तीत्याह-प्रमत्तेनारब्धमायुर्बन्धमप्रमत्त समर्थयतो सतोऽप्यविवक्षा वा। च शब्दात्सोऽप्युक्तो वा ॥३९॥

अवसेसट्ठविहकरा वेइंति उईरगाय अट्ठण्हं। सत्तविहगावि वेइंति अट्ठगमुईरणे भज्जा ॥ ४० ॥

अवशेषा मिथ्यादृष्ट्यादिप्रमत्तान्ता 'अष्टविधकरा' अष्टविधबन्धका सन्तो वेदका उदीरकाश्चाष्टाना, सप्तधोदीरणा वेद्यमानायुष आवलिका प्रवेशकाल एव प्रागुक्ता सा चाष्टधाबध्न[बन्धका]ना न भवति। आयुर्बन्धस्त्रिभागादिष्वेव भवति, त (वो) दोदीरणाऽतोऽष्टधैवेति युक्तम्। त एव सयोगचिन्तायाः प्रत्येकचिन्तातो विशेष. । यत. प्रत्येकचिन्ताया सप्ता-ऽष्टधा

॥ २१३ ॥

बन्धः सप्ताष्टधोदीरणा चामीषां सामान्येनोक्ता अत्र तु अष्टधा बध्नतामष्टधैवोदीरणेति । सप्तधा बन्धका अपि वेदयन्त्यष्टधैव । उदीरणायां तु भाज्या, सप्तधा अष्टधा वा भवति आयुष आवलिकाप्रवेशकाले आयुस्त्यक्त्वा छन्य [अन्यत्र]त्वष्टधा मिश्रस्तु सदा सप्तधा वध्नाति अष्टधा वेदयत्युदीरयति चायुर्बन्धाभावात् ॥४०॥

चत्वार्य[रोऽ]नुयोगा –प्रकृतिवर्णना, साद्यादिप्ररूपणा, भूयःकारादिप्र० स्वामित्वप्र०। तत्रप्रकृतयो मूलोत्तरा आह–

णाणस्स दंसणस्स य, आवरणं वेयणीयमोहणीयं । आउय नामं गोयं, तहंतरायं च पयडीओ ॥४१॥

पंच-नव दुन्नि-अट्ठावीसा चउरो तहेव बायाला । दुन्नि य पंच य भणिया, पयडीओ उत्तरा चेव ॥४२॥

अनयोः स्वरूपमस्मत्कृतकर्म्मस्तव- कर्मविपाकटिप्पनयोर्ज्ञेयम् । लेशेत उच्यते-ज्ञानं मत्यादिपञ्चधा, दर्शनं चक्षुरादि नवधा, तयोरावरणे ज्ञानावरणं १, दर्शनावरणं २। सातासातरूपेण वेद्यत इति वेदनीयं । ३। मुह्यन्ति सत्कृतेभ्यो जीवा अनेनेति मोहनीयं । दर्शनमोहनीय मिथ्यात्वमिश्रसम्यक्त्वरूपम् । चारित्रमोहनीयं षोडशकषाया नवनोकषाया ।४। आयाति भवान्तरे सक्रायतामुदयमित्यायुर्नरायुष्कादि चतुर्धा ।५। नमयति जन्तुं गत्यादिपर्यायैरिति नाम । सुरोऽयमित्यादिनाम यद्वशाज्जन्तुरासादयति तत्कर्माप्युपचारान्नाम । द्विचत्वारिंशद्विधम्, तत्र गति ४–जाति ५–तनु ५–उपाग ३–बन्धन ५–सङ्घात ५–सहनन ६–संस्थान ६वर्ण ५-गन्ध २–रस ५–स्पर्श ८–आनुपूर्व्वी ४–विहायोगति २ एवं १४ पिण्डप्रकृतयः प्रत्येक २८ मिलिता ४२ पिण्डभेदै. ६५ सह ९३। बन्धननाम यदापञ्चदशधा विवक्ष्यते–यथा औदारिकौदारिकबन्धननाम ।१। औदारिक तैजसब० ।२। औदारिककार्मण बं० ।३। औदारिकतैजसकार्मणबं० ।४। एव वैक्रियाहारकयोरपि चत्त्वारि चत्त्वारि तत्तदभिलापेन १२। तथा तैजस तैजस बं० ।१। तैजसकार्मण बं० ।२। कार्मणकार्मण बं० ।३। एवं १५। तदा त्र्युत्तरं शतं नाम्नः ।६। गूयते शब्द्यते प्रधानाऽप्रधानतया तेन उच्चैर्नीचैर्गोत्रं कर्माप्युपव[चा]राद्द्विधा ।७। जीवं वा अर्थसाधनं वान्तरा(य)पततीत्यन्तराय जीवस्य दानादिकमर्थसिसाधयिषोर्विघ्नीभूय अन्तरा पतति पञ्चधा ॥ ४१–४२ ॥ साद्यादिर्मूलप्रकृतिष्वाह—

॥ २१४ ॥

साइअणाई धुवअद्धुवो य बन्धो उ कम्म छक्कस्स । तइए साइगसेसो अणाइधुवसेसओ आऊ॥ ४३ ॥

यः पूर्वं छिन्न पुनर्भवति स बन्ध सादि । यस्त्वनादि कालसन्तानेन प्रवृत्तो न कदाचिच्छिन्नः सोऽनादिः । अभव्यसम्बन्धी ध्रुवः । भव्यानामध्रुव । तत्र ज्ञानदर्शनावरणमोहनामगोत्रान्तरायकर्मषट्कस्य साद्यादिश्चतुर्धापि बन्धो लभ्यते, कथ ? मोहवर्जकर्मपञ्चकस्य मिथ्यादृष्टयादिसूक्ष्मान्ता सर्वेऽपि बन्धका. । उपशान्तस्त्वस्याऽबन्धक । मोहस्य त्वनिवृत्तिमेव यावद् बन्धन' [क] । तत सूक्ष्मापशान्तौ एतद् कर्मषट्कस्याऽबन्धको भूत्वा आयु क्षये स्थितिक्षये वा प्रतिपत्य यदा पुनरेतानि बध्नतस्तदैतद् बन्ध. स्यादिति:[सादिः]। सूक्ष्मोपशान्तावस्थामप्राप्तानामनादि । ध्रुवोऽभव्याना[म] ध्रुवो भव्यानाम् । 'तइए' त्ति तृतीये वेदनीये सादिकाच्छेषोऽन्यो[ऽना]दिध्रुवाध्रुवरूपस्त्रिधा । वेदनीयस्य बन्धाभावोऽयोगिन्येव तस्य च प्रतिपातो नास्त्यतो न सादित्वम्, आससार बध्यमानत्वादनादित्वस्ति । भव्याभव्यापेक्षयाऽध्रुवाध्रुवौस्त । अनादिध्रुवशेषस्त्वायुषि साद्यध्रुवरूपः । यत आयुषस्त्रिभागादावेव नियतो बन्धस्ततोऽनादिर्ध्रुवश्च [न] ॥ ४३ ॥ उत्तरप्रकृतीनामाह—

उत्तरपयडीसु तहा धुविघाणं(धुवियाण)बन्धचउविगप्पो उ। साइगअद्धुवियाओ सेसा परियत्तमाणीओ॥४४॥

उत्तरप्रकृतीषु यथा मूलप्रकृतिषु प्रोक्त साद्यापि[दि] स्तथोच्यते-तत्र ध्रुवबन्धिनीनाम् चतुर्विकल्पोऽपि बन्ध' । स्वबन्धोच्छेदादर्वाग् याः सदा बध्यन्ते न कदाचित् परावर्तन्ते ता(व)ध्रुवबन्धिन्य सप्तचत्वारिंशत् यथा-ज्ञानाव० ५, दर्शनाव० ९, मिथ्यात्व षोडशकषाया भय जुगुप्सा १९, तैजसकार्मणवर्णगन्धरस-स्पर्श-अगुरुलघु-उपघात-निर्माण ९, अन्तराय० ५=४७ । तत्र ज्ञानाव० ५-दर्शना० चतुष्कान्तराया५णा १४ सूक्ष्मान्त्यसमये छिन्नबन्धानां उपशान्तोऽबन्धको भूत्वा पतितो यदैता बध्नाति तदा सादिः । उपशान्तमप्राप्तानामनादि । ध्रुवाध्रुवौ (१०) प्राग्वत् । सज्वलनाना४मनिवृत्तौ बन्धोच्छेदं कृत्वा पतितस्य बध्नतः सादि. । शेष प्राग्वत् । निद्राप्रचलातैजसकार्मणवर्णादि ४ अगुरुलघूपधातनिर्म्माणभयजुगुप्साना १३

॥ २१५ ॥

नियुत्तौ छेद कृत्वा पतितस्य बध्नतः सादिः शेषं प्राग्वत् । प्रत्याख्यानानां ४ देशविरते छेदं कृत्वा पतित्वा बध्नतः सादि । शेष प्राग्वत् । अप्रत्याख्यानाना४मविरते छेदस्ततो देशे गत्वा पतितस्य बध्नतः सादिः शेष प्राग्वत् । स्त्यानर्द्धित्रिकमिथ्यात्वा-नन्तानुबन्धीना ८ मिथ्यादृष्टि. सम्यक्त्वं प्राप्याऽबन्धको भूत्वा पतिवध्नन्न [पतित्वा बध्नत] सादिः । शेष प्राग्वत् । **'साइग'**

त्ति सादिका अध्रुवाश्च भवन्ति ध्रुवबन्धिनीभ्य.शेषाः परावर्तमाना । परावृत्य परावृत्य पुनर्बध्यन्ते यास्ता अध्रुवबन्धिन्यस्त्रिसप्ततिर्यथा–सातासाते वेदत्रय, हास्यरतियुग्ममरतिशोकयुग्मम्, चत्वार्यायूंषि, चतस्रो गतय., पञ्च जातयः, औदारिक-वैक्रियाहारकशरीराणि,षट्संस्थानानि, त्रिण्यङ्गोपाङ्गानि, षट्संहननानि, चतस्र आनुपूर्व्यः, पराघातं, उच्छ्वासं, आतपं, उद्योतं, विहायोगतिद्वयम् , त्रसादिविंशतिः, तीर्थकर उच्चैर्नीचैर्गोत्रे ७३, एतन्मध्ये सातासाते वेदत्रयं च परस्परविरुद्धत्वात् न युगपद् बध्यन्त इति परावर्तमानाः । पराघातोच्छ्वासनाम्नी तु पर्याप्तकनाम्नैव सह बध्येते नाऽपर्याप्तकनाम्नेति परावर्तमानता । आतप त्वेकेन्द्रिययोग्यबन्धेनैव सह बध्यते, उद्योतं तिर्यग्गतिसहितमेवेति तयो परावृत्तिः । तीर्थकराहारके तु यथाक्रम सम्यक्त्वसंयमगुणवन्त एव बध्नन्तीति परावृत्तिः । एव सर्वा अप्येता नियतकाल एव बध्यन्तेऽत सादिकाः, जातोऽपि बन्धो निवर्तत इत्यध्रुवा । मूलप्रकृतिबन्धेषु भूयस्काराल्पतरावस्थितानाह—

चत्तारि पयडिठाणाणि तिण्णि भूयगारअप्पतरगाणि । मूलपयडीसु एवं अवट्ठिओ चउसु नायव्वो ॥४५॥

तत्रैकधाऽल्पबन्धको भूत्वा पुन. षड्विधादि बहुबन्धको भवति स आद्यसमये भूयस्कारबन्धः १ यत्र त्वष्टधात सप्तधादिबन्धको भवति सोऽल्पतर २ यत्र त्वाद्यसमये एकधा द्वितीयेऽप्येकधा सोऽवस्थितः ३ यत्र त्वबन्धको भूत्वा पुनर्बध्नाति सोऽवक्तव्य ४ अयन्तूत्तरप्रकृतीनामेव, मूलप्रकृतीनां सर्वथाऽबन्धकस्याऽयोगिन प्रतिपाताभावात् । एवं चतुर्धा बन्धः । उक्त च-

एगादहिगे पढमो एगादी ऊणगम्मि बीओ य । तत्तियमित्तो तइयो पढमे समये अवत्तव्वो ॥४६॥ प्रक्षेपः

तत्र मूलप्रकृतिबन्धस्थानानि चत्वारि 'सत्तट्ठछ-एग बन्धा' इति तत्र त्रयो भूयस्कारास्त्रयोऽल्पतरा । यथा आयुर्बन्धकालेऽष्टबन्धस्तत सप्तधा बध्नत प्रथमसमयेऽल्पतर १ द्वितीयादिसमयेष्ववस्थित: ।१। सप्तधातः सूक्ष्मे षट्धा बध्नतोऽल्पतर ।२। द्वितीयादिष्ववस्थितः ।२। षड्विधादुपशान्ते एकधा बध्नतोऽल्पतर , द्वितीयेऽवस्थित. ३ इति त्रय । उपशान्ते एकधा बन्धात् सूक्ष्मे षड्विध बध्नतो भूयस्कार ।१। एवं द्वितीयादिष्ववस्थित. सर्वत्र । ततोऽप्यध सप्तधा बध्नतो भूय. ।२। आयुर्बन्धेऽष्टधा बध्नतो भूय ३ एवं त्रयः ।।४५-४६।। । उत्तरास्वाह—

तिण्णिदसअट्ठठाणाणि दंसणावरणमोहनामाणं । एत्थ व भूयोगारो सेसेसेगं हवइ ठाणं ।। ४७ ।।

दर्शनावरणोत्तरप्रकृतीनां त्रीणि बन्धस्थानानि, मोहस्य दश, नाम्नोऽष्टौ यथासख्य त्रिषु कर्मसु 'भूयस्कारे' इत्यादि लोपात् चत्वारोऽपि बन्धा भवन्ति । कथ ? दर्शननवक सासादन यावत् बध्यते तत पर स्त्यानर्द्धित्रिकस्य बन्धश्छिद्यते, [त]तो मिश्रादिषु षड्विध बध्नतोऽल्पतर' ।१। ततो निवृत्तौ निद्राद्विकछेदस्तत्राऽल्पतरः ।२। शेष[ा.]सूक्ष्म यावत् बध्यते । ततः प्रतिपत्य षड्विध बध्नतो भूयस्कार । ततोऽपि नवधा बध्नतो भूय कार ।२। यदा तूपशान्ते दर्शननवकाबन्धको भूत्वा अद्धाक्षये पुनश्चतुर्धा बध्नाति तदाऽवक्तव्यः १ । भूयस्कारादिलक्षणायोगान्न तद्विकल्पे वक्तु शक्यत इति अवक्तव्य , यदा तूपशान्त एवायु'क्षयादनुत्तरेषूत्पद्यते तदाद्यसमये षड्विधबध्नतोऽवक्तव्य २ । तदेव द्वौ भूयसौ, द्वौऽल्पौ द्वौऽवक्तव्यौ । मोहबन्धस्थानान्येव दश–२२–२१–१७–१३–९–५–४–३–२-१ तत्र मिथ्यात्व षोडषकषाया १७,अन्यतरो वेद १८, हास्यरतियुगअरतिशोकयुगयोरन्यतरद्युग २०, भय २१, जुगुप्सा २२, एना मिथ्यादृष्टिरेव बध्नाति । एषैव मिथ्यात्वरहिता २१, पर स्त्रीपु वेदयोरन्यतरो वेद , एना सासादनो बध्नाति । अनन्तवर्जकषाया १२, पुंवेद १३, अन्यतरद्युग १५, भय १६, जुगुप्सा १७ एतद् बन्धो मिश्राविरतयोरेव ।अप्रत्याख्यानवर्जाः एताः १३ देशविरतो बध्नाति ।प्रत्याख्यान ४ वर्जा नव प्रमत्तो बध्नाति । अप्रमत्तनिवृतौ च एता एव पर हास्यरतियुग्मेव । सज्वलनचतुष्क पु वेद पञ्च अनिवृतिर्बध्नाति, पु वेदे छिन्ने चतुष्कमयमेव क्रोधे छिन्ने त्रय,

माने द्वयं, मायायाम् एकं लोभ । एषु दशसु नव भूयस्काराः एकधा निपत्य द्विधा बध्नत आद्य एवं त्रिधादिषु यावद् द्वाविंशे नव अल्पतरास्त्वष्टौ । तत्र द्वाविंशतिधा सप्तदशधा बध्नत आद्यः । एवं यावदेकेऽष्टौ । द्वाविंशादेकविंशे न गतिरसंभवात्, यतो न मिथ्यादृष्टिरनन्तरभावेन सासादनत्व याति किन्तूपशमिक एव । अवक्तव्यौ द्वौ । यदा उपशान्तोमोहस्याबन्धकोभूत्वाऽद्धाक्षये प्रतिपत्य सज्वलनलोभ बध्नाति तदैक । अथोपशान्त एवायुः क्षयेऽनुत्तरेषूत्पद्यते तदा सप्तदशधा बध्नतः २ ॥४७॥

तेवीसपणवीसाछव्वीसाअट्ठवीसइगुतीसा । तीसेगतीस एगं बन्धट्ठाणाइ नामस्स ॥ ४८ ॥ प्रक्षेप०

नाम्नोऽष्टौ २३-२५-२६-२८-२९-३०-३१-१ । तत्र 'तैजसं' बध्यमानत्वात्, [तैजसादि ९ ध्रुवाः] तथा तिर्यग्गति स्तिर्यगानुपूर्वी, एकेन्द्रियजातिरौदारिक, हुंडं, स्थावरं, बादरसूक्ष्मयोरन्यतरत्, अपर्याप्तं प्रत्येकसाधारणयोरन्यतरत् अस्थिरं, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्तिरेताश्चतुर्दशपूर्वाभिः सह त्रयोविंशतिः । एतां चैक-द्वि-त्रि-चतुः पञ्चेन्द्रियाणामन्यतरो मिथ्या दृगेवाऽपर्याप्तैकेन्द्रिययोग्यां बध्नाति । एषा पराघातोच्छ्वासाभ्यां सह २५ । परमपर्याप्तस्थाने पर्याप्तम्, स्थिरास्थिरशुभाशुभ-यश कीर्त्ययश कीर्तीनां परावृत्तिर्वाच्या । एता पर्याप्तैकेन्द्रिययोग्यां नानाजीवा बध्नन्ति । एषा विकलेन्द्रियादियोग्यापि नाना-भङ्ग सभवति परं परस्थानत्वान्नोच्यते सप्ततिकातो ज्ञेया । एषैवातपोद्योतयोरेकतरक्षेपे २६, एषा पर्याप्तैकेन्द्रिययोग्यैव बध्यते । तथा देवगतिर्देवानुपूर्वी पञ्चेन्द्रियजातिर्वैक्रियद्विकं समचतुरस्रं उच्छ्वास पराघातं, प्रशस्तविहायोगतिस्त्रसं बादरं, पर्याप्तं प्रत्येक स्थिरास्थिरयोः शुभाशुभयोर्यश कीर्त्ययशःकीर्त्यो. पृथगेकैकमन्यतरत्, सुभगं, सुस्वरं. आदेयमेताः १९ पूर्वनवध्रुवाभि. सह २८ । एतां देवगतियोग्यां विशुद्धास्तिर्यग्मनुष्या बध्नन्ति । अस्यां तीर्थकरनाम्नि क्षिप्ते २९ एतां सम्यक्दृशो नरा एव बद्धतीर्थकरनामानो देवगतियोग्यां बध्नन्ति । यद्वा या पूर्वं पञ्चविंशतिरुक्ता तन्मध्ये औदारिकाङ्गोपाङ्गेऽन्यतरस्वरेऽन्यतरसंहननेऽन्यतरविहायोगतौ क्षिप्तायां २९ परमेकेन्द्रियस्थाने पञ्चेन्द्रिय स्थावरस्थाने त्रसं वाच्य । एषा पर्याप्तपञ्चेन्द्रिय-

तिर्यंग्योग्यैव । पूर्वोक्ताष्टाविंशतौ आहारकद्विकक्षेपे ३०, पर स्थिर-शुभ-यशकीर्तय एव वाच्या न विपक्ष । अस्यास्त्वप्रमत्तनिवृत्ती वन्धकौ यद्वा कश्चिद् बद्धतीर्थकरनामकर्मा देवो भूत्वा नृगतियोग्यामेव बध्नाति । यथा-नृद्विकं, पञ्चेन्द्रिय-औदारिकद्विक, तुल्य[समचतुरस्रं], वज्रर्षभनाराच, पराघातं, उच्छ्वासं, प्रशस्तविहायोगतिस्त्रसादिचतुष्क, स्थिरास्थिरयो शुभाशुभयो यश कीर्त्ययशकीर्त्यो पृथगेकैक, सुभगं सुस्वरं, आदेय, तीर्थकरं २१, नवध्रुवाभि सह ३० । आहारकद्विकयुक्ताया पूर्वं त्रिशदुक्ता, तस्या तीर्थकरे क्षिप्ते ३१ । एतामप्रमत्त कियतमपि भागं यावन्निवृत्तिश्च देवगतियोग्यामेव बध्नाति । एकधा तु यश कीतिरुप निवृत्यनिवृत्तिसूक्ष्माः स्वरुपेणैव बध्नन्ति, न तु कस्यचिद्योग्य देवगतियोग्यस्यापि बन्धस्य छिन्नत्वात् । एषु भूयःकारा· षट् । तत्र त्रयोविंशति बद्ध्वा विशुद्धित पञ्चविंशति बध्नत आद्य । एवं षड्विंशत्यादिष्वेकत्रिंशति षष्ठ । यद्वा एकधा बद्ध्वा श्रेणे·निपतत पुनःनिवृत्तावेकत्रिंशतं बध्नत षष्ठो न सप्तम । एकत्रिंशत्स्थानस्योभयथाप्येकत्वात् । अल्पतराः सप्त । तत्र निवृत्तौ देवयोग्या २८-२९-३०-३१ वा बद्ध्वा एकविध गतस्याद्य । एकस्त्रिंशतस्त्रिशतं गतस्य द्वितीयः । कथं ? एकस्त्रिशद्बन्धक देवस्य[देवगतस्य] नरयोग्यां त्रिशतं बध्नत । स एव यदा नरेषूत्पन्नो देवयोग्या तीर्थकरयुता एकोनत्रिंशत बध्नाति तदा ३ । तस्मादष्टाविंशतौ ४ षड्विंशतौ ५ पञ्चविंशतौ ६ त्रयोविंशतौ ७ ।

अवक्तव्यास्त्रयः। उपशान्ते नाम्नोऽबन्धको भूत्वा अद्धाक्षये प्रतिपत्य यदा एकधा बध्नाति तदाद्य , उपशान्तात्तस्यैवायुःक्षयेणात्ततीर्थकरनाम्नोऽनुत्तरेषूत्पन्नस्याद्यसमये नृयोग्या तीर्थकरयुता त्रिंशत बध्नत· २ । तत्रैव तीर्थकरवियुक्ता नृयोग्या एकोनत्रिंशत बध्नतः ३ । वेदनीय(द्विक)स्य त्ववस्थित बन्ध एव, अवक्तव्यो न सभवति, उक्तं च—

नाणावरण तह् आउयम्मि गोयम्मि अतरायम्मि । ठिय अव्वगत्तबन्धा ॥

यत आयुषो निवृत्तौ शेषाणामुपशान्तोऽबन्धको भूत्वा पुनर्बन्धेऽवक्तव्य । द्वि० स० अवस्थितः । . . . . . .
अवट्ठिओ वेयणिम्मि ॥

बन्धस्वामित्वमाह—

सव्वासिं पयडीणं मिच्छद्दिट्ठी उ बन्धओ भणिओ । तित्थयराहारदुगं मुत्तुं सतरुत्तरसयस्स ॥ ४९ ॥

बन्धे विंशत्युत्तरं शतं तासां सर्वासां प्रकृतीनां मिथ्यादृष्टिर्बन्धक उक्तस्तीर्थकरनामाहारकद्विकं मुक्त्वा शेषसप्तदशोत्तरशतस्य, यत —

सम्मत्तगुणनिमित्तं तित्थयरं संजमेण आहारं । बज्झन्ति सेसियाओ मिच्छत्ताईहिं हेऊहिं ॥ ५० ॥

सम्यक्त्वगुणार्हद्वात्सल्यादयो विंशति. तद्धेतुकं तीर्थंकरनाम। संयमेनाप्रमत्तेनाहारकद्विकं बध्यते। शेषाः ११७ मिथ्यात्वादिभिः हेतुभिर्बध्यन्ते। काः कुत्र छिन्ना इत्याह–

सोलस मिच्छत्तंता पणुवीसं हुंति सासणंताओ । तित्थयराउ दुसेसा अविरइयंता उ मीसस्स ॥ ५१ ॥

मिथ्यात्वं, नपुंसक, नारकायुर्नरकद्विकं, एक द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रियजातय , हुंडं, सेवार्त्तं, आतपं, स्थावरं, सूक्ष्मं, अपर्याप्तं, साधारणं १६। आसां मिथ्यात्वेऽस्तस्त [त्र]भावस्तदुत्तरत्राभाव एव रूपः। नारकैकविकलेन्द्रिययोग्या अशुभाः एतद्वर्जं एकोत्तरशतं सासादनो बध्नाति। स्त्यानर्द्धित्रिक चत्वा[रो]ऽनन्तानुबन्धिनः स्त्रीवेदस्तिर्यगायुस्तिर्यग्द्विक आद्यन्तवर्जानि पृथक् चत्वारि चत्वारि संस्थानसहननानि उद्योत अशुभखगतिर्दुर्भगं दुस्वरं अनादेय नीचैर्गोत्रं २५ एताः सासादनन्ताः। एतच्छेषां तीर्थंकरनामसहितामविरतो बध्नाति सप्तसप्तति। 'तित्थयराउ' त्ति तीर्थंकरनृदेवायुर्द्विकशेषा अविरतान्ताः सत्यो या एवाविरतो बध्नाति ता एव मिश्रे परं चतुःसप्ततिः। नारकतिर्यगायुषी यथासंख्यं मिथ्यादृष्टिसासादनयोश्छिन्ने।

अविरइयंताओ दस विरयाविरयंतियाउ चत्तारि । छच्चेव पमत्तंता एगा पुण अप्पमत्तंता ॥ ५२ ॥

अप्रत्याख्यानाः ४ मनुष्यायुर्मनुष्यद्विक ७ औदारिकं द्विक वज्रर्षभनाराच १० एता अविरतान्ता. । ननु सम्यग्दृष्टित्वादसौ देवयोग्यामेव बध्नाति, कुतो नरायुष्कसमव इत्याह–नरतिर्यक्षुस्थितोऽसौ देवयोग्य बध्नाति । नारकदेवेषु तु स्थितो नरयोग्यमेव । देशविरतादयस्तु न नरकस्वर्गयोरित्यासामुत्तरत्रासभवः. सप्तसप्ततेर्दशस्वपगतासु देशविरते ६७ बन्ध. । प्रत्याख्याना ४ देशे छिन्ना· प्रमत्ते ६३ बन्ध । असात अरति. शोकः अस्थिर अशुभ अयश.कीर्ति. ६ एता प्रमत्ते छिन्ना । षट्कापगमेऽप्रमत्ते ५७ आहारकद्विकक्षेपे ५९ बन्ध । प्रमत्तेनारब्ध (द्वय)मसौ समर्थयते देवायुष्क, [तच]चासौ स्वाद्धाया (अ) सख्येयभागे छिन्नत्ति सत ५८ बन्ध । निवृत्तेरपि ।

दो तीसा चत्तारि य भागे भागेसु सखसन्नाए । चरिमे य जहासंखं अपुव्वकरणंतिया होन्ति ॥५३॥

द्वौ त्रिंशत् चत्वारि च छिन्नाः यव ? भागेऽपूर्वकरणस्य भागे कस्य भागस्यापि कियत्सु सख्येयसज्ञया । चरमे च भागे यथासख्य निवृत्यन्तो भवति । तत्रायमष्टपञ्चाशन् तावद् बध्नाति यावत् सख्येयभागस्तत्र निद्राप्रचलयोः छेदः ततः ५६ बध्नाति । तावद् यावद् सख्येय भाग । तत्र देवद्विकं पञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकमाहारकद्विक तैजस कार्मणं तुल्यं वर्णादि ४ अगुरुलघु उपघात पराघात उच्छ्वास सुभखगतिः त्रसादि ४ स्थिर शुभ सुभग सुस्वर आदेय निर्माण तीर्थकरं ३० । एतच्छेदे २६ ता बध्नाति यावच्चरमसमयस्तत्र हास्यरतिभयजुगुप्साना ४ छेद । ततोऽनिवृत्तौ २२ बन्ध. ।

संखेज्जइमे सेसे आढत्ता बायरस्स चरमंते । पंचसु एक्केक्कंता सुहुमंता सोलस हवन्ति ॥ ५४ ॥

षड्विंशतिमनिवृत्तिस्तावत् बध्नाति यावत् स्वाद्धाया सख्येयभागा गता एकस्तु सख्येयभागः शेषस्तस्य पञ्चसु भागेस्वेकैकस्याः छेद. । तत्र प्रथमभागान्ते नृवेद', २१ बन्धः । द्वितीये क्रोध २० बन्ध । तृ० मान १९ ब० । च० मायां १८, लोभ १७, एता. सूक्ष्मस्तावद् बध्नाति यावच्चरमसमयस्तत्र ज्ञानाव० ५, दर्शन० ४, यशःकीर्तिरुच्चैर्गोत्र अन्तरायं ५–१६ आसांच्छेदः, तदपगमे सातमेकं उपशान्तक्षीण-सयोगिनो बध्नन्ति ।

सायंतो जोगंते एसो परओ उ नत्थि बन्धोत्ति । नायव्वो पयडीणं बंधस्संतो अं[अणं]तो य ॥ ५५ ॥

सातस्यान्तश्छेदः सयोग्यन्ते तत पर नास्ति बन्धः । ज्ञातव्यः प्रकृतीना बन्धस्यान्तस्तत्रभावो(ऽनन्तश्च) तदुत्तरत्राभाव इति । भव्याना सान्तोऽभव्यानामनन्त इति वा । स्वामित्वं मार्गणास्थानेष्वाह–

गइआइएसु एवं तप्पाउग्गाणमोहसिद्धाणं । सामित्तं नेयव्वं पयडीणं ठाणमासज्ज ॥ ५६ ॥

एवमुक्तरित्या प्रकृतीनां स्थानं ज्ञानपञ्चकादिमाश्रित्य बन्धस्वामित्वं ज्ञेयं । 'केषु गइइन्दिय त्ति दारेसु' तत् गत्यादि-प्रायोग्याणां प्रकृतीना, किं भूतानामोघसिद्धाना सामान्यानन्तरभणननिश्चितानां, कोऽर्थः ? ओघेन यदुक्तं स्वामित्वं गत्यादि-ष्वपि तथा ऊह्यं । तत्र नारकदेवायुषी नरकद्विक देवद्विक एक-द्वि-त्रि-चतुर्जातयो वैक्रियद्विकमाहारकद्विकमातपं स्थावरं सूक्ष्म-मपर्याप्त साधारण १९ एता भवप्रत्ययादेव नारकाणां न भवन्ति । शेषमेकोत्तरशत बध्नन्ति । तिर्यग्गतौ आहारकद्विकं तीर्थकरं ३ मुक्त्वा ११७ बन्धो । नराणा १२० बन्धे परं तिर्यञ्चो नराश्च मिथ्या अविरताश्च देवगतियोग्यमेव बध्नन्ति, न नृगतियोग्यं । देवास्तु नरकगतियोग्य यदुक्तं एकोत्तरशत तदेवैकेन्द्रियआतपस्थावरसहित १०४ बध्नन्ति । 'इन्दिये' त्ति एक-द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रिया नारकदेवायुषी नरकद्विक देवद्विक वैक्रियद्विकमाहारकद्विक तीर्थकरं ११ मुक्त्वा पृथक् पृथक् नवोत्तरशत बध्नन्ति । पञ्चे-न्द्रिया १२० । एव कायादिष्वपि बन्धस्वामित्वविचयानुसारतो वाच्य । प्रकृतिबन्धो गतः ।

स्थितिबन्धमाह-तत्र पञ्चानुयोगाः स्थितिप्ररुपणा ।१। साद्यादिप्र० ।२। प्रत्ययप्र० ।३। शुभाशुभप्र० ।४। स्वामित्वप्र० ।५।

सत्तरिकोडाकोडी अयराणं होइ मोहणीयस्स । तीसं आइतिगंते वीसं नामे य गोए य ॥ ५७ ॥
तेत्तीसुदही आउम्मि केवला होइ एवमुक्कोसा । मूलपयडीण एत्तो ठिइं जहन्नं निसामेह ॥ ५८ ॥

महत्त्वात्तरीतु न शक्यन्तेऽतराणि सागराणि तेषां सप्ततिः कोटाकोट्यो मोहस्योत्कृष्टस्थितिः । अत्र सप्तवर्षसहस्राण्यनुदयरूपाऽवाधा तया ऊना(म)कर्मस्थिति निषेकः। निषेको नाम प्रथमसमये बहु. द्वितीये हीन. एव हीनतरस्तम । अवाधा विहाय तत ऊर्ध्वं वेदनार्थं कर्मनिषेको भवति । स्थापना ⁘ 'तीसं' ति आदित्रिक ज्ञानदर्शनावरणे वेदनीयरूप तथान्त्यमन्तरायं तेषु त्रिशत्सागर० कोटा[को]ट्यः। त्रीणि वर्षसहस्त्राण्यबाधा । नामगोत्रयो विंशतिसाग० । वर्षसहस्रद्वयमवाधा । आयुषि पूर्वकोटि त्रिभागाधिकानि ३३ सागराण्युत्कृष्टा स्थिति' । पूर्वकोटीत्रिभागोऽवाधा। केवलाबाधारहिता ॥

जघन्यामाह-ज्ञानदर्शनावरणान्तरायमोहानामन्तमुहूर्तं लघ्वन्तर्मुहूर्तमबाधा । वेदनीयस्य कषायप्रत्ययस्य १२ मुहूर्ता अन्तर्मुहूर्तमवाधा। योगप्रत्ययस्य द्वौ समयौ स नेहाधिक्रियते। नामगोत्रयोरष्टौ मुहूर्ताः । अन्तर्मुहूर्तमवाधा। आयुष क्षुल्लकभवग्रहण जघन्या स्थितिः ।

दोन्निगहम्मि समया समओ सघायणो य तेऊण । खुड्डागभवग्गहण सव्वजहन्नो ठिई कालो ॥
खुड्डगभवा साहीया सत्तरस हवन्ति एगपाणुम्मि । पाणू एगमुहुत्ते तिसत्तरासत्ततीसस या ॥
पणसट्ठिसहस्सपणसयछत्तीसा इगमुहुत्तखुड्डभवा । दो य सया छप्पन्ना आवलियाणेग खुड्डभवो ॥

अन्तर्मुहूर्तमवाधा । उत्तरासु तत्र ज्ञानाव० ५ दर्शन० ९ असात० १ अन्तराय० ५=२० त्रिशत् सागरकोटाकोट्य उत्कृष्टा स्थिति । सातस्त्रीवेदनृद्विका४ना पञ्चदशसाग०। मिथ्यात्वस्य सप्तति सा०। कषायषोडशकस्य चत्वारिंशत् सा० । नपु सकारतिशोकभयजुगुप्सानरकद्विकतिर्यग्द्विकएक-पञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकद्विकवैक्रियद्विकतैजसकार्मणहुंडसेवार्तवर्णादिचतुष्कागु[रु]लघूपघातपराघातोच्छ्वासातपोद्योताप्रशस्तविहायोगतिस्थावरत्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकाऽस्थिराऽशुभदुर्भगदुस्वरानादेयाऽयश.- कीर्तिनिर्माणनीचैर्गो४णा ४२ विंशति. सा० । पु वेदहास्यरतिदेवद्विकतुल्यवज्रर्षभनाराचशुभखगतिस्थिरशुभसुभगसुस्वरादेय-

यश कीर्त्युच्चैर्गोत्राणां १५ दशसाग० । न्यग्रोधऋषभनाराचयोर्द्वादशसा० । सादिनाराचयोर्चतुर्दशसा० । कुब्जार्धनाराचयोः षोडशसा० । वामनकीलिकाद्वित्रिचतुर्जातिसूक्ष्माऽपर्याप्तसाधारणानामष्टादशसा० । सर्वत्रैकसामरकोटाकोट्यामेकं वर्षशतमबाधा । द्वाभ्यां द्वे इत्यादि । आहारकद्विकतीर्थंकरयोः सागरान्तःकोटाकोटिस्थितिः । अन्तर्मुहूतमबाधा । अबाधाकालादनन्तरं कर्मणामुदयः किन्तु यद्युदयन्ति तदा । (·[अबा]धानन्तरमेव बद्धस्पृष्टनिधत्तादिकारणात् ।) नारकदेवायुषोस्त्रयस्त्रिंशत् सागराणि । तिर्यग्[न]रायुषोस्त्रीणिपल्योपमानि । जघन्यस्थितिस्तु वृत्तितो ज्ञेया । स्थितेः साद्यादीनाह–

मूलठिईणऽ[अ]जहन्नो सत्तण्हं साइयाइउ बन्धो । सेसतिगे दुविगप्पो आउचउक्के वि दुविगप्पो ।।५९।।

जघन्याजघन्योत्कृष्टानुत्कृष्टा ४ स्थितिबन्धाः । तत्रायुर्वर्जसप्तकर्मणां या स्थितयस्तासां योऽजघन्यो बन्धः स सादिरनादिरध्रुवोध्रुवश्च भवति । कथ ? मोहस्य क्षपकानिवृत्तौ चरमस्थितिबन्धे जघन्य शेषषट्कस्य सूक्ष्मक्षपकचरमस्थितिबन्धे जघन्योऽतोऽन्य. सर्वोप्युपशमश्रेणावप्यजघन्यः । उपशमकोऽपि क्षपकात् द्विगुणबन्धक इत्यजघन्यः । ततः उपशान्तावस्थायामजघन्यस्याबन्धको भूत्वा निपत्य पुनः कर्मसप्तकस्याजघन्यं बध्नतः सादिः । उपशान्तावस्थामप्राप्तानामनादि. । अभव्यभव्ययो ध्रुवाध्रुवौ, शेषत्रिक जघन्योत्कृष्टानुत्कृष्टरूप । तत्र सादिरध्रुवश्च । जघन्योऽजघन्यादवतीर्य तत्प्रथमतया तं बध्नतः सादि । क्षीणावस्थाया न भवतीत्यध्रुव । उत्कृष्टस्त्रिंशत्सागरकोटाकोटच. संक्लिष्टमिथ्यादृष्टिसंज्ञिनि लभ्यते । स चैकेन्द्रियाद्यनुत्कृष्टबन्धादवतीर्य कदाचिद् बध्यत इति सादिः । अन्तर्मुहूर्तादनुत्कृष्ट बध्नतोऽध्रुव । उत्कृष्टाद् बध्यत इत्यनुत्कृष्टोऽपि सादिः । अन्तर्मुहूर्तादनन्तोर्त्सपण्यवसर्पिण्यन्ते उत्कृष्टं बध्नतोऽध्रुव. ।

'आउ' त्ति आयुर्बन्धमाश्रित्य यच्चतुष्क जघन्याजघन्योत्कृष्टानुत्कृष्टरूपं तत्र सादिरध्रुवश्च आयुषो द्वित्रिभागादौ बध्यत इति सादिरन्तर्मुहूर्तादुपरमत इत्यध्रुवः । उत्तराणामाह–

अट्ठारसपयडीणं अजहन्नो बंधु चउविगप्पो उ । साइयअद्धुवबंधो सेसतिगे होइ बोदुधव्वो ॥ ६० ॥

ज्ञानाव० ५ दर्शन० ४ सज्वलन० ४ अन्तराय ५=अष्टादशानामजघन्य.साद्यादिश्चतुर्धापि । तत्रोपशमश्रेणावजघन्यच्छेदे पुनरजघन्य वध्नतः सादिः । श्रेणिमप्राप्तस्यानादि , ध्रुवाध्रुवौ प्राग्वत् । शेषत्रिके जघन्योत्कृष्टानुत्कृष्टरूपे सादिरध्रुवश्चासामेव तत्र सज्वलनचतुष्कस्य क्षपकानिवृत्तौ स्वस्वच्छेदोर्ध्वं न भवतीत्यध्रुव. । उत्कृष्टानुत्कृष्टयोरप्यारोहावतारे कुर्वतां साद्यध्रुवौ ।

उक्कोसअणुक्कोसो जहन्नअजहन्नओ य ठिइबंधो । सायइअद्धुवबंधो सेसाणं होइ पयडीणं ॥ ६१॥

उक्ताष्टादशेभ्यः शेषप्रकृतीनामुत्कृष्टोऽनुत्कृष्टो जघन्याऽजघन्यश्च स्थितिबन्ध· सादिरध्रुवश्च भवति । कथ ? निद्रा ५ मिथ्यात्व १ आद्यकषाय १२ भयजुगुप्सातैजसकार्मणवर्णादि४अगुरुलघूपघातनिर्माणानां २९ शुद्धबादरपर्याप्तैकेन्द्रियो जघन्य वन्ध करोति । ततोऽन्तर्मुहूर्तात्संक्लिश्याऽजघन्य ततस्तत्रैव भवे भवान्तरे वा शुद्धितो जघन्यमेव परावृत्तेर्द्वावप्येतौ साद्यध्रुवौ। उत्कृष्ट त्वेतासा मिथ्यादृक् सक्लिष्टसञ्ज्ञी करोति। मुहूर्तात् त्वनुत्कृष्टं [पुनः] कदाचिदुत्कृष्टमिति परावृत्ते· साद्यध्रुवौ । शेषाध्रुवाणा ७३ जघन्यादिबन्धोऽध्रुवत्वादेव सादिरध्रुवश्च । शुभाशुभत्वमाह—

सव्वासिपि ठिईओ सुभासुभाणं पि होन्ति [अ]सुभाओ । माणुसतिरिक्खदेवाउगं च मोत्तूण सेसाण ॥६२॥

सर्वासा शुभानामशुभाना च स्थितयोऽशुभा एव । यत स्थितीना कारण सक्लेशः कषायोदय इत्यर्थ , 'ठिइ अणुभाग कसायओ कुणइ' त्ति वचनात् । नन्वनुभागोप्यशुभो स्यात् । नैव कषायवृद्धावशुभाना वर्धते शुभाना हीयते । मन्दत्वे तु शुभाना वर्धते, अशुभाना हीयते । पर नृतिर्यग्देवायुषा स्थिति मुक्त्वा । एषा स्थितिर्वृद्धौ रसोऽपि वर्धत इति। प्रत्ययमाह—

सव्वठिईणं उक्कोसगो उ उक्कोससंकिलेसेण । विवरीए [उ] जहन्नो आउगति[ग]वज्जसेसाण ॥ ६३ ॥

सर्वमूलोत्तरकर्मस्थितीनामुत्कृष्टस्थितिबन्ध उत्कृष्टसंक्लेशेनैव भवति । विपरीते मन्दसंक्लेशे तु जघन्यः नृतिर्यग्देवायुस्त्रिकवर्जशेषाणां ज्ञेयः । त्रिकस्य तु स्थितिवृद्धौ रसो वर्धते । स्वामित्वमाह-

सव्वोकोसठिईणं मिच्छद्दिट्ठी उ बन्धओ भणिओ । आहारगतित्थयरं देवाउ[यं] वावि मोत्तूण ॥ ६४ ॥

सर्वमूलोत्तरप्रकृत्युत्कृष्टस्थिते. पर्याप्तसंक्लिष्टमिथ्यादृष्टिर्बन्धकः । प्रायेण यावता नृतिर्यगायुषी उत्कृष्टे विशुद्ध एव बध्नाति । सासादनश्च ते शुद्धोऽप्युत्कृष्टे न बध्नाति गुणपाताभिमुखत्वेन । आहारकद्विक तीर्थकरमुत्कृष्ट देवायुष्कं च मुक्त्वा, सम्यक्त्वसंयमप्रत्ययत्वात्तेषां । क एतान्यर्जयति —

देवाउयं पमत्तो आहारगमप्पमत्तविरओ य । तित्थयरं च मणुस्सो अविरयसम्मो समज्जेइ ॥ ६५ ॥

पूर्वकोट्यायुः प्रमत्तयतिरप्रमत्तत्वाभिमुखस्त्रिभागाद्यसमये उत्कृष्ट त्रिभागाधिकत्रयस्त्रिंशत्सागररूप देवायुर्बध्नाति । शुभेय स्थितिरित्यप्रमत्तत्वाभिमुखत्व । आहारकद्विकं त्वप्रमत्तः प्रमत्तत्वोन्मुख उत्कृष्ट करोति स्थितेरशुभत्वात् । तीर्थकर त्वविरतसम्यग्मनुष्यः पूर्वं नरके बद्धायुष्को मिथ्यात्व यत्र समये यास्यति ततोऽर्वाक् समये बध्नात्युत्कृष्टम् , तीर्थकरनाम्नो ह्यविरतादयो निवृत्त्यन्ता बन्धकाः, किन्तूत्कृष्टा स्थितिः संक्लेशोद्भवाऽतोऽविरतोपादानं तिर्यञ्चोऽस्य पूर्वप्रतिपन्नाः प्रतिपद्यमानकाश्च भवप्रत्ययान्नेति मनुष्यग्रहण । क्षायिकस्तु शुद्धत्वात् नोत्कृष्टबन्धकः श्रेणिकवत् ।

पन्नरसण्हं ठिइमुक्कोस बंधंति मणुयतेरिच्छा । छण्हं सुरनेरइआ ईसाणंता सुरा तिण्हं ॥ ६६ ॥

अदेवमायुस्त्रय, देवद्विक, नरकद्विक, द्वि-त्रि-चतुर्जातयो, वैक्रियद्विक, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारणं=१५ आसामुत्कृष्टां स्थितिं तिर्यङ्मनुष्या एव मिथ्यादृष्टयो बध्नन्ति । अत्यन्तसंक्लिष्टः शुद्धो वायुर्बन्धं न करोति । 'छण्हं' ति तिर्यग्द्विक-औदारिकद्विक-सेवार्तोद्योतानामुत्कृष्टस्थितिबन्धकाः सुरा नारकाश्च । सामान्योक्तावपि सेवार्तौदारिकाङ्गोपाङ्गयोरीशानोपरितना

एव द्रष्टव्याः, अधस्तना हि अष्टादशकोटाकोटिका मध्य[मा]नामेव बध्नन्ति । उत्कृष्टां त्वेकेन्द्रिययोग्यामेव, तेषु तु संहनना-ङ्गोपाङ्गयोरभाव एव । 'ईसाण' त्ति एकेन्द्रियातपस्थावराणामीशानान्ता सुरा उत्कृष्टस्थितिकर्तार उपरितना नैतेषूत्पद्यन्ते ।

चतुर्गतिका का उत्कृष्टा बध्नन्तीत्याह--

सेसाणं चउगइगा ठिइमुक्कोसं करंति पयडीण । उक्कोससकिलेसेण ईसिमहमज्झिमेणावि ॥ ६७ ॥

उक्तचतुर्विंशतिशेषद्विनवतेश्चतुर्गतिमिथ्यादृष्टय उत्कृष्टा स्थिति बध्नन्ति । 'उक्कोस' त्ति सक्लेशोऽध्यवसायस्थानम्, तत्र जघन्यस्थितिबन्धाध्यवसायस्थानम्, तत्र जघन्यस्थितिबन्धाध्यवसायस्थानान्यप्यसख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणान्याहुः [तदनन्तरे स्थितिस्थाने तानि विशेषाधिकानि, एवमुत्तरोत्तरस्थिति स्थाने विशेषाधिकक्रमेण तानि तावद्भवन्ति यावच्चरमस्थितिस्थानम् ।] तेषु प्रवर्धमान °.°.°.°.°न्यस्त पक्तिस्थित यदुत्कृष्ट चरममध्यवसायस्थान तदुत्कृष्टसक्लेश उच्यते । शेषाणि चरमपक्तिस्थितानीषन्मध्यमान्युच्य °.°.° न्ते । तैश्चरमपक्तिदर्शितैरुत्कृष्टस्थितिजनकैः सर्वैरपि उत्कृष्टास्थितिर्जन्यत इति भाव ।

जघन्यमाह—

आहारगतित्थयरं नियट्टिअनियट्टि पुरिससजलणं । बंधइ सुहुमसरागो सायजसुच्चावरणविग्घं ॥६८॥

छण्हमसन्नो कुणइ जहण्णं ठिइमाउगाणमन्नयरो । सेसाणं पज्जत्तो बायरएगिंदियविसुद्धो ॥ ६९ ॥

आहारकद्विक तीर्थंकर च निवृत्तिः क्षपकस्तद्बन्धस्य चरमे स्थितिबन्धे स्थितो जघन्य बध्नाति । तद्बन्धकेष्वयमेव शुद्धः। नृतिर्यग्देवायुर्वर्जकर्मणा जघन्या स्थितिः विशुद्धया उक्ता । नृवेदसज्वलनानां ५ अनिवृत्तिक्षपको जघन्यां स्थिति करोति । सात यश कीर्त्तिरुच्चैर्गोत्र 'आवरण' ज्ञान० ५-दर्शन० ४-विघ्न० ५-सूक्ष्मश्चरमे स्थितिबन्धे जघन्य करोति । नरकद्विक-देवद्विक-

वैक्रियद्विक-षट्कस्य तिर्यगसंज्ञिपर्याप्तो जघन्यां स्थितिं करोति । [आयु]श्चतुष्कस्य अन्यतरः संज्ञी असंज्ञी वा जघन्यां स्थितिं करोति । नारकदेवायुषोस्तिर्यङ्नराः, नृतिर्यगायुषोरेकेन्द्रियादयः । उक्तशेषाणामेकेन्द्रियाः बादरः पर्याप्तस्तद्बन्धकेषु विशुद्धः पल्योपमासख्येयभागहीनसागरद्विसप्तभागादिकां जघन्यां स्थितिं करोति ॥ स्थितिबन्धः ॥

अनुभागमाह–इह जन्तुः पृथक्सिद्धानामनन्तभागवर्तिभिरभव्येभ्योऽनन्तगुणैः परमाणुभिःनिष्पन्नान् कर्मस्कन्धान् प्रतिसमय गृह्णाति । तत्र प्रतिपरमाणुकषायविशेषात्सर्वजीवानन्तगुणाननुभागस्याविभागपलिच्छेदान् करोति । तत्र समपरमाणुनामेका वर्गणा । रसांशेनाधिकानां द्वितीयेत्यादि । स च रसः शुभोऽशुभश्च द्विधाप्येक-द्वि-त्रि-चतुःस्थानिकः । यथा लि[नि]म्बादीना सहज एकस्थानिक. । क्राथेऽर्धावर्तो द्वि० । त्रिभागे ति० चतुर्भागे च० । सर्वेऽपि लवबिन्दुचुलुकादिमन्दमन्दतरादिभेदादनेकधा, मिश्रो अप्यनेकधा । रसस्य साद्यादीन्याह–

घाईणं अजहन्नो (अ)णुक्कोसो वेयणीयनामाणं । अजहन्न अणुक्कोसो गोए अणुभागबंधम्मि ॥ ७० ॥
साइअणाई धुवअदूधुवो य बंधो उ मूलपयडीणं । सेसम्मि उ दुविगप्पो आउचउक्के वि दुविगप्पो ॥७१॥

घातिकर्मणा[म]जघन्योरसः साद्यादिश्चतुर्धापि भवति द्वितीयगाथायां सम्बन्धः । अशुभानां जघन्यं शुभानामु[त्कृष्टं] यः कश्चित्तद्बन्धकेषु विशुद्धः स एव जनयति । तत्र ज्ञानदर्शनावरणान्तरायकर्मणामशुभत्वात् क्षपकसूक्ष्मोऽन्त्यसमये जघन्यं रसं मोहस्य त्वनिवृत्तिर्जघन्य रस करोति । तत उपशान्तेऽजघन्यस्याबन्धको भूत्वा निपत्य पुनर्बध्नतः सादिः उपशान्तमप्राप्तानामनादिः, ध्रुवाध्रुवौ प्राग्वत् । द्वितीयगाथार्धे **'सेसम्मि उ'** त्ति शेषे जघन्योत्कृष्टानुत्कृष्टत्रिकरसे द्विविकल्पः, साद्यध्रुवरूपो घातिचतुष्कस्य । तत्र पूर्ववद्यावद् जघन्यं लभते तदा सादिः । क्षीणे नासावित्यध्रुवः । उत्कृष्टरसं तु प्रकृतकर्मणामशुद्धत्वात् क्लिष्टो मिथ्यादृष्टिः पर्याप्तसञ्ज्ञी एक द्वौ वा समयौ यावद्बध्नाति । स चानुत्कृष्टाद् बध्यत इति सादिः ।

जघन्यतः समयादुत्कृष्टतो द्विसमयादनुत्कृष्ट गतस्याध्रुव । अनुत्कृष्टस्तु सादिर्भवति, पुनर्जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्तेन उत्कृष्टत' अनन्तानन्तोत्सर्पिण्यवसर्पिणीभिरुत्कृष्ट गतस्याध्रुव । अनुत्कृष्टरसो वेदनीयनाम्नोश्चतुर्धापि । तथाहि–एतदन्तर्गते सातयश कीर्ती आश्रित्योत्कृष्टरस. क्षपकसूक्ष्मान्त्यसमये प्राप्यते । ततोऽन्य उपशमश्रेणावप्यनुत्कृष्ट । तत्रोपशान्तेऽवन्धको भूत्वा निपत्यानुत्कृष्टं वध्नत सादिः । तमप्राप्तानामनादिः । ध्रुवाध्रुवौ प्राग्वत् । शेषत्रिके द्विविकल्पोऽत्रापि, तत्रोत्कृष्ट सूक्ष्मे बध्नातीति सादि । क्षीणे यातीत्यध्रुव । जघन्यरस त्वनयो सम्यग्दृग् मिथ्यादृग वा बध्नाति मध्यमपरिणाम , अय चाजघन्यात् भवतीति सादि । पुनर्जघन्यतः समयादुत्कृष्टत चतुरसमयादजघन्य वध्नतोऽध्रुव । अजघन्यस्तु गा[सा]दि । तत्रैव भवे भवान्तरे वा जघन्य वध्नतोऽध्रुवः । 'अजहन्न'त्ति गोत्रानुभागवन्धोऽजघन्योऽनुत्कृष्टश्च चतुर्धापि । तत्रोत्कृष्टानुत्कृष्टौ वेदनीयनाम्नोरिव चिन्त्यौ। जघन्य तु सप्तमपृथ्विनारक करणत्रयादनन्तरमन्त करणस्थितिद्वय करोति ; तत्राधस्तनी वेदयन्यस्मादनन्तर समये सम्यक्त्व प्राप्स्यति तत्रान्त्यसमये वर्तमानो नीचैर्गोत्रस्य जघन्य रस बध्नाति । न शेषा इति सादि । तस्मादनन्तरमजघन्यरसमुच्चैर्गोत्रस्य बध्नातीत्यध्रुव । अजघन्यस्तु सादि । तदप्राप्तानामनादि । ध्रुवाध्रुवौ प्राग्वत् । एव जघन्यो द्विधा अजवन्यश्चतुर्धा। 'आउ' त्ति चतुर्गत्यायुर्जघन्याजघन्योत्कृष्टानुत्कृष्टरसचतुष्के सादिरध्रुवश्च द्विधा । तत्र त्रिभागादौ सादिश्चतुर्धापि अन्तर्मुहूर्ताद्यातीत्यध्रुव । उत्तराणामाह—

अट्ठण्हमणुक्कोसो तेयालाणमजहन्नगो बंधो । णेओ हि चउविगप्पो सेसतिगे होइ दुविगप्पो ॥ ७२ ॥

तैजसकार्मणप्रशस्तवर्णगन्धरसस्पर्शअगुरुलघुनिर्माणाना , अनुत्कृष्टश्चतुर्धापि । तथा ह्यासामुत्कृष्टरस क्षपकनिवृत्तिर्देवगतियोग्याना त्रिंशत' प्रकृतीना बन्धच्छेदसमये करोति । ततोऽन्यस्तूपशमश्रेणावप्यनुत्कृष्ट. । स चोपशान्तेऽबन्धको भूत्वा पुनर्लाभे सादि । तदप्राप्तानामनादि । शेष प्राग्वत् । शेषत्रिके द्विविकल्प । तत्र पूर्वोक्त निवृत्तावुत्कृष्ट सादि । समयाद्याती-

त्यध्रुवः । जघन्यरस त्वासां शुभत्वात् क्लिष्टमिथ्यादृक्सञ्ज्ञी बध्नाति । पुनर्जघन्यतः समयादुत्कृष्टतो द्विसमयादजघन्यं पुनर्जघन्यमेवमुभयोः साद्यध्रुवता । 'नेयाल' त्ति ज्ञानाव० ५-दर्शन० ९ मिथ्यात्व १-कषाय १६-भयजुगुप्सा२ अप्रशस्तवर्णादि ४ उपघातान्तरायाः५ णा ४३ अजघन्यश्चतुर्धाऽपि । तत्र ज्ञान० ५-दर्शन० ४-अन्तराया ५ णाम१४शुभत्वात् क्षपकः सूक्ष्मोऽन्त्य समये जघन्यरस बध्नाति तस्मादुपशान्ते[ऽबद्ध्वा पुनः]अजघन्यं बध्नतः सादिः । उपशान्तमप्राप्तानामनादिः । शेष प्राग्वत् । सज्वलनानां ४ क्षपकानिवृत्तिर्यथास्वं बन्धच्छेदे एकैक समयं जघन्य रसं बध्नाति । ततोऽन्योऽजघन्यः । तस्योपशान्तेऽबन्धः पुनर्बध्नतः सादिः । तमप्राप्तानामित्यादि तथैव । निद्राप्रचला-शुभवर्णादि ४-उपघातभयजुगुप्मानां क्षपकनिवृत्तिर्बन्ध(न) छेदे एकैकं समय जघन्यरस बध्नाति । ततोऽन्योऽजघन्य । तमुपशान्तेऽबद्ध्वा पुनर्बन्धे सादिः । तमप्राप्तानामित्यादि तथैव । प्रत्याख्यानानां ४-देशविरतोऽन्त्यसमये जघन्यरस बध्नाति । अप्रत्याख्यानानां ४ अविरतः क्षायिकत्वं सयम च युगपत् प्रतिपित्सुर्जघन्यं बध्नाति । स्त्यानर्द्धित्रिकमिथ्यात्वानन्तानुबन्धिनः ८ मिथ्यादृक् सम्यक्त्व सयमं चेप्सुर्जघन्यरस करोति । सर्वत्राऽन्योऽजघन्यः । एते निपत्यपुनर्बध्नतः साद्यादयो वाच्याः । शेषत्रिके जघन्योत्कृष्टानुत्कृष्टरूपे द्विविकल्पः । जघन्यः सूक्ष्मे सादि. क्षीणे यातीत्यध्रुवः । उत्कृष्टस्य मिथ्यादृक्बन्धकः सादिः । पुनरनुत्कृष्टेऽध्रुवः । एवमनुत्कृष्टोऽपि ।

अध्रुवबन्धिनीनामाह--

उक्कोसमणुक्कोसो जहन्नमजहन्नगो वि अणुभागो । साई अद्धुवबन्धो पयडीणं होइ सेसाणं ॥७३॥

शेषाणामध्रुवाणां चतुर्धाऽपि साद्यध्रुवः, अध्रुवबन्धित्वात् । प्रत्ययानाह--

सुहपयडीण विसोहीइ तिव्वमसुहाण संकिलेसेण । विवरीए उ जहन्नो अणुभागो सव्वपयडीणं ॥७४॥

वक्ष्यमाणशुभप्रकृतीना विशुद्धया तीव्रं रस बध्नाति, अशुभानां संक्लेशेन । वैपरित्ये जघन्य शुभानां संक्लेशादशुभानां विशुद्धया भवति । शुभाशुभा आह—

घायालं पि पसत्था विसोहिगुणउक्कडस्स तिव्वाओ । बासीइमप्पसत्था मिच्छुक्कडसंकिलिट्ठस्स ॥७५॥

सात, तिर्यग्नृदेवायू षि, नृद्विक, देवद्विक, पञ्चेन्द्रियजाति , पञ्चशरीराणि, तुल्य वज्रर्षभनाराच, अङ्गोपाङ्ग ३, शुभवर्णादि ४, अगुरुलघु पराघात उच्छवास, आतप, उद्योत, शुभखगतिस्त्रसादिदशक, निर्माण, तीर्थकरमुच्चैर्गोत्र, ४२ एता एव प्रशस्ता., विशुद्धिगुणोत्कटस्य तीव्ररसा भवन्ति । ज्ञानाव० ५, दर्शन० ९, असात, मिश्रसम्यक्त्ववर्जमोहषड्विंशतिः, नारकायु , नरकद्विक, तिर्यक्द्विक, एक-द्वि-त्रि-चतुर्जातय', आद्यवर्जसस्थानसहनन १०, अशुभवर्णादि ४, उपघात, अशुभखगतिः, स्थावरादिदशक, नीच्चैर्गोत्र, अन्तराय ५=८२ एता अप्रशस्ता मिथ्यात्वोत्कटसक्लिष्टस्य तीव्ररसा भवन्ति ।

卐 [आयवनामुज्जोयं माणुसतिरियाउगं पसत्थासु । मिच्छस्स हु नि तिव्वा सम्मद्दिट्ठिस्स सेसाओ॥७६॥

आतपोद्योतमनुष्यतिर्यगायु प्रकृतीना तीव्ररसवन्धका मिथ्यादृष्टयो भवन्ति] 卐। यत आतपोद्योततिर्यगायूंषि सम्यक्दृष्टिर्न बध्नात्येव । देवनारकास्तु सम्यग्दृशो मध्यम नरायुर्बध्नन्ति न युगलायुरिति । शेषाः ३८ पुण्यप्रकृतय सम्यग्दृष्टेरेव तीव्ररसा भवन्ति ।

देवाउमप्पमत्तो तीव्व खवगा करंति घत्तीसं । बंधति तिरियमणुया एक्कारसमिच्छभावेण ॥७७॥

देवायुस्तीव्र[र]समप्रमत्तयतिर्बध्नाति तथा सात-देवद्विक-पञ्चेन्द्रियजाति-वैक्रियद्विक-आहारकद्विक-तैजसकार्मण तुल्य-शुभवर्णादि ४-अगुरुलघु पराघातोच्छ्वास-शुभखगति-त्रसादि १०-निर्माण तीर्थकरोच्चैर्गोत्राणा३२ क्षपको सूक्ष्मनिवृत्ती तीव्र (रस) रस कुरुत' । निवृत्तिर्मोहक्षपणयोगतया क्षपक । तत्र सातयश कीर्त्यु च्चैर्गोत्राणा ३ सूक्ष्मोऽन्त्यसमये तीव्ररस करोति । शेषाणां

卐 कोष्ठकद्वयान्तर्गता गाथायुक्तपाठ. ह. लि. प्रतौ नास्ति, तथाप्युपयोगित्वाल्लिखितः ।

२९ निवृत्तिर्देवयोग्यबन्धच्छेदसमये तीव्रं रस करोति । 'बंधंति' त्तिनारकतिर्यङ्नरायूंषि, नरकद्विकं, विकलत्रिकं, सूक्ष्मं, अपर्याप्त, साधारणं ११ एता मिथ्यादृशस्तिर्यङ्मनुष्याः तीव्ररसा बध्नन्ति । देवानारकाश्च नव भवप्रत्ययान्न बध्नन्ति । तिर्यङ्नरायुषी उत्कृष्टयुगलेषु तेष्वपि ते न उत्पद्यन्ते ।

पञ्चसुरसम्मदिट्ठी सुरमिच्छो तिन्नि जयइ पयडीओ । उज्जोयं तमतमगा सुरनेरइआ भवे तिण्हं ॥७८॥

नृद्विकौदारिकद्विकाद्यसंहननानां ५ सुरः सम्यग्दृगुत्कृष्टरसबन्धक एकं द्वौ वा समयौ, नारकाणां वेदनया तीर्थादिदर्शनाच्च शुद्धि', तिर्यङ्नराः शुद्धाः सुरेषु यान्ति । एकेन्द्रियजात्यातपस्थावरत्रयस्य सुरो मिथ्यादृगीशानान्त उत्कृष्टरसं बध्नाति । द्वय संक्लिष्ट आतपं तु शुभत्वात् तद्योग्यशुद्धः । अतिशुद्धो नरः स्यात् । उद्योत तमस्तमकाः सप्तमपृथ्विनारकास्तीव्रं उपशमिकोन्मुखाः कुर्वन्ति । सुराःसनत्कुमारादयो नारका वा संक्लिष्टाः स्युस्तिर्यग्द्वयसेवार्तत्रयस्य तीव्ररसकर्तारः । शुभाः ४२ अशुभाः १४ उक्ता । अष्टषष्टिमाह—

सेसाणं चउगइगा तिव्वणुभागं कुणंति पयडीणं । मिच्छदिट्ठी नियमा तिव्वकसाउक्कडा जीवा॥७९॥

शेषाणा ज्ञानाव० ५ दर्शन ९-असात-मिथ्यात्व-कषाय १६-नोकषाय ९-अनाद्यसंस्थान ५-अनाद्यन्तसंहनन ४-अशुभ वर्णादि४-उपघाताऽशुभखगत्यस्थिराशुभदुर्भगदुःस्वरानादेयायशःकीर्तिनीच्चैर्गोत्रान्तरायाणां ६८ अशुभानां मिथ्यादृष्टयस्तीव्रकषायोत्कटास्तीव्रं रस कुर्वन्ति । तत्र हास्यरतिस्त्रीपुंवेदानाद्यन्तसंस्थानसंहननानां १२ तत्प्रायोग्यक्लिष्टाः, शेषाणामुत्कृष्टक्लिष्टाः कुर्वन्ति । उत्कृष्टसंक्लेशे अग्रेतनयुगलं नपुंसकत्व च संहननसंस्थाने सेवार्तहुंडे च स्युः । जघन्यमाह–

चोद्दस सगागचरिमो पंचगमनियट्टिनियट्टि एक्कारं । सोलसमंदणुभागं संजमगुणपट्ठिओ जयइ ॥८०॥

ज्ञानाव० ५ दर्शन ४ अन्तरायाणां ५=१४ सूक्ष्मोऽन्त्यसमये जघन्यरस वध्नाति । पुंवेद १-सञ्ज्वलन ४-पञ्चकमात्मीयात्मीयब·घच्छेदेऽनिवृत्तिर्जघन्य रस करोति । निवृत्तिर्निद्राप्रचला-ऽशुभवर्णादि ४ उपघात-हास्यरति-भयजुगुप्सानां ११ आत्मीयात्मीयबन्धच्छेदे जघन्य रस वध्नाति । स्त्यानर्द्धित्रिकमिथ्यात्व-सञ्ज्वलनवर्जकषाय १२=षोडशाना मन्दरस सयमाभिमुखो मिथ्यादृगविरतो देशविरतो वा करोति । तत्र स्त्यानर्द्धित्रिकमिथ्यात्वाद्यकषायाणा ८ अन्त्यसमये मिथ्यादृष्टि· । अप्रत्याख्यानानामविरत, प्रत्याख्यानाना देशविरतो मन्द रस करोति ।

आहारमप्पमत्तो पमत्तसुद्धो उ अरइसोगाणं । सोलस माणुसतिरिया सुरनारयतमतमा तिन्नि ॥८१॥

आहारकद्विकमप्रमत्त प्रमत्तत्वो-मुखो जघन्यरस करोति । अरतिशोकयो. प्रमत्तोऽप्रमत्तत्त्वोन्मुख· शुद्धो जघन्य रस करोति । आयुश्चतुष्क नरकद्विक-देवद्विक वैक्रियद्विक-विकलत्रिक-सूक्ष्मापर्याप्तसाधारणानां १६ नरास्तिर्यञ्चश्च जघन्यरस कुर्वन्ति । तिर्यङ्नरायुर्वर्जाश्चतुर्दश देवनारका भवप्रत्ययादेव न वध्नन्ति । तिर्यङ्नरायुषी अपि मन्दरसे न वध्नन्ति । सुरनारकास्तिस्र· तमतमकाश्च तिस्रोजघन्यरसा· कुर्वन्ति । तत्रौदारिकद्विकोद्योतास्तिस्र· सुरनारकाणामुत्कृष्टक्लेशास्तिर्यग्योग्या वध्नन्तो जघन्यरसा कुर्वन्ति । तिर्यग्द्विकनीच्चैर्गोत्रास्तिस्रस्तमस्तमस्का., सम्यक्त्वोन्मुखा इति ।

एगिंदियथावरग मन्दणुभागं करंति तेगइआ । परिअत्तमाणमज्झिमपरिणामा नेरइयवज्जा ॥ ८२ ॥

नारकवर्जा गतित्रयजीवा: परावर्तमानमध्यमपरिणामा एकेन्द्रियस्थावरयोर्जघन्यरस वध्नन्ति । तत्क्लिष्टा शुद्धा वा । तदैवैकेन्द्रियस्थावरत्व तदैवपञ्चेन्द्रिय[त्रस]त्वं तदैवेकेन्द्रियस्थावरत्वमिति परावृत्ति. । नारका स्वभावान्न तद्द्वय वध्नन्ति ।

आसोहम्मायाव अविरयमणुओ उ जयइ तित्थयरं । चउगइउक्कडमिच्छो पन्नरस दुवे विसोहीए ॥८३॥

समश्रेणित्वादाईशानान्ता भवनपत्यादयः आतप क्लिष्टा मन्दरस बध्नन्ति । अविरतसम्यग्[दृग्] मनुष्यो बद्धनरकायुष्को मिथ्यात्वोन्मुखस्तीर्थंकरं मन्दरस करोति । तथा चतुर्गतिका अपि उत्कृष्ट(मिथ्यात्व)सक्लेशाः पञ्चेन्द्रियतैजसकार्मणप्रशस्तवर्णादि ४ अगुरुलघुपराघातोच्छ्वासत्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकनिर्माणानां १५ जघन्यं रसं कुर्वन्ति शुभत्वात् । परं तिर्यङ्नरा नरकयोग्याः, नारकाः सनत्कुमारादयश्च पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योग्या एता मन्दाः कुर्वन्ति । ईशानान्तास्तु पञ्चेन्द्रियत्रसवर्जा १३ एकेन्द्रिययोग्याः । पञ्चेन्द्रियत्रसे तु शुद्धा एव (२०)[१८] स्त्रीनपुसके द्वे चतुर्गतिका अपि तद्योग्यशुद्धा मन्दरसे कुर्वन्ति ।

सम्मद्दिट्ठी मिच्छो व अट्ठ परियत्तमज्झिमो जयइ । परियत्तमाणमज्झिममिच्छद्दिट्ठी उ तेवीसं ॥८४॥

सम्यग्दृग्–मिथ्यादृग् वा सातासातस्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्ती परावर्तमानमध्यमपरिणामो मंदरसाः करोति । नृद्विकसस्थानषट्कसहननषट्कखगतिद्विकसुभगदुर्भगसुस्वरदुःस्वरादेयानादेयोच्चैर्गोत्र(१९)त्रयोविंशतिं परावृत्य परावृत्य बध्नतश्चतुर्गतिका अपि मिथ्यादृष्टयो मध्यमपरिणामा मदरसां कुर्वन्ति । सम्यग्दृशामेतासां परावृत्तिर्नास्ति । तथाहि–तिर्यङ्नरा सम्यग्दृशो देवद्विकमेव बध्नन्ति, न नृद्विकादि । देवास्तु नृद्विकमेव न तिर्यग्द्विकादि, संस्थानाद्यपि शुभमेव नाशुभमिति न परावृत्तिः । सर्व१देश२घातिनीः प्राह—

केवलनाणावरणं, दंसणछक्कं च मोहबारसगं । ता सव्वघाइसन्ना, हवंति मिच्छत्तवीसइमं ॥८५॥

केवलज्ञानावरणं, निद्रापञ्चक-केवलदर्शनरूपषट्कं, मोहे सज्वलनवर्जकषाय १२ मिथ्यात्वं एता २० सर्वघातिन्यः, स्वाऽऽवार्यं गुणं सर्वमपि घ्नन्ति, परं केव[ल]स्यांशः सर्वजीवेष्वनावृत एव, मेघोन्नतौ चन्द्रसूर्ययोः प्रभेव ।

नाणावरणचउक्कं, दंसणतिगअंतराइयं पंच । पणुवीसदेसघाई, संजलणा नोकसाया य ॥८६॥

ज्ञानावरणचतुष्क मति श्रुत-अवधि-मन.पर्यायरूपं, दशनत्रिक चक्षुरचक्षुरवधिरूपं, अन्तरायपञ्चकं, पञ्चविंशतिर्देशघातिन्य., सञ्ज्वलनाः ४ नोकषायाश्च ९ = २५ 'सव्वे विय अइयारा सजल' ......।

अवसेसा पयडीओ, अघाइया घाइयाइपलिभागा। ता एव पुन्नपावा, सेसा पावा मुणेयव्वा ॥८७॥

शेषा. ७५ वेदनीयायुर्नामगोत्रप्रकृतयो ज्ञानदर्शनचारित्रादिगुणानां मध्ये न किञ्चिद् घातयन्तीत्यघातिन्यः परं घातिनीभि· सह वेद्यमानाः पलिभागास्तत्तुल्या दृश्यन्ते, यथाऽचौरोऽपि चौरैर्मिलितो चौर इव दृश्यते। एता एव काश्चित्साताद्याः ४२ पुण्यप्रकृतयः, काश्चिदसाताद्याः ३३ पापाः, शेषा सर्वदेशघातिन्य. पापा एव ज्ञेया। रसस्थानान्याह—

आवरणदेसघायंतरायसंजलणपुरिससत्तरसं। चउविहभावपरिणया, तिविहपरिणया भवे सेसा ॥८८॥

आवरणेषु देसघातीनि ज्ञान० ४-दर्शन-३ अन्तराय ५-सज्वलन ४-नृवेद=१७ एताश्चतुर्विधभावे परिणता एक-द्वि-त्रि-चतुःस्थानिकरूपेण। तत्रानिवृत्तेः सख्येयभागेष्वासामशुभत्वादेकस्थानिक एव रसो बध्यते। अत्रान्तरे केवलद्विकं बध्यते पर सर्वघातित्वाद्द्विस्थानिकरसोऽतस्तस्याऽत्राऽग्रहणम्। शेषस्तु द्विस्थानिकादिको रस· प्रस्तुतप्रकृतीना मिथ्यादृष्ट्यादिषु लभ्यते। तत्र गिरिराजिसमकोपश्चतुस्थानिकम्, पृथ्वीराजिसमस्त्रिस्थानिकम्, रेणुजलराजिसमो द्विस्थानिकमिति बध्नाति। द्वि-त्रि चतूरूपत्रिविधरसपरिणता एतच्छेषाः शुभाशुभा वा। एकस्थानिक त्वासा न संभवत्येव। यतोऽनिवृत्ते सख्येयभागेष्वेवासौ बध्यते तत्र सप्तदश मुक्त्वा शेषाऽशुभप्रकृतयो न बध्यन्त एव।

अथ शुभानामेकस्थानिक. कस्मान्नेत्युच्यते, इहासख्येयलोकाकाशप्रदेशमानानि सक्लेशस्थानानि विशुद्धिस्थानानि च। येष्वेव सक्लिष्टश्चटति तेष्वेव सोपानेष्विव विशुद्धोऽवरोहति। पर शुद्धिस्थानान्यधिकानि यतः क्षपको [ये]ष्वेवारोहति न तेष्ववरोहति क्लेशाभावात्। तैराधिक्य एव, स्थितेऽतिशुद्धश्चतुस्थानिक बध्नाति शुभानाम्। अतिक्लेशे बन्ध एव नागच्छन्ति

शुभाः । या अपि नरकयोग्यावैक्रियतैजसकार्मणाद्याः शुभाः संक्लिष्टो बध्नाति तासामपि स्वभावाद् द्विस्थानिक एव रसः, इति न शुभानामेकस्थानिको रस. क्वापि । प्रत्ययमाह—

चउपच्चएगमिच्छत्तसोलस-दुपच्चया य पणतीसं । सेसा तिपच्चया खलु तित्थयराहारवज्जाओ ॥८९॥

एका सातरूपा प्रकृतिश्चतुःप्रत्यया मिथ्यात्वाऽविरतिकषाययोगैर्बध्यते । मिथ्यात्वप्रत्ययाः षोडश 'सोलसमिच्छत्तंता' इति वचनात् । द्विप्रत्ययाः पञ्चत्रिंशत्, सासादनेऽविरते च यासां ३५ बन्धच्छेद उक्तस्तास्तत्र मिथ्यात्वेऽपि बध्यन्त इति मिथ्यात्व[अविरति] प्रत्यया, शेष द्वय गौणं । शेषाः त्रिप्रत्ययाः तीर्थकरमाहारक च त्यक्त्वा मिथ्यादृष्टयादिष्वविरतेषु सकषायेषु च सूक्ष्मान्तेषु बध्यन्त इति । उपशान्तादिषु योगसद्भावेप्यासां बन्धो नास्तीति स नोक्तः, सम्यक्त्वनिमित्तं तीर्थकरं संयमेनाहारकमिति वर्जनम् । विपाकान् विभागेनाह—

पंच य छत्तिगछप्पंच दुण्णि पंच य हवन्ति अट्ठेव । सरिराई फासन्ता पयडीओ आणुपुव्वीए ॥९०॥
अगुरुलहू उवघायं परघाउज्जोयआयवनिमेणं । पत्तेयथिरसुभेयरणामाणि य पुग्गलविवागा ॥९१॥

शरीराद्याः स्पर्शान्ताः शरीरसंस्थानाङ्गोपाङ्गसंहननवर्णगन्धरसस्पर्शरूपा अष्टौ पिण्डप्रकृतयः । किं भवन्ति ? पुद्गलविपाका इति उत्तरगाथान्ते सम्बन्धः । आनुपूर्व्या पञ्चादिभेदाश्च । कथ ? पञ्चशरीराणि षट्संस्थानानि त्रिण्यङ्गोपाङ्गानि षट्संहननानि पञ्चवर्णाः द्वौ गन्धौ पञ्चरसाः अष्टौ स्पर्शाः एताः पुद्गलेष्वेव विपच्यन्ते शरीरादिपुद्गलेष्वेवात्मीयां शक्तिं दर्शयन्तीत्यर्थः । कथं ? शरीरनामोदयात् शरीरतया पुद्गला एव परिणमन्तीत्यादि वाच्यम् । तथाऽगुरुलघूपघातपराघातोद्योतातपनिर्माणानि, प्रत्येकादिष्वितरेण योगः, प्रत्येकसाधारणस्थिरास्थिरशुभाशुभाश्च पुद्गलविपाकाः ॥९०॥९१॥

आऊणि भवविवागा खेत्तविवागा उ आणुपुव्वीओ। अवसेसा पयडीओ जीवविवागा मुणेयव्वा॥९२॥

भवन्ति जन्तवोऽस्मिन्निति भवो, विग्रहगतेरारभ्य दृश्यः। तत्र भव एव विपाक-उदयो येषा तानि भवविपाकीनि चत्वार्यायूंषि प्राग्भवे बद्धानि आगामिभवे विपच्यन्त इति भावः। क्षे[त्र]माकाश तत्रैव विपाक उदयो यासां ता क्षेत्रविपाका आनुपूर्व्यः ४ विग्रहगतावेवासा उदय.। अवशेषा ज्ञानावरणादिका' जीव एव विपाकः स्वशक्त्याऽऽविर्भावरूपो यासा ताः जीवविपाका ज्ञेया'। यतो जीव एव ज्ञान्यज्ञानी वा न पुनस्तनुपुद्गला इति सर्वासु। या अपि पुद्गलभवक्षेत्रविपाकास्ता अपि वस्तुतो जीवविपाका एव पारम्पर्येण न मुख्यतया। अनुभागः [उक्त'] ॥ ९२ ॥

प्रदेशबन्धमाह-तत्र चत्वार्य[रोऽ]नुयोगा (१) कर्मप्रदेशादानविधि, (२) भागप्ररूपणा, (३) साद्यादिप्र० (४) स्वामित्वप्र०।

एगपएसोगाढं सव्वपएसेहिं कम्मुणो जोग्गं। बंधइ जहुत्तहेउं साईयमणाइयं वावि ॥९३॥

पंचरस-पचवण्णेहिं परिणय दुविहगधचउफास। दवियमणंतपएस सिद्धेहि अणंतगुणहीणं ॥९४॥

इह पुद्गल द्रव्य जीवो बध्नाति इति योग'। कथ? एकप्रदेशावगाढ-यत्रैवजीवस्याऽऽत्मप्रदेशास्तत्रैव यदवगाढ न त्वन्यतः। स च सर्वैरप्याऽऽत्मीयप्रदेशैर्बध्नाति। न त्वेकेन द्वयादिभिर्वा। यत. समस्तलोकाकाशप्रदेशराशिप्रमाणा एकस्य जन्तो' प्रदेशा भवन्ति। मिथ्यात्वादिबन्धकारणोदये च ते सर्वे स्वस्वदाकाशप्रदेशेभ्यो युगपदेव कर्मद्रव्य गृह्णन्ति। परस्पर च सर्वेऽप्युपकुर्वन्ति परस्पर सम्बद्धत्वात्। कर्मणो योग्य कर्मवर्गणान्तर्गत 'यथोक्तहेतु' पूर्वोक्तसामान्यविशेषहेतुभिर्बध्नाति। बन्धच्छेद कृत्वा प्रतिपत्य ता एव यो बध्नाति तस्य सादि। अकृतच्छेदस्याऽनादि ध्रुवाऽध्रुवौ प्राग्वद् अपिशब्दात्। तच्च द्रव्य प्रतिस्कन्ध पचवर्णोपेत, पचरस द्विगन्ध चतु स्पर्श च गृह्णाति। तत्र मृदुलघू अवस्थितौ द्वौ तु स्निग्धोष्णौः स्निग्धशीतो वा

रूक्षोष्णौ रूक्षशीतौ वाऽविरुद्धौ भवतः, प्रज्ञप्तौ तु स्निग्धरूक्षशीतोष्णा उक्ता । 'अनन्तप्रदेश' अनन्तपुद्गलं गृह्णाति, अभव्ये-
भ्योऽनन्तगुण सिद्धेभ्योऽनन्तगुणहीनं कर्मस्कन्धमिति । स्कन्धा अपि प्रतिसमयमनन्ता गृह्णाति ।
कर्मणो योग्यमयोग्यं च द्रव्य अस्ति तद् विभागदर्शनार्थं ग्रहणाऽग्रहणवर्गणाः प्ररूप्यन्ते । इह समस्तलोकाकाशप्रदेशेषु ये
केचनैकाकिनः परमाणव तत्समुदायः सजातीयत्वात् एकावर्गणा । इयं स्वभावाज्जीवानामग्रहे इत्यग्रहणवर्गणा । एवं द्विव्या-
दिस्कन्धसख्यातासख्यातानंतप्रदेशस्कन्धनिष्पन्ना अप्यग्रहे यावदनन्तानन्तैरेव परमाणुभिर्निष्पन्नानामेकोत्तरवृद्धिभाजां स्कन्धानां
समुदायरूपा अनन्ता औदारिकादिवर्गणाः । स्थापना तासां । अनया दिशा ध्रुवादि लिख्येत–

४ ४ ४	७ ७ ७	१० १० १०	१३ १३ १३	१६ १६ १६	१० १९ १९	२२ २२ २२	२५ २५ २५
३ ३ ३	६ ६ ६	९ ९ ९	१२ १२ १२	१५ १५ १५	१८ १८ १८	२१ २१ २१	२४ २४ २४
२ २ २	५ ५ ५	८ ८ ८	११ ११ ११	१४ १४ १४	१७ १७ १७	२० २० २०	२३ २३ २३
१ १ १	औदारिक-वर्गणा ज्ञेयाः	वैक्रिय-वर्गणा ज्ञेया	आहारक-वर्गणा	अग्रहण-वर्गणा ज्ञयाः	तैजसवर्गणा ज्ञेयाः	अग्रहण-वर्गणा	भाषावर्गणा ज्ञेया
२८ २८ २८	३१ ३१ ३१	३४ ३४ ३४	३७ ३७ ३७	४० ४० ४०	४३ ४३ ४३	एव ध्रुव १ अध्रुव २	
२७ २७ २७	३० ३० ३०	३३ ३३ ३३	३६ ३६ ३६	३९ ३९ ३९	४२ ४२ ४२	△सचित ३ अचित ४	
२६ २६ २६	२९ २९ २९	३२ ३२ ३२	३५ ३५ ३५	३८ ३८ ३८	४१ ४१ ४१	शून्य ५ प्रत्येक ६ अनत ७-धूमिका ८ अवश्या ९	
अग्रहण-वर्गणा ज्ञेयाः	आनप्राणवर्गणाएतद्ज्ञेयाः	अग्रहण-वर्गणा ज्ञेयाः	मनोवर्गणा	अग्रहण-वर्गणाः	कर्म-वर्गणा.	अनता वर्गणाः परि-कल्पनीयाः । △	

△ एतदन्त्यकाष्ठगतवर्गणाभेदा अस्माभिः सम्यग् नावगम्यन्ते ।

वर्गणा अपि स्थाप्या । अत्र सैद्धान्तिकाः कामप्रन्थिकाश्च केचिदौदारिक-वैक्रियाहारकवर्गणानामप्यन्तरद्वयेऽग्रहण-वर्गणा इच्छन्ति । युक्त तद्यत औदारिकवर्गणाभ्यो वैक्रियवर्गणास्ताभ्योऽप्याहारकवर्गणाः प्रदेशतोऽसङ्ख्येयगुणा इष्यन्ते । एत-च्चान्तरालेऽग्रहणवर्गणा विना नोपपद्यते । पर कर्मप्रकृतौ नोक्ताः । भागावसरस्तत्र य उपशान्तो वेदनीयमेव बध्नाति स यत् किमपि द्रव्य गृह्णाति तदेकस्य वेदनीयस्यैव भवति । अन्यस्य बन्धाभावात् । यस्तु सूक्ष्मः षड्विध बध्नाति तेन गृहीतं षड्वि-भागै परिणमति । एव सप्तधा सप्तभि., अष्टधा अष्टभिः परिणमति । ननु ते भागाः समा विषमा वेत्याह–

आउगभागो थोवो नामे गोए समो तओ अहिगो । आवरणमंतराये सरिसो अहिगो य मोहे वि ॥९५॥

सव्वुवरि वेअणीय भागो अहिगो उ कारणं कि तु । सुहदुक्खकारणत्ता ठिईविसेसेण सेसाणं ॥९६॥

अष्टधा बन्धे यदनन्तस्कन्धात्मक द्रव्य गृह्णाति तन्मध्यात् सर्वस्तोको भाग आयुष । तदपेक्षया नामगोत्रयोरधिकः । स्वापेक्षया सम । ज्ञानदर्शनावरणान्तरायाणा स्वापेक्षया समो नामगोत्रापेक्षयाऽधिक. । एतदपेक्षया मोहेऽधिकः । मोहे सर्वोपरि भागो जातस्ततोऽपि वेदनीये इति । कि कारण ? सुख-दु क्खकारणरूप हि वेदनीय तद्भागपरिणताश्च पुद्गला. स्वा-भावादेव प्रचुरा सन्त स्वकार्यं कर्तु मलम् । शेष कर्मपुद्गला स्वल्पा अपि स्वकार्यं कुर्वन्ति । स्निग्धान्न स्वल्पमपि तृप्ति करोति, कदन्न बहु इति । सुखदु खरूपत्वात् वेदनीयस्य बहुभागा , स्थितिविशेषाच्छेषकर्मणामल्पत्व बहुत्वमिति । साद्यादीनाऽऽह–

छण्ह पि अणुक्कोसो पएसबन्धो चउव्विहो बन्धो । सेसतिगे दुविगप्पो मोहाउ [य] सव्वहिं चेव ॥९७॥

षण्णा ज्ञान-दर्शनावरण-वेदनीय-नाम गोत्रा-ऽन्तरायकर्मणामनुत्कृष्ट एव प्रदेशबन्धे चतुर्विधः साद्यादिर्बन्धो भवति । कथ ? सूक्ष्मस्योत्कृष्टयोगे स्थितस्यैक , द्वौ वा समयौ यावदुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध प्राप्यते । सूक्ष्मो मोहायुषी न बध्नात्यतोऽनयो-र्भाग द्रव्यमिह बहु मिलतीत्युत्कृष्टः । तत्र उपशान्तेऽबन्धको भूत्वा निपत्योत्कृष्टादनुत्कृष्ट बध्नतः सादिः । तमप्राप्तानामनादिः

॥२३९॥

ध्रु वाऽध्रु वौ प्राग्वत् । शेषत्रिके जघन्याऽजघन्योत्कृष्टरूपे साद्यध्रुवौ द्विधा । तत्र सूक्ष्मे उत्कृष्टः सादिः । पातेऽध्रुवः । जघ-
न्यस्तु षण्णा [1]पर्याप्तमन्दवीर्यसप्तधाबन्धकसूक्ष्मनिगोदस्य भवाद्यसमये लभ्यते । द्वितीयेऽजघन्यः, पुनः संख्यातेनाऽसंख्यातेन वा
कालेन जघन्यः । ततोऽजघन्यः । एवमनयोः साद्यध्रुवता । मोहायुषो सर्वत्रैव जघन्यादौ४ द्विधा तत्र मिथ्यादृग् सम्यग्दृ-
ग्वाऽनिवृत्त्यत सप्तबन्धको मोहस्योत्कृष्टप्रदेशबन्धं करोति । पुनरनुत्कृष्ट उत्कृष्टमेवमनयोः साद्यध्रुवता । जघन्याजघन्यौ
सूक्ष्मनिगोदादिषु सरतामुक्तौ । उत्तराणामाह—

सेसतिगे दुविगप्पो सेसाणं चउविगप्पो वि ॥९८॥
तीसण्हमणुक्कोसो उत्तरपयडीण चउविहो बन्धो ।

त्रिंशतोऽनुत्कृष्टः साद्या-
ज्ञानाव० ५, स्त्यानर्द्धित्रिकवर्जदर्शना० ६, अनतवर्जकषाय १२, भयजुगुप्सा, अन्तराय ५० तथैव भावनीयः । परं दर्शने निद्रा-
दिश्चतुर्धाऽपि । तत्र ज्ञानावरण ५ अन्तराय ५ दर्शनानां ४=१४ यथामूलप्रकृतिषट्कस्य भावितः समयावुत्कृष्टप्रदेशबन्धकाः । आयुर्द्रव्य-
पञ्चकभागाधिक्य । निद्राद्विकस्य त्वविरतादि निवृत्त्यन्ताः सप्तधा बन्धकाले एकं द्वौ वा नान्ये । मिश्रस्य उत्कृष्टयोगो
भागोधिकः सप्तधात्वात्, स्त्यानर्द्धित्रिकभागोप्यधिकः मिथ्यादृग्-सासादनावेव तद्बध्नीतो[न्यौ] अविरते उत्कृष्टो
नास्तीति सोऽपि न । उत्कृष्टान्निपत्याऽनुत्कृष्टं गतस्य सादिः । अनाद्यादि प्राग्वत् । अप्रत्याख्यानानां (४) भयजुगुप्सयोरवि-
बन्धः । मिथ्यात्वानन्तानां ५ भागोऽधिकः । प्रत्याख्यानानां (४) देशविरते उत्कृष्टः । पूर्वाणा भागोऽधिकः । उत्कृष्टबन्ध करोति ।
रतादिनिवृत्त्यन्ता उत्कृष्टबन्धकाः मिथ्यात्वभागो लभ्यते । सज्वलनक्रोधस्याऽनिवृतिः पुंवेदे छिन्ने [मायायां क्रोधमान-
मिथ्यात्वाद्यकषाय १२, नोकषायाणां ९ भागोऽधिकः । [माने] क्रोधभागोऽधिकः । (मायालोभयोः) शेषत्रिके द्विधा-तत्रा-
भागोऽधिकः] लोभे सर्वमोहभागोऽतोऽधिकः । तत्रोत्कृष्टादनुत्कृष्टं गच्छतां सादिः । अनाद्यादि. प्राग्वत् । त्रिंशतः शेषासु चतुर्धाऽपि, सादि-
ऽनुत्कृष्टप्रस्तावे उत्कृष्टः सादिरध्रुवश्चोक्तः । जघन्याऽजघन्यौ निगोदेषु सरतां भाव्यौ ।

[1] पर्याप्तं=अत्यन्तम् ।

॥२४०॥

रध्रुवश्च सम्बध्यते । तत्राऽध्रुवाणामध्रुवत्वादेव, ध्रुवाणा त्रिशद्हूतैव शेषा १७, तत्र स्त्यानर्द्धित्रिकमिथ्यात्वानन्तानुबन्धिनां सप्तधा बन्धको मिथ्यादृगुत्कृष्टबन्ध करोति । निपत्यानुत्कृष्टं गतस्येत्याद्यनुवर्त्तमाना साद्यध्रुवत्वम् । जघन्याऽजघन्यौ निगोदेषु वाच्यौ । वर्णादिनवकस्याऽप्येवमेव वाच्यम् । पर सप्तबन्धको'मिथ्यादृष्टिर्नाम्नस्त्रयोविशति बध्नन्नुत्कृष्टप्रदेशबन्धकः ।

स्वामित्वमाह—

आउक्कसपएसस्स पंच मोहस्स सत्तठाणाणि । सेसाणि तणुकसाओ बन्धइ उक्कोसगे जोगे ॥ ९९ ॥

आयुष. उत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य मिथ्यादृगविरतदेशप्रमत्ताऽप्रमत्ता. पञ्च स्वामिनः । योगस्य अल्पत्वान्न सासादन' । मिश्रनिवृत्यादयस्त्वायुर्बन्ध न कुर्वन्त्येव । मोहस्योत्कृष्टबन्धस्वामित्वे सासादनमिश्रे त्यक्त्वाऽनिवृत्यन्तानि सप्तस्थानानि । शेषाणि षट्कर्माणि तनुकषायः सूक्ष्म उत्कृष्टयोगस्थ उत्कृष्टप्रदेशानि बध्नाति, मोहायुषी न बध्नातीति तद्भागोऽधिक. । जघन्यमाह—

सुहुमनिगोयापज्जत्तगस्स पढमे जहण्णगे जोगे । सत्तण्ह पि जहण्णो आउगबंधे वि आउस्स ॥१००॥

सूक्ष्मनिगोदस्याऽपर्याप्तस्य भवाद्यसमये जघन्ययोगस्थस्यायुर्वर्जसप्तकर्मणामेक समयं जघन्यतः प्रदेशबन्ध' । आयुषोऽपि जघन्यप्रदेशबन्धोऽस्यैवायुर्बन्धकाले भवति । उत्तराणामुत्कृष्टजघन्यबन्धस्वामिन आह—

सतरस सुहुमसरागा पचगमणियट्टिसम्मगो नवगं । अजई बीयकसाये देसजई तइयए जयइ ॥१०१॥

ज्ञानावरण ५, दर्शन० ४, सातयश'कीर्त्युच्चैर्गोत्राऽन्तराया-५-णा=१७ सूक्ष्म उत्कृष्टप्रदेशबन्ध करोति । मोहायुर्भागोऽत्र दर्शनावरणनामयोरनुक्तप्रकृतिभागाश्च । पुंवेदः सज्वलन ४. पचकमनिवृत्तिरुत्कृष्ट बध्नाति । हास्यरतिभयजुगुप्साभागो-

॥ २४१ ॥

ऽत्र । सम्यग्दृगाविरताद्यपूर्वान्त. सम्यग्दृष्टिः निद्राद्विकहास्यषट्क–तीर्थकररूपं नवकं बध्नाति । मिथ्यात्वभागोऽत्र । 'अजति' रविरतो 'द्वितीयकषायान्' ऽप्रत्याख्यानान् देशयतिस्तृतीयान् प्रत्याख्यानान् 'यतते' उत्कृष्टाणू [न्] बध्नाति ।

तेरस बहुप्पएसं सम्मो मिच्छो व कुणइ पयडीओ । आहारमप्पमत्तो सेसपएसुक्कडं मिच्छो ॥१०२॥

असात-नरायु-देवायु-देवद्विक-वैक्रियद्विक तुल्या-द्यसहनन-शुभखगति-सुभग-सुस्वरा-ऽऽदेयास्त्रयोदश बहुप्रदेशाः सम्यग्दृग् मिथ्यादृग्वा करोति । आहारकद्विकमप्रमत्तो निवृत्तिश्चोत्कृष्टप्रदेश बध्नाति । उक्तचतु.पञ्चाशच्छेषाः षट्षष्टिःप्रदेशोत्कटबन्धा मिथ्यादृष्टिरेव करोति । कीदृगुत्कृष्ट जघन्यं च करोतीत्याह—

सन्नी उक्कडजोगी पज्जत्तो पयडिबन्धमप्पयरो । कुणइ पएसुक्कोसं जहन्नयं जाण विवरीए ॥१०३॥

'सञ्ज्ञी' समनस्कः उत्कटयोगव्यापारः पर्याप्तिमान् प्रकृतिबन्धकेष्वल्पतरप्रकृतिबन्धकः । करोति (प्रकृष्टि) [प्रदेश] बन्धमुत्कृष्ट, उक्तगुणविपरीते जघन्यं विद्धि । जघन्यबन्धस्व।मित्वामाह—

घोलणजोगिअसन्नी बंधइ चउ दुन्नि अप्पमत्तो उ । पंच असंजयसम्मो भवाइ सुहमो भवे सेसा ॥१०४॥

नारकदेवायुषी नरकद्विकमेताश्चतस्रो घोलमानयोगोऽसंज्ञी बध्नाति जघन्यप्रदेशाः एक चतुरो वासमया(:) [न्]। पृथिव्यादयश्चतुरिन्द्रियान्ता देवनरकयोर्नोत्पद्यन्ते तेन नैतच्चतुष्क बध्नन्ति । असञ्ज्यपर्याप्तस्तु तथाविधसक्लेशविशुद्धचभावान्नै-तद्बध्नातीत्यनुक्तोऽपि पर्याप्तो दृश्यः । द्वयमाहारकद्विकमप्रमत्तो घोलमानयोगो नाम्न एकत्रिंशद्बन्धको जघन्य करोति । देवद्विकवैक्रियद्विकतीर्थकराः पञ्च भवाद्येसमयेऽविरत (नृ) [देव०४नृ० ती० दे०] सम्यग्दृग्जघन्यप्रदेशाः करोति, पर्याप्त एकोनत्रिंशद्बन्पकः । उक्तैकादशेभ्यः शेषाः १०९ भवादौ बहुवीर्बध्नन् सूक्ष्मापर्याप्तनिगोदजीवो जघन्यप्रदेशा बध्नाति ।

प्रकृतिस्थित्यादिहेतूनाह—

जोगा पयडिपएसं ठिइअणुभागं कसायओ कुणइ। कालभवे खित्तविक्खो उदओ सविवागअविवागो॥१०५॥

योगो वीर्यं तस्मात्प्रकृतिः कर्मणा स्वभाव., पुद्गलास्तिकायदेशाः प्रदेशा', कर्मवर्गणाऽन्त'पातिनः कर्मस्कन्धाः समाहारः। तद् जीव करोति। प्रकृतिप्रदेशयोर्योगो हेतुरित्यर्थ । मिथ्यात्वाविरतिकषायाणामभावेऽप्युपशान्तादिषु केवलयोगेनैव वेदनीयं बध्यते। अयोगे तु न बध्यते इत्यन्वयव्यतिरेकाभ्या योग एव हेतुः प्रधानं। ननु योग. कियान्? आह सूक्ष्मनिगोदस्याऽपि सर्वजघन्यवीर्योऽपि प्रदेशोऽसङ्ख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणान् वीर्यस्य भागान्प्रयच्छति। बहुवीर्ये तु बृहत्तराऽसख्येयभागाः ज्ञेया । तच्च जघन्यवीर्याणा समुदाय एका वर्गणा, एकाधिके द्वितीया, एव [द्वि]त्र्यादिभि',१५-१५-१५, १४-१४-१४, १३-१३-१३, १२-१२-१२, ११-११-११, १०-१०-१०, एव यदा एकोत्तरा वृद्धिर्नप्राप्यते किन्त्वसंख्येयवीर्यैरेव तदा तैः समैरेका स्पर्द्धकवर्गणा एव द्व्यादिभिर्यावत् श्रेणेरसख्यातभागवर्तिप्रदेशमानानि। तेषा समुदाय एक योगस्थानकं। सूक्ष्मनिगोदस्य यद्यप्यनन्ता जीवास्तथाप्यसख्येया'येव स्थानानि यत एकस्मिन्नेव स्थाने स्थावरा अनन्ता जीवा भवन्ति, त्रसास्त्वसख्याता। स्थान स्थिति कर्मणो जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्तमुत्कृष्टतः सागरकोटाकोटयादिका स्थिति.। अनु पश्चाद् बन्धाद् भवनं अनुभवो यस्याऽसौ अनुभागो रस , समाहार , तज्जीव' कषायात्करोति तदध्यवसायात्। कषाया ह्युदीरणा. सर्वजघन्याया अपि कर्मस्थितेर्निर्वर्तकान्यसख्येयलोकाकाशप्रदेशमानान्यान्तमौहूर्तिकान्यध्यवसायस्थानानि जनयन्ति। रस' पूर्ववत्। मिथ्यात्वाऽविरत्यभावेऽपि कषायसद्भावे प्रमत्तादिषु स्थित्यनुभागौ भवत'। [तद]भावे तूपशान्तादिषु नेति त्वन्वयव्यतिरेकाभ्यां कषायजत्वम्। 'कालभवे' त्ति इह ताव-मूलप्रकृतयो ध्रुवोदयाः। ज्ञानाव० ५ दर्शन० ४ मिथ्यात्वतैजसकार्मणवर्णादि ४-अगुरुलघु-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-निर्माण-अन्तरायाः ५=२७ ध्रुवोदया एव सर्वजन्तूनामुच्छेदादर्वागितदुदयो भवत्येव। शेषाणा तु कालभवक्षेत्राऽपेक्ष। तथाहि-निद्रावेदादीना प्रायो रजन्यादि काले उदयः, गत्यादीना भव प्राप्योदय, आनुपूर्व्यादीना क्षेत्रापेक्ष उदयः। (अथवैकोऽपि निद्रोदय. काल ग्रीष्म, भव पृथिव्यादिक, क्षेत्र -सजलादिक प्राप्योदय । आनुपूर्व्यादीना क्षेत्रापेक्ष उदयः)।

॥२४३॥

अथवैकोऽपि निद्रोदयः कालं ग्रीष्मं भवं पृथिव्यादिकं क्षेत्रं सजलादिकं प्राप्य वर्धते । द्रव्यभावाऽपेक्षे वा । द्रव्यं दधिवृन्ताकादि प्राप्य निद्रां भावे चित्तस्वास्थ्यादि । उदयो द्विधा सविपाकोऽविपाकश्च । यत्र स्वस्वभावस्थितं स्वस्वरूपेणैव कर्मोदेत्यसौ सविपाकः यथा नरस्य नरगतिपञ्चेन्द्रियजात्यादितद्भवयोग्यकर्मोदयः । यत्र तु स्तिबुकसंक्रान्तं परप्रकृतिभावेन कर्म वेद्यतेऽसौऽविपाकः । यथा नरस्य नरगतित्वेन वेद्यमानानां नरकतिर्यग्देवगतिनामुदयः । तस्मात्स्वरूपेण वा पररूपेण वा वेदितमेव कर्म क्षीयते । योगस्थानानि कारणं १, प्रकृति २ प्रदेशाः ३ कार्यं, स्थितिबन्धाध्यवसायस्थानानि कारणं ४, स्थितिविशेषाः कार्यं ५ अनुभागबन्धाध्यवसाय[स्थानानि] कारणं ६ अनुभागाः कार्यं ७ । एषां अल्पबहुत्वमाह—

सेढिअसंखेज्जइमे जोगट्ठाणाणि होन्ति स.व्वाणि । तेसि असंखेज्जगुणो पयडीणं संगहो सव्वो ॥१०६॥

तासिमसंखेज्जगुणा ठिईविसेसा हवन्ति नायव्वा । ठिइबन्धज्झवसायट्ठाणाणि असंखगुणिआणि॥१०७॥

तेसिमसंखेज्जगुणा अणुभागे होन्ति बन्धठाणाणि । एत्तो अणंतगुणिआ कम्मपएसा मुणेयव्वा॥१०८॥

अविभागपलिच्छेआ अणंतगुणिआ हवन्ति इत्तो उ । सुयपवरदिट्ठिवाए विसिट्ठमयओ परिकहन्ति॥१०९॥

एकाकाशश्रेणेरसख्येयभागे यावन्तः प्रदेशास्तत्संख्यानि योगस्थानानि । तानि चोत्तरपदापेक्षया सर्वस्तोकानीति शेष· । तेभ्योऽसख्येयगुणः प्रकृतीनां 'सङ्ग्रहः' समुदयः सर्वोऽपि 'संखाईआओ खलु ओहीणाणस्स सव्वपयडीओ, इति वचनात् । एतदावरणस्याप्येतावन्तो भेदा एवं मत्यादीनामपि, आनुपूर्वीणां बन्धोदय वैचित्र्येणाऽपि[प्य]सख्याता भेदाः, ते च लोकस्य सङ्ख्येयभागवर्तिप्रदेशराशितुल्या इति चूर्णीकारोक्तविशेषः । 'भेदा.' प्रकृतय उच्यन्ते ताभ्यः स्थितिविशेषा अन्तर्मुहूर्तम्, एकद्विसमयाधिकादिरूपा असख्यातगुणा भवन्ति । एकैकस्या प्रकृतेरसख्यातैः स्थितिविशेषैर्बध्यमानत्वात् । स्थितिः कर्मणोऽवस्थानानि । स्थितिविशेषेभ्य [स्थितिबंधाध्यवसायस्थानान्यसंख्येयगुणानि । एकैकस्थितिविशेषोऽ]

(तान्य) सख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणैरध्यवसायस्थानैर्जन्यते, तेभ्यः स्थितिबन्धाध्यवसायस्थानेभ्योऽसंख्येयगुणान्यनुभागवन्धस्थानानि भवन्ति, यत. स्थितिवन्धाध्यवसायस्थानमेकैकमन्तर्मुहूर्त्तमानम् । अनुभागबन्धाध्यवसायस्थान त्वेकैक जघन्यत साम्यिक उत्कष्ट तोऽष्टसामयिकमिति । एतेभ्यः अनन्तगुणाः कर्मप्रदेशाः स्कन्धा मुणितव्या । यत एते सिद्धानन्तभागेऽभव्येभ्योऽनन्तगुणा· प्रतिसमय गृह्यन्ते । क्षीरनिम्बाद्यधिश्रयपैरिवानुभागवन्धाध्यवसायस्थानैस्तन्दुलेष्विव कर्मपुद्गलेषु रसो जन्यते । स चैकस्याऽपि परमाणोः केवलिना छिद्यमान सर्वजीवानन्तगुणानविभागपलिच्छेदान्प्रयच्छति । यतोऽन्यो न । तेऽविभागपलिच्छेदा अनन्तगुणा भवन्त्येतेभ्य कर्मस्कन्धेभ्यः, यतः प्रतिपरमाणु सर्वजीवानंतगुणा· प्राप्यन्त इति । श्रुत द्वादशाङ्ग तत्प्रवरो दृष्टिवादस्तत्र विशिष्टमतय तीर्थंकरगणधराः परिकथयन्तीति विधानद्वारम् ।

सम्प्रति नि प्रत्यवायनिस्तीर्णप्रतिज्ञाभरो ग्रन्थकारः प्राह--

एसो बंधसमासो पिण्डक्खेवेण वण्णिओ कोइ । कम्मप्पवायसुयसायरस्स निस्सदमित्तो उ॥ ११० ॥

एष बन्धसक्षेप· ।पिण्डितस्य फर्मप्रकृतिश्रुतादुत्क्षेपस्तेन न स्वेच्छया वर्णित· । कोऽप्यपूर्व । कर्मप्रवाद प्रकृतिश्रुत स एव महत्त्वात्सागरस्तस्य निस्यन्दमात्र· ।

बंधविहाणसमासो रइयो अप्पसुयमन्दमइणा उ । तं बंधमोक्खनिउणा पूरेऊण परिकहन्तु ॥ १११॥

बन्धभेदो सक्षेपो रचितोऽल्पश्रुतेन मन्दमतिना च मयेति गम्यते । तं ऊनातिरिक्त बन्धमोक्षनिपुणा जिनवचनान्त सारज्ञा पूरयित्वा शिष्येभ्य परिकथयन्तु । कर्तृश्रोतृफलमाह—

इअ कम्मपयडिपयडं संखेवुद्दिट्ठनिच्छयमहत्थं । जो उ पउंजइ बहुसो सो नाही बंधमोक्खत्थ ॥ ११२ ।

इति कर्मप्रकृतिश्रुताऽन्तर्गतं संक्षेपोद्दिष्टं कथितं निश्चित प्रमाणेन महानर्थो यस्य तत् निश्चितमहार्थम् , दृष्टिवादाद्यन्तर्गतविचारबहुलत्वात् । एवं भूत चामुं यो बहुश. उपयोक्ष्यते व्याख्यानाऽध्ययनगुणनश्रवणचिन्तनधारणादिद्वारेण पुन. पुनरुपयोगं नेष्यति स बन्धस्य मोक्षस्य च कर्माष्टकध्वंसरूपस्याऽर्थं ज्ञास्यतीति [अन्त्य]मङ्गलम् ।

[प्रशस्ति]

सपादलक्षक्षोणीश–समक्षं जिनवादिनाम् । श्रीधर्मघोषसूरीणां, पट्टालङ्कारकारकाः ॥ १ ॥ [अनुष्टुब्]

त्रिवर्गपरिहारेण, गद्यगोदावरीसृजः । बभूवुर्भूरिसौभाग्या , श्रीयशोभद्रसूरय ॥ २ ॥ [,,]

स्वपरसमयज्ञानप्रीतप्रकृष्टजगज्जनाश्चतुरवचनामोदामूषामरेशगुरुप्रभा ।
अभिनृपसभं गगागौरप्रनर्त्तितकीर्त्तयस्तदनुमहस पात्रं याता रविप्रभसूरय· ॥३॥ [हरिणी]

तच्छिष्य. [उदयप्रभसूरिः] स्वपरकृते श्री शतकस्य टिप्पन [रचितवान्]॥छ॥ ग्रन्थाग्र ॥१०००॥

शुद्धिपत्रकम्

पृष्ठम्	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
२	६	ध्मातं	ध्मातं
१२	१६	भिधानमनुयोग०	मिधानमनुयोग०
१४	५	सर्वसक्रमादि०	सर्वसक्रमादि०
२६	१२	ठिइअणुमाग	ठिइअणुमाग
३६	११	तव्भगएसु	तव्सवगएसु
३८	३	इयदिठ्ठी	इयदिट्ठी
४३	८	विसेससाहि०	विसेसाहि०
४५	४	पविठ्ठा	पविठ्ठा
४६	१	जधन्य	जघन्य
५०	५	एव	एवं
५६	६	विभागापचय	विमागोपचय
५६	१२	पग्सा ण	पएसाण
५६	१४	न सम्यग्-	इति। स एव प्रति-

पृष्ठम्	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
			भाति तद्यथा–योगस्थानकानि आउत्कृष्टयोग-सञ्ज्ञिपर्याप्तकसभवानि भवन्ति।
५६	१६	निरोवस्य	निरोधन्य
५७	११	तन्निरोवश्च	तन्निरोधश्च
५६	१२	लब्भति	लब्भंति
६४	१०	अभिनिविगो	अभिनिवेशो
६८	२	वन्धो	वन्वो
७१	६	मुप्पान्यतो	मुप्पायन्तो
८०	१३	तिन्निअपमत्ता	तिन्नि। अपमत्तो
८७	६	'इन्द्रियगणो	'इन्द्रियमणो
८८	१२	मसीहशेन	सीहशेन
६४	१०	नानाऽव्ययदेश०	नानाव्ययदेश०
११७	७	प्रतिपादनमिति	प्रतिपादनायेति

शुद्धिपत्रकम्

पृष्ठम्	पंक्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः
१२१	१३	सहस्सत्र०	सहस्स०
१२२	६	गुणास्थानयोः	गुणस्थानयोः
१३८	६	तव्वंधकेसु	तब्बंधकेसु
१४६	१	दाणुव्वीओ	दाणुपुव्वीओ
१५५	८	किंचिं	किंचि
१५८	१२	॥१॥	॥७६॥
१७०	१०	अणंतगुहीणं	अणंतगुणहीणं
१७०	१२	यदृव्या०	तदृव्या०
१७२	१४	कर्मषु	कर्मसु
१७५	३	लभ्भन्ति	लब्भति
१७६ / १७७	१३ / ८-६	पुःवन्	पूर्ववत्
१६१	४	कभ्भ०	कम्म०

श्री उदयप्रभसूरिटिप्पनयुतबन्धशतके शुद्धिपत्रकम्

पृष्ठम्	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
१९८	२	प्रत्येक	प्रत्येक
१९९	६	जाए	ज्ञोए
२००	२	अचक्षु'पि	अचक्षुपि
२०२	४	अन्तमु०	अन्तर्मु०
२०२	८	ह्रस्वा	ह्रस्वा
२०२	१५	बादुरा	बादरा
२०३	३	वित०	वीत०
२०३	२	॥११॥ ॥१२॥	॥११॥ [एव क्षीणा. कृपाया यस्य स क्षीणकृपायः] ॥१२॥
२०३	६	योग	योग[रहित]
२०३	७	गुणय	मणुय
२०३	१६	पाठः	पाठ
२०४	१२	समुदूधाते	समुद्घाते
२०५	६	लब्ध्यामा०	लब्ध्यमा०

पृष्ठम्	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
२०६	८	सुख	सुख
२०६	१२	निर्वाण	निर्वाण
२०७	१०	औदारिक २०	औदारिक २
२०७	११	अर्ध	अर्ध
२०९	४	माहा०	महा०
२१०	२	ग्राण्यगो	प्राण्यगो
२११-३ २१६-६		निवृत्य	निवृत्त्य
२१२	६	सत्तावाव०	सत्ताऽऽव०
२१४	७	स्वरूपमम	स्वरूपम०
,,	७	लेशेत	लेशत
२१५	४	सूक्ष्माप०	सूक्ष्मोप०
२१५	८	ऽग्रुवाध्रुवो	ऽध्रुवध्रुवौ
२१६-२-३ २१६-२ २३०-३		०त्त्वा	०त्वा
२१७	१७	युग्मेव	युग्मगेव
२१८	१२	जातिव०	जातिर्व

पृष्टम्	पंक्तिः	अशुद्धि	शुद्धि	पृष्टम्	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
२१६	१–४	यशकी०	यशःकी०	२२६	८	पृथ्वि०	पृथ्वी०
२१६	१	विपक्षः	विपक्षा.	२३१	७	तिर्यक्द्विक	तिर्यग्द्विकं
२१६	७	आद्य	आद्यः	२३१	१०	द्विकोद्याता	द्विकोद्योता
२१६	६	एकस्त्रि	एकत्रि	२३१	१६	क्षपणयोग	क्षपणयोग्य
२२२	५	रित्या	रीत्या	२३३	१३	तदेव	तदैव
२२३	१५	दुस्वर	दुःस्वर	२३७	३	ता	ताः
२२४	१	नाराचयोर्चतुर्दश	नाराचयोश्चतुर्दश	२३७	१६	स्निग्धोष्णौ	स्निग्धोष्णौ
२२४	१४	० त्तोर्तसिपण्य	तोत्सर्पिण्य	२३८	१३	सचित ३ अचित।	सचित्त ३ अचित्त
२२५	१०	त्त्वादेव	त्वादेव	२३६	१२	शेपकर्मपुद्गला	शेषकर्मपुद्गला
२२७	६	०स्थान	०स्थान	२४१	२	वर्तमाना	वर्तमानात्
२२८	७	बिन्दुवु०	बिन्दुचु०	२४२	१	सम्यग्दृगा	सम्यग्दृग

श्री उदयप्रभसूरिटिप्पणयुतबन्धशतके शुद्धिपत्रकम्

पृष्ठम्	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
१९८	२	प्रत्येक	प्रत्येक
१९९	६	ज्ञाए	जोए
२००	२	अचक्षुःपि	अचक्षुपि
२०२	४	अन्तमु०	अन्तर्मु०
२०२	८	हस्वा	ह्रस्वा
२०२	१५	वादरा	वादरा
२०३	३	वित०	वीत०
२०३	३	॥११॥ ॥१२॥	॥११॥ [एव क्षीणाः कषाया यस्य स क्षीणकषाय] ॥१२॥
२०३	६	योग	योग[रहित]
२०३	७	मुणय	मणुय
२०३	१६	पाठः	पाठ
२०४	१२	नमुद्घाते	समुद्घाते
२०५	६	लब्ध्यम०	लब्व्यमा०

पृष्ठम्	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
२०६	८	सुख	सुख
२०६	१२	निर्वाण	निर्वाण
२०७	१०	ओदारिक ००	औदारिक ०
२०७	११	अर्थ	अर्ध
२०९	४	माहा०	महा०
२१०	२	प्राण्यगो	ग्राण्यगो
२११-३	२१९-६	निवृत्य	निवृत्त्य
२१२	३	सत्तावाव०	सत्ताऽऽव०
२१४	७	स्वरूरसम	स्वरूपम०
,,	७	लेशत	लेशत
२१५	५	सक्ष्माप०	सूक्ष्माप०
२१५	८	ऽप्रुवाघ्रवो	ऽप्रुवप्रुवो
२१६-२-३ २१९-७ २२०-३ ०त्त्रा			०त्ता
२१७	१७	युग्मेव	युग्ममेव
२१८	१२	जातिवि०	जातिर्वि०

पृष्ठम्	पंक्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः	पृष्ठम्	पंक्ति	अशुद्धिः	शुद्धि
२१६	१–४	यशकी०	यशःकी०	२२६	८	पृथ्वि०	पृथ्वी०
२१६	१	विपक्षः	विपक्षा	२३१	७	तिर्यक्द्विक	तिर्यग्द्विक
२१६	७	आद्यं	आद्यः	२३१	१०	द्विकोद्याता	द्विकोद्योता
२१६	६	एकस्त्रि	एकत्रि	२३१	१६	क्षपणयोग	क्षपणयोग्य
२२२	५	रित्या	रीत्या	२३३	१३	तदैव	तद्वैव
२२३	१५	दुस्वर	दुःस्वर	२३७	३	ता	ताः
२२४	१	नाराचयोर्चतुर्दश	नाराचयोश्चतुर्दश	२३७	१६	स्निग्घोप्णौ	स्निग्धोष्णौ
२२४	१४	० तोर्तसिपण्य	तोत्सर्पिण्य	२३८	१३	सचित ३ अचित।	सचित्त ३ अचित्त
२२५	१०	त्त्वाद्रेव	त्वाद्रेव	२३६	१२	शेषकर्मपुद्गला	शेषकर्मपुद्गला
२२७	६	०स्थान	०स्थानं	२४१	२	वर्तमाना	वर्तमानात्
२२८	७	विन्दुवु०	बिन्दुबु०	२४२	१	सम्यग्दृगा	सम्यग्दृग